अक्तूबर, 2018
I.S.S.N. : 2457-0494

उच्चतम न्यायालय

निर्णय पत्रिका

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

प्रस्तावित संपादक-मंडल

डा. जी. नारायण राजू,
सचिव, विधायी विभाग

डा. रीटा वशिष्ठ, अपर सचिव,
विधायी विभाग

श्री एस. आर. ढलेटा,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव एवं
विधायी परामर्शी, विधायी विभाग

डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल,
विधि विभाग, डी आई आर डी, गुरु
गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय

श्री ए. के. अवस्थी,
सेवानिवृत्त प्रोफेसर एवं डीन
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

श्री एल. आर. सिंह,
प्रोफेसर एवं डीन इलाहाबाद
विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनुराग दीप,
एसोसिएट प्रोफेसर,
भारतीय विधि संस्थान

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
प्रधान संपादक

श्री कमला कान्त,
संपादक

श्री अविनाश शुक्ला,
संपादक

श्री असलम खान,
संपादक

सहायक संपादक : श्री पुण्डरीक शर्मा

उप-संपादक : सर्वश्री महीपाल सिंह और जसवन्त सिंह

परामर्शदाता : सर्वश्री दयाल चन्द्र ग्रोवर, महमूद अली खां और विनोद कुमार आर्य

ISSN- 2457-0494

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 195/-

© 2018 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

1. प्रकाशन नियंत्रक, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054.
2. प्रधान संपादक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा..... द्वारा मुद्रित ।

पी एल डी (डी)-10-2018 आई.एस.एस.एन. 2457-0494

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

अक्तूबर, 2018 अंक - 10

प्रधान संपादक
डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय

संपादक
कमला कान्त

[2018] 4 उम. नि. प.

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

विक्रय कार्यालय : 1. प्रकाशन नियंत्रक, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054.
2. सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 । दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in

संपादकीय

पक्षकारों द्वारा नियत समय के भीतर अपील फाइल करने में प्रायः चूक हो जाती है । इसका निवारण करने के लिए अपीलीय न्यायालयों को विलंब माफी के लिए विधि के अधीन विवेकाधिकार प्रदत्त है, जिससे कि घोर अन्याय या न्याय की विफलता को रोका जा सके, किन्तु ऐसा विवेकाधिकार न्यायिक होता है और इसका प्रयोग न्यायिक तरीके से ही किया जा सकता है । इसी प्रकार, का प्रश्न, **उम्मेर बनाम पोतेंगल सुबिदा और अन्य** [2018] 4 उम. नि. प. 13 वाले मामले में उद्‌भूत हुआ । माननीय उच्चतम न्यायालय ने इस मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि यदि कोई अपील नियत समय के भीतर फाइल नहीं की जाती है और अपील फाइल करने में हुए विलंब का पर्याप्त कारण अभिलेख पर दर्शित कर दिया जाता है तो इन परिस्थितियों में, अपील फाइल करने में हुए विलंब को माफ किया जा सकता है ।

जहां यह प्रश्न उद्‌भूत होता है कि क्या किसी अभियुक्त व्यक्ति की दोषिता युक्तियुक्त संदेह के परे साबित कर दी गई है । इस प्रश्न पर विचार करते हुए, माननीय उच्चतम न्यायालय ने **शंकर** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** [2018] 4 उम. नि. प. 47 वाले मामले में, यह अभिनिर्धारित किया कि जहां अभियुक्तों द्वारा निभाई गई भूमिका के बारे में घटना के प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के साक्ष्य में विरोधाभास हो और तात्विक पहलुओं पर एक-दूसरे के कथन से संपुष्टि न होती हो तथा घटना का कोई स्वतंत्र साक्षी भी न हों, वहां अभियुक्तों की दोषिता युक्तियुक्त संदेह के परे साबित न होने पर केवल धारणाओं और उपधारणाओं के आधार पर की गई उनकी दोषसिद्धि को कायम रखना न्यायोचित नहीं होगा ।

कभी-कभी ऐसी परिस्थितियां उद्‌भूत हो जाती हैं कि भारतीय हिन्दू पति-पत्नी के बीच विवाह भारत में हिन्दू रीति-रिवाजों के साथ होता है और उसके पश्चात् दोनों पति-पत्नी विदेशी नागरिकता ग्रहण कर लेते हैं तो यदि कालांतर में उनके बीच वैवाहिक विवाद उद्‌भूत होता है तो ऐसे विवाद को ग्रहण करने की अधिकारिता का प्रश्न भारतीय न्यायालय और उस विदेशी न्यायालय जिसकी नागरिकता उन्होंने ग्रहण की है, के बीच उद्‌भूत होता है । ऐसे प्रश्न पर विचार करते हुए, माननीय उच्चतम न्यायालय ने **दिनेश सिंह ठाकुर** बनाम **सोनल ठाकुर** [2018] 4 उम. नि. प. 19 वाले मामले में, यह अभिनिर्धारित किया कि यदि पति-पत्नी के बीच हिन्दू रीति-रिवाजों के

अनुसार, भारत में विधिमान्य विवाह संपन्न होता है और तत्पश्चात्, पति और पत्नी विदेशी नागरिकता ग्रहण कर लेते हैं और उनके बीच वैवाहिक विवाद उद्भूत होता है तो ऐसे विवाद को ग्रहण करने की अधिकारिता भारतीय न्यायालय के साथ ही साथ उस विदेशी न्यायालय को भी प्राप्त होती है, जिस विदेशी न्यायालय की अधिकारिता के अधीन उन्होंने नागरिकता ग्रहण की है और वैवाहिक विवादों के मामले में, विदेशी न्यायालय द्वारा की गई कार्यवाहियों को तब तक अवरुद्ध करना न्यायोचित नहीं होगा जब तक कि उन कार्यवाहियों के कारण पति या पत्नी के साथ घोर अन्याय नहीं होता है या न्याय का उद्देश्य विफल नहीं होता है ।

प्रिवी कौंसिल द्वारा दिए गए तारीख 11.7.1939 से तारीख 12.10.1939 तक के निर्णयों के हिंदी पाठ और शीर्ष टिप्पण पाठकों के ज्ञान के लिए प्रकाशित किए जा रहे हैं । इस अंक में केन्द्रीय अधिनियम अखिल भारतीय सेवा अधिनियम, 1951 तथा पशुओं में संक्रामक और सांसर्गिक रोगों का निवारण और नियंत्रण अधिनियम, 2009 को भी ज्ञानार्थ प्रकाशित किया जा रहा है । इस संपूर्ण अंक का परिशीलन करने के पश्चात् आपकी बहुमूल्य प्रतिक्रियाएं ईप्सित हैं ।

कमला कान्त
संपादक

निर्णय-सूची

पृष्ठ संख्या

आय-कर आयुक्त, करनाल **बनाम** मैसर्स कारपेट इंडिया, पानीपत (हरियाणा) 33

ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड **बनाम** मैसर्स नरभेराम पावर एंड स्टील प्राइवेट लिमिटेड 76

उम्मेर **बनाम** पोतेंगल सुबिदा और अन्य 13

खुर्शीद अहमद **बनाम** जम्मू-कश्मीर राज्य 137

दिनेश सिंह ठाकुर **बनाम** सोनल ठाकुर 19

निशान सिंह **बनाम** ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, क्षेत्रीय प्रबंधक और अन्य 63

पुरूषोतम सुपुत्र तुलसीराम बड़वेक **बनाम** अनिल और अन्य 97

प्रमोद लक्ष्मण गुडाढे **बनाम** भारत का निर्वाचन आयोग और अन्य 125

भूपेन्द्र कुमार चिमनभाई काचिया पटेल **बनाम** प्रभागीय नियंत्रक, जीएसआरटीसी, नाडियाड 1

मुरुगन **बनाम** तमिलनाडु राज्य 114

शंकर **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य 47

सुरेश धोबी **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य
(देखिए – पृष्ठ संख्या 47)

संसद् के अधिनियम

अखिल भारतीय सेवा अधिनियम, 1951 1 – 3

पशुओं में संक्रामक और सांसर्गिक रोगों का निवारण और नियंत्रण अधिनियम, 2009 1 – 28

प्रिवी कौंसिल के निर्णय 1 – 49

पृष्ठ संख्या

आय-कर अधिनियम, 1961 (1961 का 43)

– धारा 80जजग (1क), (3क) और स्पष्टीकरण (खकक) तथा धारा 28 – निर्यात कारबार के लिए प्रतिधारित लाभों की बाबत कटौती – समर्थक विनिर्माता द्वारा निर्यात प्रोत्साहन की बाबत प्रत्यक्ष विनिर्माता के बराबर कटौती का दावा किया जाना – धारा 80जजग की उपधारा (1क) और (3क) तथा इसके स्पष्टीकरण (खकक) में समर्थक विनिर्माता के लिए 90 प्रतिशत की कटौती के उपबंध को देखते हुए उच्च न्यायालय द्वारा निर्धारिती-समर्थक विनिर्माता के पक्ष में किया गया विनिश्चय सही प्रतीत न होने के कारण उसके दावे का विनिश्चय करने के लिए इसे बृहत्तर न्यायपीठ को निर्दिष्ट करना समुचित और न्यायोचित होगा ।

आय-कर आयुक्त, करनाल बनाम **मैसर्स कारपेट इंडिया, पानीपत (हरियाणा)** 33

जम्मू और कश्मीर दंड प्रक्रिया संहिता, 1989 संवत् (1989 का 23)

– धारा 423 – दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील – उच्च न्यायालय की शक्ति – दोषमुक्ति और दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील में अपील न्यायालय की हस्तक्षेप करने की शक्ति हालांकि एक जैसी है, किंतु निर्दोषिता की उपधारणा अभियुक्त के पक्ष में होती है और जहां दो मत संभव हों, वहां अपील न्यायालय दोषमुक्ति के आदेश में हस्तक्षेप नहीं करेगा अपितु तब हस्तक्षेप करेगा जब उसका यह विचार है कि साक्ष्य का मूल्यांकन गलत बातों पर आधारित है और विचारण न्यायालय द्वारा अवैधता बरतीं गई है ।

खुर्शीद अहमद बनाम **जम्मू-कश्मीर राज्य** 137

पृष्ठ संख्या

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45)

– धारा 302/149 – हत्या और विधिविरुद्ध जमाव – दोषसिद्धि – कई सारे अभियुक्तों द्वारा चाकू, गुप्ती और लात-घूसों से मृतक पर हमला किया जाना – अपीलार्थी-अभियुक्तों की भूमिका लात-घूसों से पिटाई करने तक पाया जाना – चिकित्सीय साक्ष्य के अनुसार चाकू से कारित क्षति के कारण मृत्यु होना – जहां अभियुक्तों द्वारा निभाई गई भूमिका के बारे में घटना के प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के साक्ष्य में विरोधाभास हो और तात्विक पहलुओं पर एक-दूसरे के कथन से संपुष्टि न होती हो तथा घटना का कोई स्वतंत्र साक्षी भी न हों, वहां अभियुक्तों की दोषिता युक्तियुक्त संदेह के परे साबित न होने पर केवल धारणाओं और उपधारणाओं के आधार पर की गई उनकी दोषसिद्धि को कायम रखना न्यायोचित नहीं होगा ।

शंकर बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** 47

– धारा 302, 364 और 34 – हत्या – सामान्य आशय – पारिस्थितिक साक्ष्य – हेतु – जहां साक्षियों के साक्ष्य से यह सिद्ध हो गया हो कि अभियुक्तों में से एक मृतक की पुत्री से विवाह करना चाहता था और मृतक को यह प्रस्ताव स्वीकार्य नहीं था तथा मृतक अभियुक्तों के निमंत्रण पर एक अभियुक्त के मकान पर रात्रि-भोजन के लिए गया और अंतिम बार उसे अभियुक्तों के साथ देखा गया और उसके ठीक पश्चात् मृत पाया गया, वहां अभियुक्तों द्वारा अपने विरुद्ध प्रकट होने वाली परिस्थितियों का कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया जाना ऐसी परिस्थितियां हैं जिनसे मृतक की मृत्यु कारित करने का हेतु सिद्ध होता है और अभियुक्त का सामान्य आशय होने के कारण उसकी दोषसिद्धि उचित है और उसमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है ।

मुरुगन बनाम **तमिलनाडु राज्य** 114

पृष्ठ संख्या

माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996(1996 का 26)

– धारा 11(6) – मध्यस्थ की नियुक्ति – जहां बीमाकर्ता कंपनी द्वारा निराकरण पत्र के माध्यम से कारण बताते हुए बीमा संबंधी दावे को नामंजूर कर दिया जाता है वहां इसका अभिप्राय बीमाकर्ता द्वारा दायित्व से पूर्णतः प्रत्याख्यान करना न कि दावे की धनराशि को विवादित करना होगा, इसलिए, ऐसा विवाद माध्यस्थम् के लिए निर्देशित नहीं किया जा सकेगा और शिकायतों के शमन के लिए सिविल वाद फाइल करना ही समुचित उपचार होगा ।

ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम **मैसर्स नरभेराम पावर एंड स्टील प्राइवेट लिमिटेड** 76

– धारा 85 – माध्यस्थम् के लिए निर्देश – 1996 के अधिनियम के प्रवृत्त होने के काफी समय पश्चात् निष्पादित भागीदारी करार में विवादों को माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 के उपबंधों के अनुसार माध्यस्थम् को निर्देशित करने का अनुबंध – 1996 के नए अधिनियम के प्रवर्तन में आने के पश्चात्, भागीदारी करार में विवादों को 1940 के अधिनियम के अधीन माध्यस्थम् को निर्देशित करने संबंधी अनुबंध का कोई महत्व नहीं होगा किन्तु करार में 1940 के अधिनियम के लागू होने के संबंध में गलत निर्देश करने के कारण संपूर्ण करार अविधिमान्य नहीं हो जाएगा ।

पुरूषोतम सुपुत्र तुलसीराम बड़वेक बनाम **अनिल और अन्य** 97

मोटर यान अधिनियम, 1988(1988 का 59)

– धारा 140 – त्रुटि के बिना दायित्व – प्रतिकर – ट्रक के चालक द्वारा अचानक ब्रेक लगाने के कारण उससे पीछे चलने वाली कार के दुर्घटनाग्रस्त होने के कारण एक व्यक्ति की मृत्यु – यद्यपि यह दुर्घटना कार के चालक द्वारा दोनों यानों के बीच पर्याप्त दूरी न बनाए रखने के कारण हुई

पृष्ठ संख्या

थी तथापि, ट्रक का स्वामी और चालक, इस तथ्य को ध्यान में रखे बिना कि ट्रक को उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रीति से नहीं चलाया जा रहा था, धारा 140 के अधीन प्रतिकर का संदाय संयुक्ततः और पृथक्तः करने के लिए दायी होंगे ।

निशान सिंह बनाम **ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, क्षेत्रीय प्रबंधक और अन्य** 63

– धारा 166 और 118 सपठित रूल्स आफ दि रोड रेग्युलेशन्स, 1989, विनियम 23 – प्रतिकर – उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रीति में यान चलाना – यानों के बीच दूरी – किसी मोटर यान के चालक द्वारा उससे ठीक आगे चलने वाले मोटर यान के बीच पर्याप्त दूरी न बनाए रखने के कारण हुई टक्कर के संबंध में यह उपदर्शित करने वाला कोई साक्ष्य न होने पर कि वह दुर्घटना आगे चलने वाले यान के चालक द्वारा सड़क के बीचों-बीच अचानक ब्रेक लगाने के कारण घटी थी, आगे चलने वाले यान के चालक को उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रीति से यान चलाने का दोषी नहीं ठहराया जा सकता है ।

निशान सिंह बनाम **ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, क्षेत्रीय प्रबंधक और अन्य** 63

रणबीर दंड संहिता, 1989 (संवत् 1989 का 12)

– धारा 302 और 341 – हत्या – हेतु – दोषसिद्धि – अभियुक्त तथा मृतक के बीच लेन-देन को लेकर घटना के दिन झगड़ा होना – अभियुक्त द्वारा बाद में मृतक के सिर पर लोहे की छड़ से प्रहार किया जाना – मृतक को पहुंची क्षतियों के कारण मृत्यु हो जाना – अभिलेख पर उपलब्ध प्रत्यक्ष मौखिक साक्ष्य के साथ-साथ चिकित्सीय साक्ष्य से अभियुक्त की दोषिता इंगित होने और प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के साक्ष्य की संपुष्टि अन्य साक्षियों के साक्ष्य से होने पर अपराध कारित करने के लिए हेतु को साबित न करने की बात महत्वहीन हो जाती है और अभियुक्त के विरुद्ध मामला

पृष्ठ संख्या

युक्तियुक्त संदेह के परे साबित हो जाने पर उसकी दोषसिद्धि उचित है तथा उसमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है ।

खुर्शीद अहमद बनाम **जम्मू-कश्मीर राज्य** 137

– धारा 302 और 341 [सपठित जम्मू और कश्मीर साक्ष्य अधिनियम, 1977 संवत् की धारा 3] – हत्या – घनिष्ठ नातेदार साक्षी का प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य – विश्वसनीयता – दोषसिद्धि – यदि किसी प्रत्यक्षदर्शी साक्षी का साक्ष्य विश्वासोत्पादक है, भले ही वह आहत का घनिष्ठ नातेदार है, तो इसकी संपुष्टि की ईप्सा किए बिना छोटी-मोटी तात्विक विशिष्टियों के साथ उसका अवलंब लिया जाना उचित होगा और उसके साक्ष्य के आधार पर अभियुक्त को दोषसिद्ध किया जा सकता है ।

खुर्शीद अहमद बनाम **जम्मू-कश्मीर राज्य** 137

लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 (1951 का 43)

– धारा 151क – लोक सभा उप-निर्वाचन – रिक्त स्थान को भरने की समय-सीमा – जब लोक सभा की किसी रिक्ति से संबंधित सदस्य की पदावधि का शेष भाग एक वर्ष से कम न हो और अभ्यर्थी के विरुद्ध कोई निर्वाचन विवाद लंबित न हो तथा निर्वाचन आयोग ने केन्द्रीय सरकार से परामर्श करके यह प्रमाणित न किया हो कि उक्त अवधि के भीतर ऐसा उप-निर्वाचन कराना कठिन है, तो उप-निर्वाचन अवश्य कराया जाना चाहिए ।

प्रमोद लक्ष्मण गुडाढे बनाम **भारत का निर्वाचन आयोग और अन्य** 125

संविधान, 1950

– अनुच्छेद 133 [सपठित औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 10, 18 और 25ग] – अपील – किसी संस्थान में 'बादली कामदार' के रूप में अस्थायी तौर पर निरंतर

पृष्ठ संख्या

180 दिनों की सेवा करना – एक विधिमान्य समझौते के अनुसरण में, समझौते की तारीख से उन्हें स्थायी कैडर व काल-वेतनमान मंजूर करना – यदि किसी संस्थान द्वारा किसी विधिमान्य समझौते के अनुसरण में, संस्थान में कार्यरत कर्मचारियों के 180 दिन की निरंतर सेवा पूरी करने के पश्चात्, उन्हें आमेलित करते हुए, आमेलन की तारीख से उन्हें स्थायी कैडर और वेतनमान मंजूर करता है तो ऐसे कर्मचारी संस्थान में अपनी नियुक्ति की तारीख से स्थायी कैडर व काल-वेतनमान देने की मांग नहीं कर सकते हैं, क्योंकि ऐसी मांग अनुचित और अविधिमान्य होगी ।

भूपेन्द्र कुमार चिमनभाई काचिया पटेल बनाम **प्रभागीय नियंत्रक, जीएसआरटीसी, नाडियाड** 1

– अनुच्छेद 133 [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश 9 का नियम 13 और परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5] – अपील फाइल करने में 554 दिनों का विलंब होना – विलंब की माफी के लिए आवेदन करना – आवेदन में विलंब होने के पर्याप्त कारण का उल्लेख होना – आवेदन नामंजूर होना – यदि कोई अपील नियत समय के भीतर फाइल नहीं की जाती है और अपील फाइल करने में हुए, विलंब का पर्याप्त कारण अभिलेख पर दर्शित कर दिया जाता है तो इन परिस्थितियों में, अपील फाइल करने में हुए विलंब को माफ किया जा सकता है ।

उम्मेर बनाम **पोतेंगल सुबिदा और अन्य** 13

– अनुच्छेद 133 [सपठित हिन्दू विवाद अधिनियम, 1955 की धारा 13 और 26 तथा विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 41] – अपील – पति-पत्नी के बीच हिन्दू रीति-रिवाजों के अनुसार, भारत में विवाह संपन्न होना – विवाह के पश्चात्, पति-पत्नी द्वारा विदेशी नागरिकता ग्रहण कर लेना – पति-पत्नी के बीच विवाद होना – पत्नी द्वारा

पृष्ठ संख्या

पति के विरुद्ध असुधार्य विवाह-भंग के आधार पर फ्लोरिडा, यूएसए के न्यायालय में, विवाह-विच्छेद और भरण-पोषण के लिए रिट फाइल करना – पति द्वारा गुड़गांव, भारत के कुटुम्ब न्यायालय के समक्ष उपर्युक्त याचिका में कार्यवाहियों को अवरुद्ध करने के लिए वाद फाइल करना – वाद खारिज होना – वाद खारिज होने से न्याय का उद्देश्य विफल नहीं होना और अन्याय का शाश्वत् जारी नहीं रहना – यदि पति-पत्नी के बीच हिन्दू रीति-रिवाजों के अनुसार, भारत में विधिमान्य विवाह संपन्न होता है और तत्पश्चात्, पति और पत्नी विदेशी नागरिकता ग्रहण कर लेते हैं और उनके बीच वैवाहिक विवाद उद्भूत होता है तो ऐसे विवाद को ग्रहण करने की अधिकारिता भारतीय न्यायालय के साथ ही साथ उस विदेशी न्यायालय को भी प्राप्त होती है, जिस विदेशी न्यायालय की अधिकारिता के अधीन उन्होंने नागरिकता ग्रहण की है और वैवाहिक विवादों के मामले में, विदेशी न्यायालय द्वारा की गई कार्यवाहियों को तब तक अवरुद्ध करना न्यायोचित नहीं होगा जब तक कि उन कार्यवाहियों के कारण पति या पत्नी के साथ घोर अन्याय नहीं होता है या न्याय का उद्देश्य विफल नहीं होता है ।

दिनेश सिंह ठाकुर बनाम **सोनल ठाकुर** 19

[2018] 4 उम. नि. प. 1

भूपेन्द्र कुमार चिमनभाई काचिया पटेल

बनाम

प्रभागीय नियंत्रक, जीएसआरटीसी, नाडियाड

7 मार्च, 2018

न्यायमूर्ति आर. के. अग्रवाल और न्यायमूर्ति अभय मनोहर सप्रे

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 133 [सपठित औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 10, 18 और 25ग] – अपील – किसी संस्थान में 'बादली कामदार' के रूप में अस्थायी तौर पर निरंतर 180 दिनों की सेवा करना – एक विधिमान्य समझौते के अनुसरण में, समझौते की तारीख से उन्हें स्थायी कैडर व काल-वेतनमान मंजूर करना – यदि किसी संस्थान द्वारा किसी विधिमान्य समझौते के अनुसरण में, संस्थान में कार्यरत कर्मचारियों के 180 दिन की निरंतर सेवा पूरी करने के पश्चात्, उन्हें आमेलित करते हुए, आमेलन की तारीख से उन्हें स्थायी कैडर और वेतनमान मंजूर करता है तो ऐसे कर्मचारी संस्थान में अपनी नियुक्ति की तारीख से स्थायी कैडर व काल-वेतनमान देने की मांग नहीं कर सकते हैं, क्योंकि ऐसी मांग अनुचित और अविधिमान्य होगी ।

वर्तमान मामले में, प्रफुल्लभाई हीराभाई सोलंकी, इसमें के अपीलार्थियों में से एक है, जिसका नाम, जूनागढ़ अनुभाग के मंगरोल डिपो में 'बादली कामदार' के रूप में तारीख 4 जून, 1999 को प्रत्यर्थी-गुजरात राज्य सड़क परिवहन निगम की सेवाओं में नियोजित विशेष इजाजत याचिका की अभिलेख पुस्तिका के पृष्ठ 18 पर प्रतीत होता है । वह दैनिक मजदूर के रूप में नियोजित था । तारीख 21 दिसम्बर, 1989 को निगम में कार्यरत कर्मचारियों के सेवा शर्तों के संबंध में कतिपय विवाद्यकों को हल करने के लिए निगम और कर्मचारियों के संघ के बीच एक समझौता हुआ था । समझौते का खंड 20, जो इन अपीलों का निपटारा करने के लिए सुसंगत है, कंडक्टर के स्थायी कैडर में 'बादली कामदार' के नियोजन और आमेलन तथा ऐसे कर्मकारों को काल-वेतनमान मंजूर करने पर विचार करता है ।

यह ऐसी प्रक्रिया का उपबंध करता है कि 'बादली कामदार' की सेवाओं को कैसे, कब और किन तरीकों से विनियमित किया जाएगा और विशिष्ट काल-वेतनमान में आमेलित किया जाएगा । तारीख 21 दिसम्बर, 1989 के समझौते के खंड 20 के निबंधनों में, निगम को अपीलार्थी के मामले पर विचार करना था जब कंडक्टर के पद पर स्थायी कैडर में रिक्ति उद्भूत होती और तद्नुसार, उसे कंडक्टर के रूप में तारीख 27 अगस्त, 2008 को निगम की सेवाओं में स्थायी कर्मचारी के रूप मे आमेलित कर लिया गया था । उसे पारिणामिक फायदों के साथ तारीख 27 अगस्त, 2008 के तत्काल प्रभाव से काल-वेतनमान दिया गया था । अपीलार्थी की तरह से, कई सौ 'बादली कामदार' थे जो सुसंगत समय पर निगम में कार्य कर रहे थे । इन 'बादली कामदारों' के मामलों पर भी विचार किया गया, यह निष्कर्ष निकालने के लिए कि क्या वे निगम में स्थायी होने के लिए खंड 20 की शर्तों को पूरा करते हैं जैसे और जब कंडक्टर के कैडर में स्थायी रिक्तियां उद्भूत होंगी । उनमें से जो अर्ह पाए गए थे और शर्तों को पूरा करते थे, वे कंडक्टर के पद पर स्थायी कर्मचारियों के रूप में सेवा में आमेलित कर लिए गए थे और तद्नुसार, उन्हें कैडर में 180 दिनों की सेवा समाप्त करने के पश्चात् काल-वेतनमान दे दिया गया था । तद्नुसार, उन्हें समझौते के खंड 20 में विहित प्रक्रिया के निबंधनों में स्थायी कर दिया गया था । इसी कारण, कर्मचारियों और निगम के बीच में विवाद हुआ । कर्मचारी (अपीलार्थी) के अनुसार, वह 'बादली कामदार' के रूप में सेवा में आरंभिक पदग्रहण की तारीख से सेवा की 180 दिन की समाप्ति पर अर्थात् तारीख 4 जून, 1999 से इस फायदे को पाने का हकदार था और न कि आमेलन की तारीख से, जबकि निगम के अनुसार, अपीलार्थी और अपीलार्थी की तरह से सभी कर्मचारी उस तारीख से 180 दिन की समाप्ति पर सही तौर पर फायदा पाने के हकदार थे जब वे स्थायी कैडर में आमेलित हुए थे अर्थात् जैसा कि अपीलार्थी के मामले में 27 अगस्त, 2008 से, जैसा कि समझौते के खंड 20 में उपबंधित है । औद्योगिक अधिकरण ने तारीख 8 अगस्त, 2013 के अधिनिर्णय (उपाबंध पी-12) द्वारा निर्देश का उत्तर कर्मचारियों के पक्ष में दिया और तद्नुसार, उनके उन फायदों को मंजूर कर लिया जिनका कर्मचारियों ने दावा किया था । निगम व्यथित हुआ और इसके विरुद्ध गुजरात उच्च न्यायालय, अहमदाबाद में रिट याचिका फाइल की । उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने तारीख 18 सितम्बर, 2014 के आदेश द्वारा रिट याचिका मंजूर कर ली और औद्योगिक

अधिकरण के अधिनिर्णय को अपास्त कर दिया । एकल न्यायाधीश ने निगम द्वारा लिए गए आधार को स्वीकार कर लिया और तद्नुसार, उन्होंने निगम द्वारा समझौते के खंड 20 में यथाउपबंधित तारीख 27 अगस्त, 2008 से कर्मचारी (अपीलार्थी) के फायदों को मंजूर करने की कार्रवाई को कायम रखा । अपीलार्थी (कर्मचारीगण) व्यथित हुए और इसके विरुद्ध, खंड न्यायपीठ के समक्ष आंतरिक न्यायालय अपीलें फाइल कीं । आक्षेपित निर्णयों और आदेशों द्वारा खंड न्यायपीठ ने कर्मचारियों द्वारा फाइल अपीलों को खारिज कर दिया और एकल न्यायाधीश के उन आदेशों को कायम रखा, जिसके कारण कर्मचारियों ने इस न्यायालय के समक्ष विशेष इजाजत अपील के माध्यम से इन अपीलों को फाइल किया । न्यायालय द्वारा अपीलों को खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह विवादित नहीं है कि निगम ने कर्मचारियों को उनका स्थायी कैडर मंजूर करते समय और कंडक्टर का काल-वेतनमान देते समय खंड 20 में उपबंधित प्रक्रिया का पालन किया है । दूसरे शब्दों में, सभी अर्ह 'बादली कामदारों' को संस्थान में आमेलित कर लिया गया था और तद्नुसार, समझौते के खंड 20 में विहित प्रक्रिया के निबंधनों में फायदे दिए गए थे । इन अविवादित तथ्यों से भी यह स्पष्ट होता है कि प्रथमतः अपीलार्थी (संबंधित कर्मचारी) को तारीख 4 जून, 1999 को निगम में 'बादली कामदार' के रूप में नियुक्त किया गया था, द्वितीयतः, कंडक्टर के स्थायी कैडर में तारीख 27 अगस्त, 2008 के आस-पास स्पष्ट रिक्ति उद्भूत हुई थी, तृतीयतः, 'बादली कामदारों' की ज्येष्ठता सूची के अनुसार, अपीलार्थी को तद्नुसार, उस कैडर में उसकी सेवा के 180 दिन पूरे होने पर तारीख 27 अगस्त, 2008 के तत्काल प्रभाव से काल-वेतनमान पर स्थायी कैडर में आमेलित किया गया था और जिसके परिणामस्वरूप उसे उक्त तारीख से उक्त पद के सभी फायदे दिए गए थे और अंततः, तभी से, उसके बाद, अपीलार्थी और उसके समान अन्य सभी कर्मचारी क्रमशः अपने पद पर निरंतर बने हुए हैं । न्यायालय की सुविचारित राय में, न्यायालय द्वारा उपर्युक्त अभिनिर्धारित के प्रकाश में, अपीलार्थियों (कर्मचारियों) के पास 'बादली कामदार' के रूप में अपनी आरंभिक नियुक्ति की तारीख से उपर्युक्त फायदों का दावा करने के लिए कोई आधार नहीं है । वस्तुतः, इस प्रकार के फायदों का दावा करने के लिए न तो कोई तथ्यात्मक आधार है, न ही कोई विधिक आधार है । अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल भी ऐसा कोई दस्तावेज दर्शित करने में समर्थ नहीं हुए हैं जिससे कि अपीलार्थियों

का उनकी आरंभिक नियुक्ति की तारीख से ऐसे फायदों का दावा करने के लिए उन्हें समर्थ बनाता जो उनके नियुक्ति पत्र के निबंधनों/शर्तों में या समझौते में या निगम द्वारा विरचित किसी नियम/विनियम में ऐसे अधिकार को मान्यता देता है । समझौते का खंड 20 मात्र ऐसा खंड है जो वैयक्तिक आधार पर उनके मामले पर विचार करने के लिए अपीलार्थी के आधार को मान्यता प्रदान करता है और उसे उसमें विनिर्दिष्ट शर्तों को पूरा करने के अध्यधीन उसे फायदा मंजूर करता है जो अपीलार्थी के मामले में संतोषप्रद पाया गया था और तद्नुसार, उसे ऐसे प्रत्येक कर्मचारियों के साथ फायदा मंजूर किया गया था । यहां यह उल्लेख करना आवश्यक है कि अपीलार्थियों ने न तो समझौते को चुनौती दी है न ही इसकी प्रयोज्यता को । दूसरे शब्दों में, इन कार्यवाहियों में, तारीख 21 दिसम्बर, 1989 के समझौते की वैधता या/और बाध्यकारी प्रकृति को कभी भी प्रश्नगत नहीं किया गया है । मामले में इस मत को ध्यान में रखते हुए, अधिनियम, 1947 की धारा 18 के निबंधनों में, दोनों पक्षकारों पर समझौता बाध्यकारी है । (पैरा 28, 29, 30, 31, 32 और 33)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2018 की सिविल अपील सं. 2546 के साथ 2594-2597, 2556-2592, 2547-2555.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 133 के अधीन अपील ।

पक्षकारों की ओर से सर्वश्री तुषार मेहता, अपर महासालिसिटर, कॉलिन गॉन्साल्वेस, ज्येष्ठ अधिवक्ता, निखिल गोयल, (सुश्री) नवीन गोयल, आशुतोष गारे, (सुश्री) अदिति गुप्ता, सत्या मित्रा, अधिवक्तागण

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति अभय मनोहर सप्रे ने दिया ।

न्या. सप्रे – इजाजत दी जाती है ।

2. ये अपीलें गुजरात उच्च न्यायालय, अहमदाबाद द्वारा तारीख 28 जून, 2016 की लेटर्स पेटेंट अपील सं. 550/2016, तारीख 22 अगस्त, 2017 की लेटर्स पेटेंट अपील सं. 1344-1347/2017, तारीख 4 अगस्त, 2017 की लेटर्स पेटेंट अपील सं. 1185/2014, 1199, 1252, 1254-1259, 1261, 1264-1278, 1281-1282, 1284, 1286, 1288, 1291-1296,

1298/2014, तारीख 21 जून, 2016 की लेटर्स पेटेंट अपील सं. 497-500/2016 और तारीख 4 जुलाई, 2017 की लेटर्स पेटेंट अपील सं. 1200, 1287, 1289, 1297 और 1299/2014 में पारित अंतिम निर्णयों और आदेशों के विरुद्ध फाइल की गई है, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने इसमें के अपीलार्थी द्वारा फाइल अपीलों को खारिज कर दिया था और उच्च न्यायालय की एकल न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णयों को कायम रखा था ।

3. इन अपीलों में अंतर्वलित विवाद्यकों का मूल्यांकन करने के अनुक्रम में, तथ्यों का सविस्तार उल्लेख करना आवश्यक है । इन सभी अपीलों में उद्भूत होने वाले तथ्य और विधिक विवाद्यक प्रकृति में समान है, सिवाय उनके आरंभिक नियुक्ति और आमेलन के, जो प्रत्यर्थी की सेवा में मामले-दर-मामले भिन्न हैं ।

4. सुविधा के लिए, 2017 की विशेष इजाजत याचिका सं. 28519-28522 की अभिलेख पुस्तिका के निर्देश आई. टी. संख्या 4/2011 (उपाबंध 12) में उल्लिखित तथ्य, निम्न हैं ।

5. प्रफुल्लभाई हीराभाई सोलंकी, इसमें के अपीलार्थियों में से एक है, जिसका नाम, जूनागढ़ अनुभाग के मंगरोल डिपो में 'बादली कामदार' के रूप में तारीख 4 जून, 1999 को प्रत्यर्थी-गुजरात राज्य सड़क परिवहन निगम (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'निगम' कहा गया है) की सेवाओं में नियोजित विशेष इजाजत याचिका की अभिलेख पुस्तिका के पृष्ठ 18 पर प्रतीत होता है । वह दैनिक मजदूर के रूप में नियोजित था ।

6. तारीख 21 दिसम्बर, 1989 को निगम में कार्यरत कर्मचारियों के सेवा शर्तों के संबंध में कतिपय विवाद्यकों को हल करने के लिए निगम और कर्मचारियों के संघ के बीच एक समझौता हुआ था ।

7. समझौते का खंड 20, जो इन अपीलों का निपटारा करने के लिए सुसंगत है, कंडक्टर के स्थायी काडर में 'बादली कामदार' के नियोजन और आमेलन तथा ऐसे कर्मकारों को काल-वेतनमान मंजूर करने पर विचार करता है । यह ऐसी प्रक्रिया का उपबंध करता है कि 'बादली कामदार' की सेवाओं को कैसे, कब और किन तरीकों से विनियमित किया जाएगा और विशिष्ट काल-वेतनमान में आमेलित किया जाएगा ।

8. तारीख 21 दिसम्बर, 1989 के समझौते के खंड 20 के निबंधनों में, निगम को अपीलार्थी के मामले पर विचार करना था जब कंडक्टर के

पद पर स्थायी कैडर में रिक्ति उद्भूत होती और तद्नुसार, उसे कंडक्टर के रूप में तारीख 27 अगस्त, 2008 को निगम की सेवाओं में स्थायी कर्मचारी के रूप मे आमेलित कर लिया गया था । उसे पारिणामिक फायदों के साथ तारीख 27 अगस्त, 2008 के तत्काल प्रभाव से काल-वेतनमान दिया गया था ।

9. अपीलार्थी की तरह से, कई सौ 'बादली कामदार' थे जो सुसंगत समय पर निगम में कार्य कर रहे थे । इन 'बादली कामदारों' के मामलों पर भी विचार किया गया, यह निष्कर्ष निकालने के लिए कि क्या वे निगम में स्थायी होने के लिए खंड 20 की शर्तों को पूरा करते हैं जैसे और जब कंडक्टर के कैडर में स्थायी रिक्तियां उद्भूत होंगी । उनमें से जो अर्ह पाए गए थे और शर्तों को पूरा करते थे, वे कंडक्टर के पद पर स्थायी कर्मचारियों के रूप में सेवा में आमेलित कर लिए गए थे और तद्नुसार, उन्हें कैडर में 180 दिनों की सेवा समाप्त करने के पश्चात् काल-वेतनमान दे दिया गया था । तद्नुसार, उन्हें समझौते के खंड 20 में विहित प्रक्रिया के निबंधनों में स्थायी कर दिया गया था ।

10. इसी कारण, कर्मचारियों और निगम के बीच में विवाद हुआ । आवश्यक रूप से, विवाद्यक यह था कि ऐसे 'बादली कामदारों' को किस तारीख से यह फायदा अर्थात् उन्हें स्थायी किया जाना चाहिए और काल-वेतनमान का फायदा मंजूर किया जाना चाहिए ।

11. कर्मचारी (अपीलार्थी) के अनुसार, वह 'बादली कामदार' के रूप में सेवा में आरंभिक पदग्रहण की तारीख से सेवा की 180 दिन की समाप्ति पर अर्थात् तारीख 4 जून, 1999 से इस फायदे को पाने का हकदार था और न कि आमेलन की तारीख से, जबकि निगम के अनुसार, अपीलार्थी और अपीलार्थी की तरह से सभी कर्मचारी उस तारीख से 180 दिन की समाप्ति पर सही तौर पर फायदा पाने के हकदार थे जब वे स्थायी कैडर में आमेलित हुए थे अर्थात् जैसा कि अपीलार्थी के मामले में 27 अगस्त, 2008 से, जैसा कि समझौते के खंड 20 में उपबंधित है ।

12. तद्नुसार, इस विवाद्यक को अपीलार्थी की प्रेरणा पर औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'अधिनियम' कहा गया है) की धारा 10 के अधीन औद्योगिक अधिकरण राजकोट को निर्दिष्ट किया गया । इसी प्रकार की स्थिति में रहने वाले कर्मचारियों की प्रेरणा पर औद्योगिक अधिकरण के समक्ष कतिपय ऐसे अन्य निर्देश भी किए गए ।

13. औद्योगिक अधिकरण ने तारीख 8 अगस्त, 2013 के अधिनिर्णय (उपाबंध पी-12) द्वारा निर्देश का उत्तर कर्मचारियों के पक्ष में दिया और तद्नुसार, उनके उन फायदों को मंजूर कर लिया जिनका कर्मचारियों ने दावा किया था । दूसरे शब्दों में, औद्योगिक अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित किया कि अपीलार्थी (कर्मचारी) अपनी आरंभिक पदग्रहण की तारीख अर्थात् 4 जून, 1999 से सेवा में 180 दिन की समाप्ति के तत्काल प्रभाव से कंडक्टर के रूप में काल-वेतनमान में अपनी सेवा में स्थायी आमेलन का दावा करने का हकदार है । तद्नुसार, निगम को ऐसी तारीख से सभी पारिणामिक फायदों का संदाय करने के लिए कहा था । सारांश में, औद्योगिक अधिकरण ने निगम द्वारा लिए गए आधार को नामंजूर कर दिया था ।

14. निगम व्यथित हुआ और इसके विरुद्ध गुजरात उच्च न्यायालय, अहमदाबाद में रिट याचिका फाइल की । उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने तारीख 18 सितम्बर, 2014 के आदेश द्वारा रिट याचिका मंजूर कर ली और औद्योगिक अधिकरण के अधिनिर्णय को अपास्त कर दिया । एकल न्यायाधीश ने निगम द्वारा लिए गए आधार को स्वीकार कर लिया और तद्नुसार, उन्होंने निगम द्वारा समझौते के खंड 20 में यथाउपबंधित तारीख 27 अगस्त, 2008 से कर्मचारी (अपीलार्थी) के फायदों को मंजूर करने की कार्रवाई को कायम रखा ।

15. अपीलार्थी (कर्मचारीगण) व्यथित हुए और इसके विरुद्ध, खंड न्यायपीठ के समक्ष आंतरिक न्यायालय अपीलें फाइल की । आक्षेपित निर्णयों और आदेशों द्वारा खंड न्यायपीठ ने कर्मचारियों द्वारा फाइल अपीलों को खारिज कर दिया और एकल न्यायाधीश के उन आदेशों को कायम रखा, जिसके कारण कर्मचारियों ने इस न्यायालय के समक्ष विशेष इजाजत अपील के माध्यम से इन अपीलों को फाइल किया ।

16. अपीलार्थियों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री कॉलिन गॉन्साल्वेस और प्रत्यर्थी के विद्वान् अपर महासालिसिटर श्री तुषार मेहता को सुना ।

17. अपीलार्थियों (कर्मचारियों) के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री कॉलिन गॉन्साल्वेस ने आक्षेपित आदेशों की वैधता और सत्यता को आक्षेपित करते हुए यह दलील दी कि औद्योगिक अधिकरण द्वारा दिए गए कारण और निकाले गए निष्कर्ष ठीक समुचित और विधिक थे तथा इसीलिए, इसमें उच्च न्यायालय (एकल न्यायाधीश और खंड न्यायपीठ) द्वारा हस्तक्षेप नहीं

किया जाना चाहिए था ।

18. विद्वान् काउंसेल ने यह तर्क दिया कि औद्योगिक अधिकरण के निष्कर्ष, पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों के समुचित मूल्यांकन पर आधारित थे, अतएव, ऐसे निष्कर्षों में कोई गलती नहीं हो सकती थी । विद्वान् काउंसेल ने साक्ष्यों के माध्यम से हमें यह दर्शित किया कि औद्योगिक अधिकरण द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष, एकल न्यायाधीश और खंड न्यायपीठ के निष्कर्षों के विरुद्ध कायम रखे जाने योग्य हैं ।

19. विद्वान् काउंसेल ने निगम और इसके कर्मचारियों के बीच पूर्ववर्ती मुकदमे में पारित कुछ न्यायिक आदेशों का अवलंब लिया, जिनके अनुसार, प्रश्नगत विवाद्यक को कर्मचारियों के पक्ष में विनिश्चित किया गया था ।

20. अपीलार्थियों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने यह निवेदन किया कि इन न्यायिक आदेशों के प्रकाश में, इसी प्रकार के आदेश इन अपीलों में भी पारित किया जाना चाहिए ।

21. उत्तर में प्रत्यर्थी के विद्वान् अपर महासालिसिटर श्री तुषार मेहता ने आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया और यह दलील दी कि उच्च न्यायालय (एकल न्यायाधीश और खंड न्यायपीठ) के समवर्ती निष्कर्ष कायम रखे जाने योग्य है ।

22. समझौते के खंड 20 का अवलंब लेते हुए, विद्वान् अपर महासालिसिटर ने यह दलील दी कि निगम द्वारा की गई कार्रवाई खंड 20 की अपेक्षाओं की पुष्टि में है, अतएव, ये कायम रखे जाने योग्य हैं ।

23. पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुनने और मामले के अभिलेखों का परिशीलन करने के पश्चात्, हम इन अपीलों में कोई गुणागुण नहीं पाते हैं ।

24. विद्वान् अपर महासालिसिटर द्वारा यह सही ही तर्क दिया गया है कि प्रश्नगत विवाद्यक को समझौते के खंड 20 के प्रकाश में विनिश्चित किया जाना चाहिए ।

25. इस विधिक प्रतिपादना को विवादित नहीं किया जा सकता है कि जब नियोजक और कर्मचारियों के बीच एक बार समझौता हो गया जैसा कि अधिनियम की धारा 18 में उपबंधित है तो यह नियोजक और कर्मचारियों के बीच आबद्धकर हो जाता है ।

26. यह विवादित नहीं है कि तारीख 21 दिसम्बर, 1989 को निगम और निगम के कर्मकारों के संघ के बीच उनकी सेवा शर्तों के संबंध में विभिन्न विवाद्यकों के बारे में समझौता हो गया था । ऐसा विवाद्यक भी निगम के स्थायी कैडर में 'बादली कामदारों' के आमेलन से संबंधित था । खंड 20 उन तरीकों को उपबंधित करता है जिनमें पक्षकारों द्वारा इन्हें प्रभावी बनाया जाना था ।

27. तारीख 21 दिसम्बर, 1989 के समझौते का खंड 20 निम्नलिखित है :–

> "तारीख 23 नवम्बर, 1984 के समझौते की धारा 29 के उपबंधों को हटाने और तारीख 22 अक्तूबर, 1964 के समझौते की धारा 43 के उपबंधों को प्रवर्तित कराने के लिए किए गए अभ्यावेदन के संदर्भ में, यह अवधारित किया जाता है कि चयनित कर्मचारियों की प्रभागीय सूची तैयार करने के पश्चात्, उन्हें खंड/यूनिट में स्थायी पदों के विरुद्ध अस्थायी/दैनिक मजदूर के रूप में नियुक्त किया गया और यदि ऐसे नियुक्त अस्थायी/दैनिक मजदूर ने 180 दिनों तक निरंतर रूप से कार्य किया है जिसमें साप्ताहिक छुट्टी/सवेतन छुट्टी और प्राधिकृत छुट्टी सम्मिलित है तो वे काल-वेतनमान प्राप्त करेंगे । यह उपबंध सिविल इंजीनियरिंग विभाग में प्रभार कार्य कर रहे कर्मचारियों को लागू नहीं होगा और ऐसे नियुक्त अस्थायी/दैनिक मजदूर जिन्होंने 180 दिनों तक निरंतर कार्य किया है जिसमें साप्ताहिक छुट्टी/सवेतन छुट्टी और प्राधिकृत छुट्टी सम्मिलित है तो उन्हें काल-वेतनमान दिया जाएगा और वे काल-वेतनमान कर्मचारियों को उपलब्ध सभी फायदों को पाने के हकदार होंगे । उपर्युक्त प्रयोजन के लिए प्राधिकृत छुट्टी के कारण अनुपस्थिति को भंग के रूप में विचार नहीं किया जाएगा और इन दिनों को 180 दिनों की सेवा के लिए विचार नहीं किया जाएगा ।
>
> एस.टी.टी. 1981 की अनुज्ञा के अनुसार, यदि स्टाफ की भर्ती अस्थायी या 'बादली कामदार' के रूप में की गई है तो सेवा के 180 दिन पूरे करने के पश्चात् उन्हें अनुज्ञा प्राप्त रिक्तियों पर क्रमवार काल-वेतनमान दिया जाएगा ।
>
> ऐसे कर्मकारों को तारीख 1 अगस्त, 1987 के तत्काल प्रभाव से सांकेतिक वेतन वृद्धि के साथ नियमों के अनुसार सभी फायदों को

मंजूर किया जाएगा और उनसे कोई भी वसूली नहीं की जाएगी न ही उन्हें कोई बकाया संदत्त किया जाएगा ।

सेवारत कर्मकार, मानसून के दौरान अपेक्षित नहीं है, इसलिए अपेक्षाओं के अनुसार उनकी छटनी की जा सकती है और मानसून के पश्चात् यदि उनकी सेवाएं अपेक्षित हैं तो पुनः उन्हें ज्येष्ठता क्रम के अनुसार लिया जा सकता है तो उन्हें काल-वेतनमान दिया जाएगा । यदि कोई स्थायी पद पर रिक्ति होती है तो काल-वेतनमान पर प्रशासनिक स्टाफ की नियुक्ति की जाएगी ।"

28. यह विवादित नहीं है कि निगम ने कर्मचारियों को उनका स्थायी कैडर मंजूर करते समय और कंडक्टर का काल-वेतनमान देते समय खंड 20 में उपबंधित प्रक्रिया का पालन किया है । दूसरे शब्दों में, सभी अर्ह 'बादली कामदारों' को संस्थान में आमेलित कर लिया गया था और तद्नुसार, समझौते के खंड 20 में विहित प्रक्रिया के निबंधनों में फायदे दिए गए थे ।

29. इन अविवादित तथ्यों से भी यह स्पष्ट होता है कि प्रथमतः अपीलार्थी (संबंधित कर्मचारी) को तारीख 4 जून, 1999 को निगम में 'बादली कामदार' के रूप में नियुक्त किया गया था, द्वितीयतः, कंडक्टर के स्थायी कैडर में तारीख 27 अगस्त, 2008 में और आस-पास स्पष्ट रिक्ति उद्भूत हुई थी, तृतीयतः, 'बादली कामदारों' की ज्येष्ठता सूची के अनुसार, अपीलार्थी को तद्नुसार, उस कैडर में उसकी सेवा के 180 दिन पूरे होने पर तारीख 27 अगस्त, 2008 के तत्काल प्रभाव से काल-वेतनमान पर स्थायी कैडर में आमेलित किया गया था और जिसके परिणामस्वरूप उसे उक्त तारीख से उक्त पद के सभी फायदे दिए गए थे और अंततः, तभी से, उसके बाद, अपीलार्थी और उसके समान अन्य सभी कर्मचारी क्रमशः अपने पद पर निरंतर बने हुए हैं ।

30. हमारी सुविचारित राय में, हमारे द्वारा उपर्युक्त अभिनिर्धारित के प्रकाश में, अपीलार्थियों (कर्मचारियों) के पास 'बादली कामदार' के रूप में अपनी आरंभिक नियुक्ति की तारीख से उपर्युक्त फायदों का दावा करने के लिए कोई आधार नहीं है । वस्तुतः, इस प्रकार के फायदों का दावा करने के लिए न तो कोई तथ्यात्मक आधार है, न ही कोई विधिक आधार है ।

31. अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल भी ऐसा कोई दस्तावेज दर्शित करने में समर्थ नहीं हुए हैं जिससे कि अपीलार्थियों का उनकी आरंभिक

नियुक्ति की तारीख से ऐसे फायदों का दावा करने के लिए उन्हें समर्थ बनाता जो उनके नियुक्ति पत्र के निबंधनों/शर्तों में या समझौते में या निगम द्वारा विरचित किसी नियम/विनियम में ऐसे अधिकार को मान्यता देता है ।

32. समझौते का खंड 20 मात्र ऐसा खंड है जो वैयक्तिक आधार पर उनके मामले पर विचार करने के लिए अपीलार्थी के आधार को मान्यता प्रदान करता है और उसे उसमें विनिर्दिष्ट शर्तों को पूरा करने के अध्यधीन उसे फायदा मंजूर करता है जो अपीलार्थी के मामले में संतोषप्रद पाया गया था और तद्नुसार, उसे ऐसे प्रत्येक कर्मचारियों के साथ फायदा मंजूर किया गया था ।

33. यहां यह उल्लेख करना आवश्यक है कि अपीलार्थियों ने न तो समझौते को चुनौती दी है न ही इसकी प्रयोज्यता को । दूसरे शब्दों में, इन कार्यवाहियों में, तारीख 21 दिसम्बर, 1989 के समझौते की वैधता या/और बाध्यकारी प्रकृति को कभी भी प्रश्नगत नहीं किया गया है । मामले में इस मत को ध्यान में रखते हुए, अधिनियम, 1947 की धारा 18 के निबंधनों में, दोनों पक्षकारों पर समझौता बाध्यकारी है ।

34. 'बादली कामदार' की अवधारणा को कानूनी तौर पर अधिनियम, 1947 के अधीन मान्यता प्राप्त है । धारा 25ग के स्पष्टीकरण 'बादली कामदार' के निबंधनों को परिभाषित किया गया है । अपीलार्थी ने 'बादली कामदार' के रूप में अपनी प्रास्थिति को कभी भी प्रश्नगत नहीं किया है । वस्तुतः, यह 'बादली कामदार' की प्रास्थिति के कारण ही है जिसमें उसने निगम में कुछ वर्षों तक सेवा की है जिससे उसे स्थायी कैडर में आमेलन का फायदा मिला है ।

35. जहां तक अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा कुछ पूर्ववर्ती न्यायिक आदेशों का अवलंब लेने का संबंध है, हमारे मत में वे अपीलार्थियों की कोई सहायता नहीं करते हैं क्योंकि वे आदेश मामले में अंतर्वलित तथ्यों पर लागू नहीं होते हैं और द्वितीयतः, हमारा यह निष्कर्ष है कि उन मामलों में, पक्षकारों ने कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया था (देखें : अभिलेख पुस्तिका के पृष्ठ 45 पर एससीए सं. 393/2000 में पारित तारीख 27 जनवरी, 2000 के आदेश का पैरा 3) और अंततः, एक मामला ही 1956 के समझौते के खंड 49 और 1985 के समझौते के खंड 19 पर आधारित था ।

36. सारतः, हमारे मत में वे आदेश प्रत्यक्ष तौर पर उन विवाद्यकों पर विचार नहीं करते हैं जो इन अपीलों की विषयवस्तु हैं और यद्यपि वे प्रश्नगत विवाद्यक पर विचार करते हैं जैसा कि विद्वान् काउंसेल द्वारा तर्क दिया गया है, उसके बाद भी हमारा यह मत है कि वे मामले स्वयं अपने तथ्यों पर आधारित थे ।

37. मामले में इस मत को ध्यान में रखते हुए, उन आदेशों का उच्च न्यायालय के समक्ष सही तौर पर अवलंब नहीं लिया गया था और हम भिन्न मत अपनाने के लिए अच्छा आधार नहीं पाते हैं और तद्नुसार, इस निवेदन को नामंजूर करते हैं ।

38. उसके बाद, अपीलार्थियों के ज्येष्ठ काउंसेल श्री कॉलिन गॉन्साल्वेस ने अपने निवेदन के समर्थन में, पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य को विस्तृत तौर पर निर्दिष्ट किया ।

39. हमें संशय है, इसलिए, हम संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन फाइल इन अपीलों में साक्ष्यों का विवेचन नहीं कर सकते हैं । इतना कह सकते हैं कि जब एकल न्यायाधीश और खंड न्यायपीठ, अधिकरण के तथ्यात्मक निष्कर्ष के साथ सहमत नहीं थे और उन्होंने सही ही उन निष्कर्षों को उलटा है । इसलिए, यह इस न्यायालय पर बाध्यकारी है ।

40. पूर्ववर्ती चर्चा को ध्यान में रखते हुए, हम इन अपीलों में कोई गुणागुण नहीं पाते हैं जो इस प्रकार असफल होते हैं और तद्नुसार, खारिज किए जाते हैं ।

अपीलें खारिज की गईं ।

क.

उम्मेर

बनाम

पोतेंगल सुबिदा और अन्य

8 मार्च, 2018

न्यायमूर्ति आर. के. अग्रवाल और न्यायमूर्ति अभय मनोहर सप्रे

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 133 [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश 9 का नियम 13 और परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5] – अपील फाइल करने में 554 दिनों का विलंब होना – विलंब की माफी के लिए आवेदन करना – आवेदन में विलंब होने का पर्याप्त कारण का उल्लेख होना – आवेदन नामंजूर होना – यदि कोई अपील नियत समय के भीतर फाइल नहीं की जाती है और अपील फाइल करने में हुए, विलंब का पर्याप्त कारण अभिलेख पर दर्शित कर दिया जाता है तो इन परिस्थितियों में, अपील फाइल करने में हुए विलंब को माफ किया जा सकता है ।

वर्तमान मामले में, प्रत्यर्थी सं. 1, प्रत्यर्थी सं. 6 की पत्नी और इसमें के अपीलार्थी की पुत्रवधु है जबकि प्रत्यर्थी सं. 2 से 5, प्रत्यर्थी सं. 1 और 6 के विवाह से उत्पन्न बच्चे हैं । प्रत्यर्थी सं. 1 (पत्नी/पुत्रवधु) ने अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 6 के विरुद्ध स्वर्ण आभूषणों या वैकल्पिक रूप में इसके मूल्य को उद्गृहीत करने के लिए जो उसका प्रत्यर्थी सं. 6 के साथ विवाह में उसके माता-पिता द्वारा अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 6 को दिया जाना अभिकथित था, कुटुम्ब न्यायालय, मलपुरम के समक्ष 2011 की मूल याचिका सं. 1011 के अधीन और कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 26 के अधीन भरणपोषण मंजूर करने के लिए भी वाद फाइल किया । इस वाद का कुटुम्ब न्यायालय के समक्ष प्रत्यर्थी सं. 6 के साथ ही प्रतिवादियों में से एक अपीलार्थी द्वारा विरोध किया गया । तथापि, कुटुम्ब न्यायाधीश ने तारीख 16 अक्तूबर, 2014 को अपीलार्थी को एकपक्षीय माना क्योंकि वह उस तारीख को वाद में उपस्थित होने में असफल रहा था । उसके बाद, कुटुम्ब न्यायालय ने उसी दिन अपीलार्थी के विरुद्ध एकपक्षीय डिक्री पारित कर दी । उसके बाद, अपीलार्थी ने सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "संहिता" कहा गया है) के आदेश 9, नियम 13 के अधीन एक आवेदन फाइल किया और आवेदन फाइल करने

में विलंब होने की माफी के लिए आवेदन के साथ ही एकपक्षीय डिक्री को अपास्त करने की प्रार्थना की । कुटुम्ब न्यायाधीश ने तारीख 4 मार्च, 2016 के आदेश द्वारा आवेदनों को खारिज कर दिया और विलंब की माफी देने से इनकार कर दिया । जिसके परिणामस्वरूप, संहिता के आदेश 9 के नियम 13 के अधीन फाइल आवेदन को भी इसके गुणागुणों पर चर्चा किए बिना खारिज कर दिया था । अपीलार्थी, तारीख 16 अक्तूबर, 2014 के आदेश से व्यथित महसूस किया और उच्च न्यायालय के समक्ष प्रकीर्ण अपील (सं. 653/2016) फाइल किया । चूंकि, अपील 554 दिनों के विलंब से फाइल की गई थी, इसलिए, अपीलार्थी ने अपील फाइल करने में विलंब होने की माफी देने की प्रार्थना करते हुए, परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 के अधीन एक आवेदन भी फाइल किया था । उच्च न्यायालय ने आक्षेपित आदेश द्वारा विलंब की माफी के लिए आवेदन के साथ ही अपील को भी खारिज कर दिया । उच्च न्यायालय की राय में, अपीलार्थी, अपील फाइल करने में विलंब होने की माफी के लिए कोई पर्याप्त कारण देने में असफल रहा और अतएव, अपील फाइल करने में 554 दिनों के विलंब होने की माफी की ईप्सा करते हुए फाइल आवेदन कायम रखे जाने योग्य नहीं है । परिणामस्वरूप, अपील, परिसीमा अवधि द्वारा वर्जित होने के कारण खारिज कर दिया था जिसके कारण प्रत्यर्थी सं. 1 – ससुर ने इस न्यायालय के समक्ष विशेष इजाजत के माध्यम से इन अपीलों को फाइल किया । न्यायालय द्वारा अपीलें मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह विवादित नहीं है कि अपीलार्थी एक बुढ़ा व्यक्ति है और वह 60 वर्ष की आयु का है । यह भी विवादित नहीं है कि वह सुसंगत अवधि के दौरान हृदय रोग ग्रसित रहा है और उसके बाद वह डेंगू बुखार से ग्रसित रहा है । यह भी विवादित नहीं है कि वह उस अवधि के दौरान लंबे समय से इन दोनों बीमारियों का चिकित्सीय उपचार कराने के लिए अस्पताल में भर्ती था । यह भी विवादित नहीं है कि वह अपने कुटुम्ब में जारी विवादों के कारण मानसिक तौर पर विचलित रहा है और वह अपनी बुढ़ी आयु और लंबी बीमारियों के कारण अपने दिन-प्रतिदिन के कर्तव्यों को करने में समर्थ नहीं था । यह एक स्वीकृत तथ्य है कि उच्च न्यायालय ने इन तथ्यों की सत्यता के बारे में विवादित नहीं किया है और न ही अपीलार्थी द्वारा अपने अभिवाचित कारणों के समर्थन में फाइल दस्तावेजों की सत्यता को विवादित किया है । दूसरी ओर, उच्च न्यायालय ने तथ्य के रूप में यह निष्कर्ष निकाला है कि अपीलार्थी इन बीमारियों से ग्रसित रहा है । न्यायालय की राय में, पूर्वोक्त उल्लिखित और अविवादित तथ्यों के प्रकाश में, उच्च न्यायालय को मामले में उदार दृष्टिकोण अपनाना चाहिए

था और अपीलार्थी द्वारा दर्शित कारण को परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 के अर्थान्तर्गत "पर्याप्त कारण" के रूप में अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए था और तद्नुसार, अपील फाइल करने में हुए विलंब को माफ कर देना चाहिए था । न्यायालय, अब इस न्यायालय के पूर्ववर्ती मत में विधिक प्रतिपादना को विवादित नहीं कर सकते हैं कि अपीलार्थी द्वारा अपील फाइल करने की तारीख तक प्रत्येक दिन के विलंब को स्पष्टीकृत किया जाना अपेक्षित था जिसे इस न्यायालय के पश्चात्वर्ती विनिश्चयों में माफ किया गया है और इसलिए, अब इसे अच्छा विधि अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है । न्यायालय की सुविचारित राय में, मामले के संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों तथा अपीलार्थी द्वारा दर्शित कारणों जिन्हें दस्तावेजों द्वारा सम्यक् रूप से साबित कर दिया गया है, को ध्यान में रखते हुए, हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल करने में विलंब माफी के लिए अपीलार्थी द्वारा दर्शित कारण, परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 के अर्थान्तर्गत पर्याप्त कारण था/है और इसलिए, अपीलार्थी द्वारा अपील फाइल करने में 554 दिनों की विलंब की माफी के लिए फाइल आवेदन मंजूर किए जाने योग्य है । (पैरा 15, 16, 17, 18 और 19)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2018 की सिविल अपील सं. 2599-2600.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 133 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से — सर्वश्री दीपक प्रकाश, बिनिश के., सुभाष चौधरी, (सुश्री) अतिरा जी. नायर, रनवी दहिया, नचिकेता वाजपेयी, (सुश्री) श्रीदेवी और पी. वी. दिनेश अधिवक्तागण

प्रत्यर्थियों की ओर से — सर्वश्री श्रीराम पी. और विष्णु शंकर अधिवक्तागण

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति अभय मनोहर सप्रे ने दिया ।

न्या. सप्रे – इजाजत दी गई ।

2. ये अपीलें, केरल उच्च न्यायालय, एर्नाकुलम द्वारा 2016 की वैवाहिक अपील सं. 653 और 2016 की वैवाहिक अपील सं. 653 में 2016 की सिविल प्रर्कीण आवेदन सं. 1986 में पारित तारीख 16 नवम्बर,

2016 के अंतिम निर्णय और आदेश के विरुद्ध निर्देशित है जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने विलंब माफी के लिए आवेदन के साथ ही इसमें के अपीलार्थी द्वारा फाइल वैवाहिक अपील को खारिज कर दिया था और कुटुम्ब न्यायालय, मलपुरम द्वारा 2011 की मूल याचिक सं. 1011 में पारित तारीख 16 अक्तूबर, 2014 के आदेश की पुष्टि कर दी थी ।

3. मामले के तथ्य संक्षिप्त हैं और इन अपीलों में विवेचन करने के लिए संक्षिप्त मुद्दा अंतर्वलित है, तथापि, तथ्यों का उल्लेख इसमें नीचे करना आवश्यक है ।

4. प्रत्यर्थी सं. 1, प्रत्यर्थी सं. 6 की पत्नी और इसमें के अपीलार्थी की पुत्रवधु है जबकि प्रत्यर्थी सं. 2 से 5, प्रत्यर्थी सं. 1 और 6 के विवाह से उत्पन्न बच्चे हैं ।

5. प्रत्यर्थी सं. 1 (पत्नी/पुत्रवधु) ने अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 6 के विरुद्ध स्वर्ण आभूषणों या वैकल्पिक रूप में इसके मूल्य को उद्गृहीत करने के लिए जो उसका प्रत्यर्थी सं. 6 के साथ विवाह में उसके माता-पिता द्वारा अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 6 को दिया जाना अभिकथित था, कुटुम्ब न्यायालय, मलपुरम के समक्ष 2011 की मूल याचिका सं. 1011 के अधीन और कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 26 के अधीन भरण-पोषण मंजूर करने के लिए भी वाद फाइल किया ।

6. इस वाद का कुटुम्ब न्यायालय के समक्ष प्रत्यर्थी सं. 6 के साथ ही प्रतिवादियों में से एक अपीलार्थी द्वारा विरोध किया गया । तथापि, कुटुम्ब न्यायाधीश ने तारीख 16 अक्तूबर, 2014 को अपीलार्थी को एकपक्षीय माना क्योंकि वह उस तारीख को वाद में उपस्थित होने में असफल रहा था । उसके बाद, कुटुम्ब न्यायालय ने उसी दिन अपीलार्थी के विरुद्ध एकपक्षीय डिक्री पारित कर दी ।

7. उसके बाद, अपीलार्थी ने सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "संहिता" कहा गया है) के आदेश 9 के नियम 13 के अधीन एक आवेदन फाइल किया और आवेदन फाइल करने में विलंब होने की माफी के लिए आवेदन के साथ ही एकपक्षीय डिक्री को अपास्त करने की प्रार्थना की ।

8. कुटुम्ब न्यायाधीश ने तारीख 4 मार्च, 2016 के आदेश द्वारा आवेदनों को खारिज कर दिया और विलंब की माफी देने से इनकार कर दिया । जिसके परिणामस्वरूप, संहिता के आदेश 9 के नियम 13 के अधीन

फाइल आवेदन को भी इसके गुणागुणों पर चर्चा किए बिना खारिज कर दिया था ।

9. अपीलार्थी, तारीख 16 अक्तूबर, 2014 के आदेश से व्यथित महसूस किया और उच्च न्यायालय के समक्ष प्रकीर्ण अपील (सं. 653/2016) फाइल किया । चूंकि, अपील 554 दिनों के विलंब से फाइल की गई थी, इसलिए, अपीलार्थी ने अपील फाइल करने में विलंब होने की माफी देने की प्रार्थना करते हुए, परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 के अधीन एक आवेदन भी फाइल किया था ।

10. उच्च न्यायालय ने आक्षेपित आदेश द्वारा विलंब की माफी के लिए आवेदन के साथ ही अपील को भी खारिज कर दिया । उच्च न्यायालय की राय में, अपीलार्थी, अपील फाइल करने में विलंब होने की माफी के लिए कोई पर्याप्त कारण देने में असफल रहा और अतएव, अपील फाइल करने में 554 दिनों के विलंब होने की माफी की ईप्सा करते हुए फाइल आवेदन कायम रखे जाने योग्य नहीं है । परिणामस्वरूप, अपील, परिसीमा अवधि द्वारा वर्जित होने के कारण खारिज कर दिया था जिसके कारण प्रत्यर्थी सं. 1 – ससुर ने इस न्यायालय के समक्ष विशेष इजाजत के माध्यम से इन अपीलों को फाइल किया ।

11. पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना ।

12. पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुनने और मामले के अभिलेखों का परिशीलन करने के पश्चात् हम अपीलों को मंजूर करते हैं और उच्च न्यायालय के समक्ष अपील में विलंब माफी के आक्षेपित आदेश को अपास्त करते हैं और अपीलार्थी द्वारा फाइल अपील को मामले के गुणागुणों पर विनिश्चय करने के लिए उच्च न्यायालय के पास वापस भेजते हैं ।

13. हमने, अपील फाइल करने में विलंब की माफी की ईप्सा करते हुए, उच्च न्यायालय के समक्ष अपीलार्थी द्वारा फाइल आवेदन की अंतर्वस्तुओं और शपथपत्र का परिशीलन किया है ।

14. इसमें के अपीलार्थी द्वारा अभिवाचित कारण, प्रश्नगत अवधि के दौरान उसकी लंबी बीमारी से संबंधित है । अपीलार्थी ने सुसंगत अवधि के दौरान अपनी बीमारी के तथ्य के समर्थन में चिकित्सीय दस्तावेजों को भी फाइल किया है ।

15. यह विवादित नहीं है कि अपीलार्थी एक बुढ़ा व्यक्ति है और वह 60 वर्ष की आयु का है । यह भी विवादित नहीं है कि वह सुसंगत अवधि

के दौरान हृदय रोग ग्रसित रहा है और उसके बाद वह डेंगू बुखार से ग्रसित रहा है । यह भी विवादित नहीं है कि वह उस अवधि के दौरान लंबे समय से इन दोनों बीमारियों का चिकित्सीय उपचार कराने के लिए अस्पताल में भर्ती था । यह भी विवादित नहीं है कि वह अपने कुटुम्ब में जारी विवादों के कारण मानसिक तौर पर विचलित रहा है और वह अपनी बुढ़ी आयु और लंबी बीमारियों के कारण अपने दिन-प्रतिदिन के कर्तव्यों को करने में समर्थ नहीं था ।

16. यह एक स्वीकृत तथ्य है कि उच्च न्यायालय ने इन तथ्यों की सत्यता के बारे में विवादित नहीं किया है और न ही अपीलार्थी द्वारा अपने अभिवाचित कारणों के समर्थन में फाइल दस्तावेजों की सत्यता को विवादित किया है । दूसरी ओर, उच्च न्यायालय ने तथ्य के रूप में यह निष्कर्ष निकाला है कि अपीलार्थी इन बीमारियों से ग्रसित रहा है ।

17. हमारी राय में, पूर्वोक्त उल्लिखित और अविवादित तथ्यों के प्रकाश में, उच्च न्यायालय को मामले में उदार दृष्टिकोण अपनाना चाहिए था और अपीलार्थी द्वारा दर्शित कारण को परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 के अर्थान्तर्गत "पर्याप्त कारण" के रूप में अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए था और तद्नुसार, अपील फाइल करने में हुए विलंब को माफ कर देना चाहिए था ।

18. हम, अब इस न्यायालय के पूर्ववर्ती मत में विधिक प्रतिपादना को विवादित नहीं कर सकते हैं कि अपीलार्थी द्वारा अपील फाइल करने की तारीख तक प्रत्येक दिन के विलंब को स्पष्टीकृत किया जाना अपेक्षित था जिसे इस न्यायालय के पश्चात्वर्ती विनिश्चयों में माफ किया गया है और इसलिए, अब इसे अच्छा विधि अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है ।

19. हमारी सुविचारित राय में, मामले के संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों तथा अपीलार्थी द्वारा दर्शित कारणों जिन्हें दस्तावेजों द्वारा सम्यक् रूप से साबित कर दिया गया है, को ध्यान में रखते हुए, हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल करने में विलंब माफी के लिए अपीलार्थी द्वारा दर्शित कारण, परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 के अर्थान्तर्गत पर्याप्त कारण था/है और इसलिए, अपीलार्थी द्वारा अपील फाइल करने में 554 दिनों की विलंब की माफी के लिए फाइल आवेदन मंजूर किए जाने योग्य है । तद्नुसार, इसे माफ किया जाता है किन्तु यह इस शर्त के अध्यधीन है कि अपीलार्थी द्वारा प्रत्यर्थी सं. 1 को 10,000/- रुपए के खर्चे का संदाय किया जाएगा ।

20. पूर्ववर्ती चर्चा को ध्यान में रखते हुए, अपीलें सफल होती हैं और तद्नुसार, मंजूर की जाती हैं । आक्षेपित आदेश अपास्त किए जाते हैं । अपील (प्रकीर्ण अपील सं. 653/2016) को परिसीमा अवधि के भीतर फाइल किया जाना अभिनिर्धारित किया जाता है, तद्नुसार, इसकी मूल संख्या बहाल की जाती है । अब, उच्च न्यायालय, विधि के अनुसरण में, तत्परतापूर्वक गुणागुणों पर अपील का विनिश्चय करेगा ।

अपीलें मंजूर की गईं ।

क.

[2018] 4 उम. नि. प. 19

दिनेश सिंह ठाकुर

बनाम

सोनल ठाकुर

17 अप्रैल, 2018

न्यायमूर्ति आर. के. अग्रवाल और न्याययूर्ति (श्रीमती) आर. बानूमति

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 133 [सपठित हिन्दू विवाद अधिनियम, 1955 की धारा 13 और 26 तथा विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 41] – अपील – पति-पत्नी के बीच हिन्दू रीति-रिवाजों के अनुसार, भारत में विवाह संपन्न होना – विवाह के पश्चात्, पति-पत्नी द्वारा विदेशी नागरिकता ग्रहण कर लेना – पति-पत्नी के बीच विवाद होना – पत्नी द्वारा पति के विरुद्ध असुधार्य विवाह-भंग के आधार पर फ्लोरिडा, यूएसए के न्यायालय में, विवाह-विच्छेद और भरणपोषण के लिए रिट फाइल करना – पति द्वारा गुड़गांव, भारत के कुटुम्ब न्यायालय के समक्ष उपर्युक्त याचिका में कार्यवाहियों को अवरुद्ध करने के लिए वाद फाइल करना – वाद खारिज होना – वाद खारिज होने से न्याय का उद्देश्य विफल नहीं होना और अन्याय का शाश्वत् जारी नहीं रहना – यदि पति-पत्नी के बीच हिन्दू रीति-रिवाजों के अनुसार, भारत में विधिमान्य विवाह संपन्न होता है और तत्पश्चात्, पति और पत्नी विदेशी नागरिकता ग्रहण कर लेते हैं और उनके बीच वैवाहिक विवाद उद्भूत होता है तो ऐसे विवाद को ग्रहण करने की अधिकारिता भारतीय न्यायालय के साथ ही

साथ उस विदेशी न्यायालय को भी प्राप्त होती है, जिस विदेशी न्यायालय की अधिकारिता के अधीन उन्होंने नागरिकता ग्रहण की है और वैवाहिक विवादों के मामले में, विदेशी न्यायालय द्वारा की गई कार्यवाहियों को तब तक अवरुद्ध करना न्यायोचित नहीं होगा जब तक कि उन कार्यवाहियों के कारण पति या पत्नी के साथ घोर अन्याय नहीं होता है या न्याय का उद्देश्य विफल नहीं होता है ।

वर्तमान मामले में, दिनेश सिंह ठाकुर – अपीलार्थी-पति और सोनल ठाकुर – प्रत्यर्थी-पत्नी के बीच हिन्दू रीति-रिवाजों के अनुसार तारीख 20 फरवरी, 1995 को विवाह हुआ था और उक्त विवाह से दो बच्चे उत्पन्न हुए थे । अपीलार्थी-पति विवाह के समय पर संयुक्त राज्य अमेरिका (यूएसए) में कार्य कर रहा था और उसने आश्रित वीजा पर प्रत्यर्थी-पत्नी को यूएसए ले गया । दोनों पक्षकारों ने मई, 2003 में यूएसए की नागरिकता प्राप्त कर ली थी । उन्होंने जून, 2003 में "पीआईओ" (मूल भारतीय व्यक्ति) की हैसियत प्राप्त कर ली थी और जुलाई, 2006 में 'ओसीआई' (विदेशी भारतीय नागरिकता) की हैसियत प्राप्त कर ली थी । अपीलार्थी-पति ने प्रत्यर्थी-पत्नी के विरुद्ध हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'अधिनियम' कहा गया है) की धारा 13 और 26 के अधीन कुटुम्ब न्यायालय, गुड़गांव के समक्ष 2016 की एच. एम. ए. संख्या 601 के अधीन एक याचिका फाइल की, जो न्यायालय के समक्ष न्यायनिर्णयन के लिए लंबित है । तत्पश्चात्, प्रत्यर्थी-पत्नी ने अपीलार्थी-पति के विरुद्ध छठवें न्यायिक सर्किट न्यायालय, पाइनलाज काउंटी, फ्लोरिडा, यूएसए के समक्ष वाद संख्या 2016-008918-एफ. डी. के अधीन असुधार्य विवाह-भंग और अन्य अनुतोषों के आधार पर विवाह-विच्छेद के लिए एक याचिका फाइल की । इसके पश्चात्, अपीलार्थी-पति ने स्थायी व्यादेश और इसके अलावा प्रत्यर्थी-पत्नी को यूएसए में न्यायालय के समक्ष विवाह-विच्छेद की याचिका चलाने से अवरुद्ध करने की घोषणा करने के लिए अधिनियम, 1955 की धारा 7 के अधीन जिला न्यायाधीश, कुटुम्ब न्यायालय, गुड़गांव के समक्ष 2016 की सिविल वाद संख्या 15 फाइल की । विद्वान् जिला न्यायाधीश ने तारीख 26 सितम्बर, 2016 के आदेश द्वारा अपीलार्थी-पति के पक्ष में, एकपक्षीय अस्थायी व्यादेश मंजूर कर लिया । इससे व्यथित होकर प्रत्यर्थी-पत्नी ने तारीख 26 सितम्बर, 2016 के आदेश को बातिल और उपांतरित करने के लिए एक आवेदन फाइल किया । विद्वान् जिला न्यायाधीश ने तारीख 18 अक्तूबर, 2016 के आदेश द्वारा तारीख 26 सितम्बर, 2016 के आदेश द्वारा मंजूर व्यादेश को बातिल

कर दिया । व्यादेश बातिल करने के आदेश से व्यथित होकर, अपीलार्थी-पति ने उच्च न्यायालय के समक्ष 2016 की सी. आर. संख्या 7190 फाइल की । उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने तारीख 3 नवम्बर, 2016 के आदेश द्वारा अपीलार्थी-पति द्वारा फाइल याचिका को खारिज कर दिया । तारीख 3 नवम्बर, 2016 के निर्णय और आदेश से व्यथित होकर अपीलार्थी-पति ने इस न्यायालय के समक्ष विशेष इजाजत के माध्यम से यह अपील फाइल की है । न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – प्रतिवाद व्यादेशों का अभिप्राय यह है कि एक अन्य न्यायालय जिनमें विदेशी न्यायालय भी सम्मिलित है, मामले को संस्थित करने या अभियोजित करने के लिए वाद/कार्यवाही करने से पक्षकार को अवरुद्ध करना है । साधारणतया, प्रतिवाद व्यादेश एक न्यायिक आदेश है जो एक पक्षकार को उसकी अधिकारिता से परे किसी अन्य न्यायालय में वाद में अभियोजित करने से अवरुद्ध करना है । व्यादेश मंजूर करने वाले शासित सिद्धांत, प्रतिवाद व्यादेश मंजूर करने वाले सिद्धांत एक समान हैं । व्यादेश के मामलों में आधारभूत तौर पर साम्या के सिद्धांत ही लागू होते हैं । यह सुस्थिर विधि है कि भारत में न्यायालयों को समुचित मामले में, उस पक्षकार के विरुद्ध प्रतिवाद व्यादेश जारी करने की शक्ति प्राप्त है जिस पर उसकी वैयक्तिक अधिकारिता है । तथापि, न्यायालयों को प्रतिवाद व्यादेश का आदेश पारित करने के पूर्व अत्यधिक सावधानी और सतर्कता बरतनी चाहिए और इसे कम से कम मामलों में मंजूर करना चाहिए और दिन-प्रतिदिन के मामले के रूप में पारित नहीं करना चाहिए क्योंकि ऐसे आदेशों में अन्य न्यायालय की अधिकारिता का अतिक्रमण अंतर्वलित होता है जो इसे अत्यधिक सरलता से ग्रहण नहीं कर सकता है, विनिर्दिष्टतः, तब जब यह विदेशी न्यायालय में मामला संस्थित करने या जारी रखने या निरंतर जारी रखने से अवरुद्ध करता है । आगे, सुनवाई के दौरान, कतिपय दस्तावेज जैसे प्रत्यर्थी-पत्नी का पैन कार्ड, आधार कार्ड, पट्टा विलेख जो उसके द्वारा वर्ष 2015 में निष्पादित किया गया था, जिसे भी अभिलेख पर प्रस्तुत किया गया है, से पर्याप्त रूप से यह दर्शित होता है कि प्रत्यर्थी-पत्नी सामान्यतः, भारत में रह रही है । आगे, जैसा कि यूएस न्यायालय के समक्ष अभिलिखित कार्यवाहियों से प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी ने स्वयं ही यह स्वीकार किया है कि कुटुम्ब न्यायालय, गुड़गांव को प्रस्तुत मामले की अधिकारिता है । अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य, यह दर्शित करने के लिए पर्याप्त हैं कि प्रत्यर्थी, कुटुम्ब न्यायालय, गुड़गांव की वैयक्तिक अधिकारिता के अध्यधीन है । यद्यपि, प्रत्यर्थी-पत्नी कुटुम्ब न्यायालय, गुड़गांव की

अधिकारिता के अध्यधीन है, फिर भी, यह अभिनिर्धारित करने के लिए अभिलेख पर कुछ नहीं है कि अन्य पक्षकार गंभीर अन्याय से ग्रसित हो जाएगा, यदि व्यादेश मंजूर नहीं किया जाता है । इस तथ्य के बारे में कोई विवाद नहीं है कि दोनों पक्षकार यूएस के स्थायी नागरिक हैं । निर्विवाद तौर पर, सर्किट न्यायालय, फ्लोरिडा, यूएसए को भी प्रस्तुत मामले में, समवर्ती अधिकारिता है । यह दलील कि अपीलार्थी-पति गंभीर अन्याय से ग्रसित हो जाएगा यदि सर्किट न्यायालय, फ्लोरिडा, यूएसए में कार्यवाहियों को निरंतर चालू रखना मंजूर किया जाता है, कोई आधार नहीं बनता है, क्योंकि अपीलार्थी स्वयं वहां वर्ष 2007 के पश्चात् से रह रहा है और प्रतिवाद व्यादेश मंजूर करने के लिए उसके द्वारा एक अन्य व्यक्ति को मुख्तारनामे से सशक्त करते हुए उसके माध्यम से भारत में आरंभ की गई थी और उसके एवज में उसने मुकदमेबाजी को आगे बढ़ाया था । आगे, अभिलेख पर यह दर्शित करने के लिए कुछ भी प्रस्तुत नहीं किया गया है कि किस प्रकार अपीलार्थी-पति गंभीर अन्याय से ग्रसित हो जाएगा, यदि प्रत्यर्थी-पत्नी को फ्लोरिडा में विवाह-विच्छेद की याचिका चलाने से अवरुद्ध करते हुए, व्यादेश मंजूर नहीं किया जाता है । आगे भी, यद्यपि, व्यादेश मंजूर करने से इनकार किया जाता है तो यह नहीं कहा जा सकता है कि न्याय का उद्देश्य विफल हो जाएगा और अन्याय शाश्वत् जारी रहेगा । यह दलील कि प्रत्यर्थी-पत्नी ने विवाह के असुधार्य भंग के आधार पर यूएसए के न्यायालय में विवाह-विच्छेद के लिए याचिका फाइल की है जो अधिनियम, 1955 के अधीन विवाह-विच्छेद के लिए उपबंधित आधार नहीं है, पर विचार किया जाना अपेक्षित है । मात्र यह तथ्य कि प्रत्यर्थी-पत्नी ने उस आधार पर वाद फाइल किया है जो अधिनियम,1955 के अधीन उसे उपलब्ध नहीं है, का अभिप्राय यह नहीं है कि उसे विवाह-विच्छेद के लिए डिक्री में सफल होने की उसकी संभावना है । विनिर्दिष्टतः, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि अपीलार्थी ने सर्किट न्यायालय, फ्लोरिडा के समक्ष इस दलील को उद्भूत किया है और दोनों पक्षकारों ने इस प्रश्न के बारे में साक्ष्य प्रस्तुत किया है कि क्या उनके विवाह अधिनियम, 1955 द्वारा शासित है या किसी अन्य विधि द्वारा शासित है । विदेशी न्यायालय गलत तौर पर अपनी अधिकारिता का प्रयोग नहीं कर सकता है, यदि इसके पश्चात् अपीलार्थी यह साबित करने में सफल हो जाता है कि वर्तमान मामले में पक्षकार, उनके बीच विवादित मामले में, भारत में हिन्दुओं को शासित करने वाले विधि द्वारा निरंतर शासित रहे हैं । हमारी यह राय है कि विदेशी न्यायालय में जारी कार्यवाहियों को अन्यायपूर्ण या तंग करने वाला

नहीं कहा जा सकता है । (पैरा 9, 10, 18, 19, 20 और 21)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2016]	2006 की सिविल अपील सं. 1123, विनिश्चय 10 फरवरी, 2016 : **विवेक राय गुप्ता** बनाम **नियति गुप्ता** ;	15
[2007]	ए. आई. आर. 2007 पंजाब-हरियाणा 63 : **राकेश कुमार** बनाम **सुश्री असीमा कुमार** ;	7
[2003]	(2003) 3 एस. सी. सी. 341 : **मोदी इंटरटेंमेंट नेटवर्क और एक अन्य** बनाम **डब्ल्यू. एस. जी. क्रिकेट प्रा. लि.** ;	13, 14
[2003]	2003 (67) डी. आर. जे. 58 : **हरमिता सिंह** बनाम **रजत तनेजा** ;	16
[1991]	(1991) 3 एस. सी. सी. 451 : **वाई. नरसिम्हा राव और अन्य** बनाम **वाई. वेंकटा लक्ष्मी और एक अन्य** ;	17
[1987]	(1987) 1 एस. सी. सी. 496 : **ऑयल एंड नेचुरल गैस कमीशन** बनाम **वेस्टर्न कंपनी ऑफ नार्थ अमेरिका** ।	12

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2018 की सिविल अपील सं. 3878.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 133 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से — सुश्री इन्दु मल्होत्रा, ज्येष्ठ अधिवक्ता, सर्वश्री, विक्रम मेहता, विकास मेहता, प्रशांत सिंह, (सुश्री) राखी मोहंती, तनवीर नायर और (सुश्री) श्वेता दुग्गल, अधिवक्तागण

प्रत्यर्थी की ओर से — सर्वश्री वी. गिरि, ज्येष्ठ अप्रूव कुरुप, विवेक नासा और ए. सी. बाक्शीपत्रो, अधिवक्तागण

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति आर. के. अग्रवाल ने दिया ।

न्या. अग्रवाल – इजाजत दी गई ।

2. वर्तमान अपील, पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ द्वारा 2016 की सी. आर. संख्या 7190 में पारित तारीख 3 नवम्बर, 2016 के आक्षेपित निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने अपीलार्थी-पति द्वारा जिला न्यायाधीश, कुटुम्ब न्यायालय, गुड़गांव द्वारा 2016 के सिविल वाद सं. 15 में पारित तारीख 18 अक्तूबर, 2016 के आदेश के विरुद्ध फाइल पुनरीक्षण आवेदन को खारिज कर दिया था जिसके द्वारा प्रत्यर्थी-पत्नी के विरुद्ध मंजूर अस्थायी व्यादेश को तारीख 26 सितम्बर, 2016 के आदेश द्वारा बातिल कर दिया गया था ।

संक्षिप्त तथ्य :

3. मामले की प्रकृति और परिस्थितियों के संबंध में, हम इस प्रक्रम पर विस्तार से सभी तथ्यों पर चर्चा करने का आशय नहीं रखते हैं । अतएव, इस वर्तमान अपील में अंतर्वलित विवाद्यक का मात्र मूल्यांकन करने के लिए संक्षिप्त में तथ्य कथित किए जा रहे हैं :–

(क) दिनेश सिंह ठाकुर – अपीलार्थी-पति और सोनल ठाकुर – प्रत्यर्थी-पत्नी के बीच हिन्दू रीति-रिवाजों के अनुसार तारीख 20 फरवरी, 1995 को विवाह हुआ था और उक्त विवाह से दो बच्चे उत्पन्न हुए थे । अपीलार्थी-पति विवाह के समय पर संयुक्त राज्य अमेरिका (यूएसए) में कार्य कर रहा था और उसने आश्रित वीजा पर प्रत्यर्थी-पत्नी को यूएसए ले गया । दोनों पक्षकारों ने मई, 2003 में यूएसए की नागरिकता प्राप्त कर ली थी । उन्होंने जून, 2003 में 'पीआईओ' (मूल भारतीय व्यक्ति) की हैसियत प्राप्त कर ली थी और जुलाई, 2006 में 'ओसीआई' (विदेशी भारतीय नागिरकता) की हैसियत प्राप्त कर ली थी ।

(ख) अपीलार्थी-पति ने प्रत्यर्थी-पत्नी के विरुद्ध हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'अधिनियम' कहा गया है) की धारा 13 और 26 के अधीन कुटुम्ब न्यायालय, गुड़गांव के समक्ष 2016 की एच. एम. ए. संख्या 601 के अधीन एक याचिका फाइल की, जो न्यायालय के समक्ष न्यायनिर्णयन के लिए लंबित है । तत्पश्चात्, प्रत्यर्थी-पत्नी ने अपीलार्थी-पति के विरुद्ध छठवें न्यायिक सर्किट न्यायालय, पाइनलॉज काउंटी, फ्लोरिडा, यूएसए के समक्ष

वाद संख्या 2016-008918-एफ. डी. के अधीन असुधार्य विवाह-भंग और अन्य अनुतोषों के आधार पर विवाह-विच्छेद के लिए एक याचिका फाइल की । इसके पश्चात्, अपीलार्थी-पति ने स्थायी व्यादेश और इसके अलावा प्रत्यर्थी-पत्नी को यूएसए में न्यायालय के समक्ष विवाह-विच्छेद की याचिका चलाने से अवरुद्ध करने की घोषणा करने के लिए अधिनियम, 1955 की धारा 7 के अधीन जिला न्यायाधीश, कुटुम्ब न्यायालय, गुड़गांव के समक्ष 2016 की सिविल वाद संख्या 15 फाइल की ।

(ग) विद्वान् जिला न्यायाधीश ने तारीख 26 सितम्बर, 2016 के आदेश द्वारा अपीलार्थी-पति के पक्ष में, एकपक्षीय अस्थायी व्यादेश मंजूर कर लिया । इससे व्यथित होकर प्रत्यर्थी-पत्नी ने तारीख 26 सितम्बर, 2016 के आदेश को बातिल और उपांतरित करने के लिए एक आवेदन फाइल किया । विद्वान् जिला न्यायाधीश ने तारीख 18 अक्तूबर, 2016 के आदेश द्वारा तारीख 26 सितम्बर, 2016 के आदेश द्वारा मंजूर व्यादेश को बातिल कर दिया ।

(घ) व्यादेश बातिल करने के आदेश से व्यथित होकर, अपीलार्थी-पति ने उच्च न्यायालय के समक्ष 2016 की सी. आर. संख्या 7190 फाइल की । उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने तारीख 3 नवम्बर, 2016 के आदेश द्वारा अपीलार्थी-पति द्वारा फाइल याचिका को खारिज कर दिया ।

(ङ) तारीख 3 नवम्बर, 2016 के निर्णय और आदेश से व्यथित होकर अपीलार्थी-पति ने इस न्यायालय के समक्ष विशेष इजाजत के माध्यम से यह अपील फाइल की है ।

4. अपीलार्थी-पति के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल सुश्री इन्दु मल्होत्रा और प्रत्यर्थी-पत्नी के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री गिरि को सुना और अभिलेखों का परिशीलन किया ।

विचार के लिए मुद्दा (मुद्दें) :

5. इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए मात्र यह मुद्दा है कि क्या मामले के वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों में, अपीलार्थी-पति, प्रत्यर्थी-पत्नी के विरुद्ध प्रतिवाद व्यादेश के डिक्री पाने का हकदार है ?

परस्पर-विरोधी निवेदन :

6. अपीलार्थी-पति के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने यह दलील दी कि

क्योंकि इसमें के अपीलार्थी ने पक्षकारों के विवाह के विघटन की ईप्सा करते हुए पहले ही याचिका फाइल की थी जिसमें प्रत्यर्थी-पत्नी को तारीख 4 अगस्त, 2016 को नोटिस तामील की गई थी और उसे तारीख 16 सितम्बर, 2016 को उपस्थित होते हुए यह कारण बताने के लिए कहा गया था कि क्या विवाह के असुधार्य विवाह-भंग के आधार पर, जो अधिनियम, 1955 के अधीन विवाह-विच्छेद का आधार नहीं है, विवाह-विच्छेद की डिक्री की ईप्सा करते हुए, प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा विदेशी न्यायालय में आरंभ की गई कार्यवाहियों पर रोक लगाए जाने के लिए दायी है । यह भी कि प्रत्यर्थी-पत्नी अपने अवयस्क बच्चों के साथ वर्ष 2003 से भारत में रह रही है और भारत में अपीलार्थी-पति द्वारा फाइल विवाह-विच्छेद की नोटिस प्राप्त करने के पश्चात् यूएसए के न्यायालय में विवाह-विच्छेद के लिए याचिका फाइल की है जो न्यायिक प्रक्रिया का दुरुपयोग है और कार्यवाहियों के बाहुल्य की कोटि में आता है ।

7. विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि प्रत्यर्थी-पत्नी, स्वीकृततः गुड़गांव में रह रही है, इसलिए, गुड़गांव का न्यायालय दोनों पक्षकारों की सुविधा के लिए सही फोरम होगा । उन्होंने यह भी दलील दी कि विचारण न्यायालय ने मात्र विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 (संक्षेप में जिसे इसमें इसके पश्चात् 'एस. आर. अधिनियम' कहा गया है) की धारा 41(ख) के उपबंधों और **राकेश कुमार** बनाम **सुश्री असीमा कुमार**[1] के विनिश्चय पर ही विचार किया है, किन्तु उसने एस. आर., अधिनियम की धारा 41(क) जो वर्तमान संदर्भ में सुसंगत है, के उपबंधों पर विचार नहीं किया है । अपीलार्थी-पति के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने अंततः यह दलील दी कि उच्च न्यायालय को निचले न्यायालय द्वारा अस्थायी व्यादेश को बातिल करने के आदेश को कायम रखने का कोई अधिकार नहीं था और न ही इस संबंध में, इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप अपेक्षित था ।

8. प्रत्यर्थी-पत्नी के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने अपीलार्थी-पति के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल द्वारा किए गए दावों का खंडन करते हुए, यह निवेदन किया कि याचिका, जो फ्लोरिडा के न्यायालय के समक्ष फाइल किया गया है, न केवल पक्षकारों के विवाह के विघटन के लिए फाइल किया गया है, अपितु, वैवाहिक आस्तियों साम्यिक बटवारों, बच्चों के समर्थन, निर्वाहिका, विभाजन और अन्य कतिपय अनुतोषों का दावा करने के लिए भी किया गया है जो भारतीय विधि में उपलब्ध नहीं है । विद्वान्

---

[1] ए. आई. आर. 2007 पंजाब-हरियाणा 63.

ज्येष्ठ काउंसेल ने यह निवेदन किया कि प्रत्यर्थी-पत्नी और बच्चों को अपूरणीय हानि या क्षति कारित होगी यदि फ्लोरिडा के न्यायालय में लंबित याचिका पर रोक लगाई जाती है ।

चर्चा :

9. प्रतिवाद व्यादेशों का अभिप्राय यह है कि एक अन्य न्यायालय जिनमें विदेशी न्यायालय भी सम्मिलित है, मामले को संस्थित करने या अभियोजित करने के लिए वाद/कार्यवाही करने से पक्षकार को अवरुद्ध करना है । साधारणतया, प्रतिवाद व्यादेश एक न्यायिक आदेश है जो एक पक्षकार को उसकी अधिकारिता से परे किसी अन्य न्यायालय में वाद में अभियोजित करने से अवरुद्ध करना है । व्यादेश मंजूर करने वाले शासित सिद्धांत, प्रतिवाद व्यादेश मंजूर करने वाले सिद्धांत एक समान हैं । व्यादेश के मामलों में आधारभूत तौर पर साम्या के सिद्धांत ही लागू होते हैं ।

10. यह सुस्थिर विधि है कि भारत में न्यायालयों को समुचित मामले में, उस पक्षकार के विरुद्ध प्रतिवाद व्यादेश जारी करने की शक्ति प्राप्त है जिस पर उसकी वैयक्तिक अधिकारिता है । तथापि, न्यायालयों को प्रतिवाद व्यादेश का आदेश पारित करने के पूर्व अत्यधिक सावधानी और सतर्कता बरतनी चाहिए और इसे कम से कम मामलों में मंजूर करना चाहिए और दिन-प्रतिदिन के मामले के रूप में पारित नहीं करना चाहिए क्योंकि ऐसे आदेशों में अन्य न्यायालय की अधिकारिता का अतिक्रमण अंतर्वलित होता है जो इसे अत्यधिक सरलता से ग्रहण नहीं कर सकता है, विनिर्दिष्टतः, तब जब यह विदेशी न्यायालय में मामला संस्थित करने या जारी रखने या निरंतर जारी रखने से अवरुद्ध करता है ।

11. इस परिप्रेक्ष्य में, एस. आर. अधिनियम, 1963 की धारा 41 को उद्धृत करना लाभदायक होगा, जिसके अधीन कतिपय उद्धरणों और परिस्थितियों का उपबंध है, जिसमें व्यादेश मंजूर किया जा सकता है :–

41. व्यादेश कब नामंजूर किया जाता है – व्यादेश अनुदत्त नहीं किया जा सकता –

(क) किसी व्यक्ति को किसी ऐसी न्यायिक कार्यवाही के अभियोजन से अवरुद्ध करने को जो ऐसे वाद के जिसमें व्यादेश ईप्सित है, संस्थित किए जाने के समय लंबित हो, जब तक कि ऐसा अवरोध कार्यवाहियों के बाहुल्य को निवारित करने के लिए आवश्यक न हो ;

(ख) किसी व्यक्ति को ऐसे न्यायालय में, जो उस न्यायालय के अधीनस्थ नहीं है जिससे व्यादेश ईप्सित है, किसी कार्यवाही को संस्थित या अभियोजित करने में अवरुद्ध करने को ;

(ग) किसी व्यक्ति को किसी विधायी निकाय के समक्ष आवेदन करने से अवरुद्ध करने को ;

(घ) किसी व्यक्ति को किसी आपराधिक मामले में कोई कार्यवाही संस्थित या अभियोजित करने से अवरुद्ध करने को ;

(ङ) ऐसी संविदा का भंग निवारित करने को जिसका विनिर्दिष्टतः पालन प्रवर्तनीय नहीं है ;

(च) किसी ऐसे कार्य की न्यूसेंस के आधार पर निवारित करने को, जिसके संबंध में यह युक्तियुक्त तौर पर स्पष्ट न हो कि वह न्यूसेंस हो जाएगा ;

(छ) किसी ऐसे चालू रहने वाले भंग को निवारित करने को, जिसमें वादी उपमत हो गया हो ;

(ज) जब कि समानतः प्रभावकारी अनुतोष, कार्यवाही के किसी अन्य प्रायिक ढंग द्वारा निश्चयपूर्वक अभिप्राप्त किया जा सकता हो सिवाय न्यायभंग की दशा के ;

(झ) जबकि वादी या उसके अभिकर्ताओं का आचरण ऐसा रहा हो जो उसे न्यायालय की मदद पाने के लिए निर्हकित कर दे ;

(ञ) जबकि वादी का उस मामले में कोई वैयक्तिक हित न हो ।

12. अपीलार्थी-पति ने यह तर्क दिया कि धारा 41(ख) वर्तमान मामले में लागू नहीं होता है बल्कि यह मात्र उन मामलों में लागू होता है जहां प्रश्न, भारतीय न्यायालय में कार्यवाहियों के लिए व्यादेश से संबंधित होता है । इस तर्क के समर्थन में, विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने **ऑयल एंड नेचुरल गैस कमीशन** बनाम **वेस्टर्न कंपनी ऑफ नार्थ अमेरिका**[1] वाले मामले का अवलंब लिया, जिसमें इस न्यायालय ने विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 41(ख) के उपबंधों का निर्वचन करते समय निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

---

[1] (1987) 1 एस. सी. सी. 496.

> "18. ..... हमारी राय में, यह उपबंध मात्र उस तथ्यात्मक परिस्थिति में लागू होगा जहां भारत के न्यायालय में कोई कार्रवाई संस्थित करने या अभियोजित करने से पक्षकार को अवरुद्ध करने के लिए व्यादेश की ईप्सा की जाती है, जो या तो समन्वय अधिकारिता में है या उस न्यायालय से उच्चतर है जिसमें भारत के न्यायालयों के अधिक्रम में व्यादेश की ईप्सा की गई है ...."

13. अपीलार्थी-पति के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने **मोदी इंटरटेंमेंट नेटवर्क और एक अन्य** बनाम **डब्ल्यू. एस. जी. क्रिकेट प्रा. लि.**[1] वाले मामले का भी अवलंब लिया है, जिसमें इस न्यायालय ने मामले पर विचार करते समय कतिपय सिद्धांतों को अधिकथित किया जिन्हें किसी न्यायालय द्वारा प्रतिवाद व्यादेश मंजूर करते समय विचार में लिया जाना अपेक्षित होता है । ये सिद्धांत निम्नलिखित हैं :–

प्रतिवादी, जिसके विरुद्ध व्यादेश ईप्सित है, को न्यायालय की वैयक्तिक अधिकारिता के अध्यधीन होना चाहिए,

प्रतिवादी, जिसके विरुद्ध व्यादेश ईप्सित है, को न्यायालय की वैयक्तिक अधिकारिता के अध्यधीन होना चाहिए,

यदि, व्यादेश से इनकार किया जाता है तो न्याय का उद्देश्य विफल हो जाएगा और अन्याय शाश्वत जारी रहेगा, तथा

न्यायालय के लिए सौजन्य सम्मान का सिद्धांत, जिसमें कार्रवाई/कार्यवाही आरंभ या जारी रहती है, को अवरुद्ध करने की ईप्सा की गई है – विवेक में उद्भूत होना चाहिए ।

14. **मोदी इंटरटेंमेंट नेटवर्क** (उपरोक्त) वाले मामले में, इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए, इस प्रतिपादना को दोहराया है कि भारत में न्यायालय, इंग्लैंड के न्यायालय की तरह, विधि और साम्या के न्यायालय है । प्रतिवाद व्यादेश को मंजूर करने के लिए शासित करने वाले सिद्धांत, विनिर्दिष्टतः, सामयिक अनुतोष, भारत में न्यायालयों को समुचित मामलों में, उस पक्षकार के विरुद्ध प्रतिवाद व्यादेश जारी करने की शक्तियां प्राप्त हैं जिस पर उसकी वैयक्तिक अधिकारिता है, इसका कारण यह है कि साम्या के न्यायालय व्यक्तिबंदी अधिकारिता का प्रयोग करते हैं, इस शक्ति का कम से कम प्रयोग होना चाहिए जहां ऐसा व्यादेश ईप्सित है

---

[1] (2003) 3 एस. सी. सी. 341.

और यदि मंजूर नहीं किया जाता है तो यह न्याय के उद्देश्य के विफल होने की कोटि में आ जाएगा और अन्याय निरंतर जारी रहेगा ।

15. **विवेक राय गुप्ता** बनाम **नियति गुप्ता**[1] वाले मामले में, इस न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

> "यदि भारत में स्थित किसी अन्य चल/अचल संपत्ति के विरुद्ध कॉमन प्लीज, कुआहोगा, काउंट्री, ओहियो, यूएसए के न्यायालय द्वारा पारित तारीख 18 सितम्बर, 2012 के पूर्वोक्त डिक्री का निष्पादन कराने के लिए प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा निष्पादन कार्यवाहियां फाइल की गई हैं तो अपीलार्थी-पति के लिए यह खुला होगा कि वह विधि में उसे उपलब्ध किन्हीं आधारों पर उक्त निष्पादन याचिका का विरोध करे कि ऐसी डिक्री निष्पादनीय नहीं है ।"

16. आगे, **हरमिता सिंह** बनाम **रजत तनेजा**[2] वाले मामले में, दिल्ली उच्च न्यायालय ने इस तथ्य पर विचार किया कि पक्षकार संयुक्त राज्य अमेरिका में अत्यंत संक्षिप्त समय के लिए एक साथ रहे थे तो भी उन्हें प्रतिवाद व्यादेश मंजूर कर लिया गया था ।

17. **वाई. नरसिम्हा राव और अन्य** बनाम **वाई. वेंकटा लक्ष्मी और एक अन्य**[3] वाले मामले में, इस न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

> "20. पूर्वोक्त चर्चा से इस देश में विदेशी वैवाहिक निर्णय को मान्यता देने के लिए निम्नलिखित नियम अधिकथित किए जा सकते हैं । विदेशी न्यायालय द्वारा धारित अधिकारिता के साथ ही साथ उन आधारों जिन पर अनुतोष मंजूर किया गया है, वह उस वैवाहिक विधि के अनुसरण में होना चाहिए जिसके अधीन पक्षकारों के विवाह हुए हैं । इस नियम के अपवाद निम्नलिखित हो सकते हैं – (i) जहां वैवाहिक कार्रवाई उस फोरम में फाइल की गई है जहां प्रत्यर्थी निवास करता है या अभ्यासतः और स्थायी तौर पर निवास करता है और अनुतोष उस वैवाहिक विधि के अधीन उपलब्ध आधारों पर मंजूर किया गया है जिसके अधीन पक्षकार विवाहित हैं, (ii) जहां प्रत्यर्थी

---

[1] 2016 की सिविल अपील सं. 1123, विनिश्चय 10 फरवरी, 2016.

[2] 2003 (67) डी. आर. जे. 58.

[3] (1991) 3 एस. सी. सी. 451.

स्वैच्छिक तौर पर और प्रभावी तौर पर न्यायालय की अधिकारिता को स्वीकार करता है जैसा कि उपर्युक्त चर्चा की गई है और उस दावे का विरोध करता है जो उस वैवाहिक विधि के अधीन उपलब्ध आधारों पर आधारित है जिसके अधीन पक्षकार विवाहित हुए हैं, (iii) जहां प्रत्यर्थी ने अनुतोष मंजूर करने की सहमति दी है, यद्यपि, न्यायालय की अधिकारिता, पक्षकारों के वैवाहिक विधि के उपबंधों के अनुसरण में नहीं है ।"

18. आगे, सुनवाई के दौरान, कतिपय दस्तावेज जैसे प्रत्यर्थी-पत्नी का पैन कार्ड, आधार कार्ड, पट्टा विलेख जो उसके द्वारा वर्ष 2015 में निष्पादित किया गया था, जिसे भी अभिलेख पर प्रस्तुत किया गया है, से पर्याप्त रूप से यह दर्शित होता है कि प्रत्यर्थी-पत्नी सामान्यतः, भारत में रह रही है । आगे, जैसा कि यूएस न्यायालय के समक्ष अभिलिखित कार्यवाहियों से प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी ने स्वयं ही यह स्वीकार किया है कि कुटुम्ब न्यायालय, गुड़गांव को प्रस्तुत मामले की अधिकारिता है । अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य, यह दर्शित करने के लिए पर्याप्त हैं कि प्रत्यर्थी, कुटुम्ब न्यायालय, गुड़गावं की वैयक्तिक अधिकारिता के अध्यधीन है । यद्यपि, प्रत्यर्थी-पत्नी कुटुम्ब न्यायालय, गुड़गांव की अधिकारिता के अध्यधीन है, फिर भी, यह अभिनिर्धारित करने के लिए अभिलेख पर कुछ नहीं है कि अन्य पक्षकार गंभीर अन्याय से ग्रसित हो जाएगा, यदि व्यादेश मंजूर नहीं किया जाता है । इस तथ्य के बारे में कोई विवाद नहीं है कि दोनों पक्षकार यूएस के स्थायी नागरिक हैं । निर्विवाद तौर पर, सर्किट न्यायालय, फ्लोरिडा, यूएसए को भी प्रस्तुत मामले में, समवर्ती अधिकारिता है । यह दलील कि अपीलार्थी-पति गंभीर अन्याय से ग्रसित हो जाएगा यदि सर्किट न्यायालय, फ्लोरिडा, यूएसए में कार्यवाहियों को निरंतर चालू रखना मंजूर किया जाता है, कोई आधार नहीं बनता है, क्योंकि अपीलार्थी स्वयं वहां वर्ष 2007 के पश्चात् से रह रहा है और प्रतिवाद व्यादेश मंजूर करने के लिए उसके द्वारा एक अन्य व्यक्ति को मुख्तारनामे से सशक्त करते हुए उसके माध्यम से भारत में आरंभ की गई थी और उसके एवज में उसने मुकदमेबाजी को आगे बढ़ाया था । आगे, अभिलेख पर यह दर्शित करने के लिए कुछ भी प्रस्तुत नहीं किया गया है कि किस प्रकार अपीलार्थी-पति गंभीर अन्याय से ग्रसित हो जाएगा, यदि प्रत्यर्थी-पत्नी को फ्लोरिडा में विवाह-विच्छेद की याचिका चलाने से अवरुद्ध करते हुए, व्यादेश मंजूर नहीं किया जाता है । आगे भी, यद्यपि, व्यादेश मंजूर करने से इनकार किया

जाता है तो यह नहीं कहा जा सकता है कि न्याय का उद्देश्य विफल हो जाएगा और अन्याय शाश्वत जारी रहेगा ।

19. यह दलील कि प्रत्यर्थी-पत्नी ने विवाह के असुधार्य भंग के आधार पर यूएसए के न्यायालय में विवाह-विच्छेद के लिए याचिका फाइल की है जो अधिनियम, 1955 के अधीन विवाह-विच्छेद के लिए उपबंधित आधार नहीं है, पर विचार किया जाना अपेक्षित है । मात्र यह तथ्य कि प्रत्यर्थी-पत्नी ने उस आधार पर वाद फाइल किया है जो अधिनियम, 1955 के अधीन उसे उपलब्ध नहीं है, का अभिप्राय यह नहीं है कि उसे विवाह-विच्छेद के लिए डिक्री में सफल होने की उसकी संभावना है । विनिर्दिष्टतः, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि अपीलार्थी ने सर्किट न्यायालय, फ्लोरिडा के समक्ष इस दलील को उद्भूत किया है और दोनों पक्षकारों ने इस प्रश्न के बारे में साक्ष्य प्रस्तुत किया है कि क्या उनके विवाह अधिनियम, 1955 द्वारा शासित है या किसी अन्य विधि द्वारा शासित है ।

20. विदेशी न्यायालय गलत तौर पर अपनी अधिकारिता का प्रयोग नहीं कर सकता है, यदि इसके पश्चात् अपीलार्थी यह साबित करने में सफल हो जाता है कि वर्तमान मामले में पक्षकार, उनके बीच विवादित मामले में, भारत में हिन्दुओं को शासित करने वाले विधि द्वारा निरंतर शासित रहे हैं ।

21. उपर्युक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए मामले की प्रकृति और अन्य विशिष्ट तथ्यों पर विचार करने के पश्चात्, मैं, उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चय में हस्तक्षेप करना समुचित नहीं समझता हूं । हमारी यह राय है कि विदेशी न्यायालय में जारी कार्यवाहियों को अन्यायपूर्ण या तंग करने वाला नहीं कहा जा सकता है । तद्नुसार, अपील खारिज की जाती है, खर्चे का कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

क.

[2018] 4 उम. नि. प. 33

आय-कर आयुक्त, करनाल

बनाम

मैसर्स कारपेट इंडिया, पानीपत (हरियाणा)

27 अप्रैल, 2018

न्यायमूर्ति आर. के. अग्रवाल और न्यायमूर्ति अभय मनोहर सप्रे

आय-कर अधिनियम, 1961 (1961 का 43) – धारा 80जजग (1क), (3क) और स्पष्टीकरण (खकक) तथा धारा 28 – निर्यात कारबार के लिए प्रतिधारित लाभों की बाबत कटौती – समर्थक विनिर्माता द्वारा निर्यात प्रोत्साहन की बाबत प्रत्यक्ष विनिर्माता के बराबर कटौती का दावा किया जाना – धारा 80जजग की उपधारा (1क) और (3क) तथा इसके स्पष्टीकरण (खकक) में समर्थक विनिर्माता के लिए 90 प्रतिशत की कटौती के उपबंध को देखते हुए उच्च न्यायालय द्वारा निर्धारिती-समर्थक विनिर्माता के पक्ष में किया गया विनिश्चय सही प्रतीत न होने के कारण उसके दावे का विनिश्चय करने के लिए इसे बृहत्तर न्यायपीठ को निर्दिष्ट करना समुचित और न्यायोचित होगा ।

अपील के तथ्यों के अनुसार, मैसर्स कारपेट इंडिया (प्रा.) लि.- निर्धारिती एक भागीदारी फर्म है, जो गलीचों का विनिर्माण करके और मैसर्स आईकेईए ट्रेडिंग (इंडिया) लि. (निर्यात गृह) को विक्रय करके समर्थक विनिर्माता के रूप में आय प्राप्त कर रही है । निर्धारिती ने तारीख 30 अक्तूबर, 2001 को निर्धारण वर्ष 2001-2002 के लिए, अन्य बातों के साथ, शुल्क की वापसी के रूप में कुल 68,82,801/- रुपए के कुल निर्यात-प्रोत्साहन सहित 6,49,83,432/- रुपए के कुल विक्रय का उल्लेख करते हुए 'शून्य' विवरणी फाइल की और धारा 80जजग के अधीन प्रत्यक्ष निर्यातकर्ता के बराबर 1,97,10,927/- रुपए के कुल लाभ में से 1,57,68,742/- रुपए की कटौती का दावा किया । निर्धारण अधिकारी ने संवीक्षा करने के पश्चात् तारीख 25 फरवरी, 2004 के आदेश द्वारा धारा 80जजग के अधीन 57,18,040/- रुपए की कुल आय का निष्कर्ष निकालते हुए निर्धारित द्वारा यथा दावाकृत 1,57,68,742/- रुपए के बजाए 1,08,96,505/- रुपए की कटौती मंजूर की । निर्धारित ने व्यथित होकर आय-कर आयुक्त (अपील) के समक्ष एक अपील फाइल की, जो तारीख

12 अगस्त, 2004 के आदेश द्वारा यह अभिनिर्धारित करते हुए मंजूर की गई कि निर्धारिती 80जजग के अधीन निर्यातक के बराबर निर्यात प्रोत्साहनों की कटौती का हकदार है । राजस्व विभाग आय-कर अपील अधिकरण तथा उच्च न्यायालय के समक्ष अपील में गया किंतु ये अपीलें क्रमशः तारीख 23 फरवरी, 2007 और 13 मई, 2008 के आदेशों द्वारा खारिज कर दी गईं । आय-कर विभाग ने उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय की दो न्यायाधीशों की पीठ द्वारा निर्धारिती-समर्थक विनिर्माता के पक्ष में निष्कर्ष निकाला गया किंतु इस विषय पर विरोधी पूर्ववर्ती निर्णयों को देखते हुए मामले का विनिश्चय बृहत्तर न्यायपीठ को निर्दिष्ट करते हुए,

अभिनिर्धारित – आय-कर अधिनियम, 1961 की धारा 80जजग का एकमात्र प्रयोजन निर्यात कारबार की अभिवृद्धि करना तथा वैश्विक बाजार में घरेलू उत्पादों को प्रतिस्पर्धी बनाए रखने के लिए निर्यात से हुए लाभ पर कर की कटौती मंजूर करना है । आय-कर अधिनियम की धारा 80जजग के प्रारंभ से ये लाभ केवल प्रत्यक्ष निर्यातकर्ता को उपलभ्य थे, जो बाद में आय-कर अधिनियम की धारा 80जजग में उपधारा (1क) और (3क) अंतःस्थापित करके ऐसे समर्थक विनिर्माता को भी दिया गया, जो निर्यात गृह/व्यापार गृह को माल या वाणिज्या का विक्रय करता है । विधानमंडल ने आय-कर अधिनियम की धारा 80जजग को कटौती के प्रयोजन के लिए दो भागों में विभाजित किया है, अर्थात् प्रत्यक्ष निर्यातकर्ता और समर्थक विनिर्माता । प्रत्यक्ष निर्यातकर्ता, वह है जो भारतीय कंपनी है या ऐसा व्यक्ति (कंपनी से भिन्न) है जो भारत में निवासी है और जो प्रत्यक्ष रूप से किसी अन्य देश को माल का निर्यात करता है जबकि समर्थक विनिर्माता वह है, जो भारतीय कंपनी है या ऐसा व्यक्ति (कंपनी से भिन्न) है जो भारत में निवासी है और जो प्रत्यक्ष निर्यात करने के बजाए ऐसे निर्यात गृह को माल का प्रदाय करता है जो अंततः इस माल का निर्यात करता है । तथापि, धारा 80जजग के स्पष्टीकरण के खंड (खक) और (खकक) में "कुल आवर्त" और जो मदें इसमें सम्मिलित नहीं हैं तथा "कारबार के लाभ" को आय-कर अधिनियम की धारा 28 के खंड (iiiक) से (iiiकङ) में उल्लिखित किसी राशि का नब्बे प्रतिशत घटाकर आई राशि के रूप में परिभाषित किया गया है । धारा 28 के खंड (iiiक) से (iiiकङ) में आयात लाइसेंस के विक्रय से लाभ, निर्यात मद्धे प्राप्त या प्राप्य नकद सहायता, निर्यात मद्धे वापसी शुल्क (सीमा-शुल्क और केंद्रीय उत्पाद-शुल्क वापसी

नियम), ड्यूटी इंटाइटलमेंट पास-बुक के अंतरण पर कोई लाभ (ड्यूटी रिमिशन स्कीम) और ड्यूटी फ्री रिप्लेनिशमेंट सर्टिफिकेट के अंतरण पर हुए लाभ का विनिर्दिष्ट रूप से उल्लेख है । प्रस्तुत मामले में, संपूर्ण विवाद्यक समर्थक विनिर्माता की दशा में आय-कर अधिनियम की धारा 80जजग के अधीन कटौती की संगणना करने की रीति से संबंधित है । आय-कर अधिनियम के विभिन्न उपबंधों का परिशीलन करने पर यह स्पष्ट है कि आय-कर अधिनियम की धारा 80जजग में निर्यात कारबार के लिए प्रतिधारित लाभों की बाबत कटौती के लिए उपबंध किया गया है और विशिष्ट रूप से, उपधारा (1क) और (3क) में समर्थक विनिर्माता की दशा में कटौती के लिए उपबंध है । "कुल आवर्त" इस धारा के स्पष्टीकरण के खंड (खक) के अनुसार अवधारित किया जाना चाहिए जबकि "कारबार के लाभ" स्पष्टीकरण के खंड (खकक) के अनुसार अवधारित किया जाना चाहिए । इन दोनों खंडों में क्रमशः उल्लिखित कतिपय प्राप्तियों के अपवर्जन और 90 प्रतिशत घटाने का उपबंध किया गया है । समर्थक विनिर्माता की बाबत कटौती की संगणना आय-कर अधिनियम की धारा 80जजग (3क) द्वारा अनुध्यात है, जबकि ऐसी संगणित कटौती को दिया जाने वाला प्रभाव धारा 80जजग (1क) के अधीन अनुध्यात है । दूसरे शब्दों में, कटौती की संगणना करने के लिए मशीनरी आय-कर अधिनियम की धारा 80जजग (3ग) में उपबंधित है और आय-कर अधिनियम की धारा 80जजग (1क) द्वारा अनुध्यात अनुसार ऐसी कटौती की संगणना करने के पश्चात् कटौती की ऐसी रकम को निर्धारिती की करादेय आय/कुल आय निकालने के लिए उसकी सकल कुल आय से कटौती किए जाना आवश्यक है । मौटे तौर पर, इस न्यायलाय का यह मत है कि उच्च न्यायालय द्वारा अवलंबित मामला और यह मामला समान नहीं हैं और आय-कर अधिनियम की धारा 80जजग के अधीन समर्थक विनिर्माता द्वारा निर्यात प्रोत्साहनों की कटौती से संबंद्ध नहीं किया जा सकता है । तथापि, यह न्यायालय इन विनिश्चयों से सहमत नहीं हैं और चूंकि धारा 80जजग के स्पष्टीकरण (खकक) में आय-कर अधिनियम की धारा 28 (iiiक) से (iiiङ) में उल्लिखित रकम की 90 प्रतिशत कटौती विनिर्दिष्ट रूप से घटाई गई है, इसलिए न्यायालय का यह मत है कि इन विनिश्चयों पर एक बृहत्तर पीठ द्वारा पुनर्विचार किया जाना चाहिए, चूंकि इस विवाद्यक का दोनों पक्षकारों के धनीय फायदों के रूप में अत्यधिक प्रभाव है । (पैरा 10, 12 और 14)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2012] 2012 की सिविल अपील सं. 6437, तारीख 12 सितम्बर, 2012 को विनिश्चित : **आय-कर आयुक्त, करनाल** बनाम **सुशील कुमार गुप्ता** ; 14

[2007] (2007) 290 आई. टी. आर. 323 (एस. सी.) : **आय-कर आयुक्त, तिरुवनंतपुरम** बनाम **बेबी मरीन एक्सपोर्ट्स** । 6,7,8,13,14

अपीली (सिविल) अधिकारिता : **2018 की सिविल अपील सं. 4590 और इसके साथ 2018 की सिविल अपील सं. 4601, 4602, 4591, 4597, 4599, 4592, 4593, 4594, 4596, 4603, 4595 और 4598.**

2007 की आय-कर अपील सं. 544 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के तारीख 13 मई, 2008 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री के. राधाकृष्णन्, ज्येष्ठ अधिवक्ता, रुपेश कुमार, दीपक प्रकाश और (सुश्री) अनिल कटियार

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री अवि टंडन, रोहित स्थालेकर, टी. महिपाल, अरविंद गुप्ता, रंजन कुमार, मैसर्स लेक्स-पेरिशिया एंड कं., डा. राकेश गुप्ता, अश्विनी तनेजा, (सुश्री) मोनिका घई, (सुश्री) एस. बोरा, सोमिल अग्रवाल, अंबोज कुमार सिन्हा, अनुनव कुमार और जगदीश कुमार चावला

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति आर. के. अग्रवाल ने दिया ।

न्या. अग्रवाल – इजाजत दी गई ।

2. अपीलों का यह समूह आय-कर अधिनियम, 1961 (जिसे आगे संक्षेप में "आय-कर अधिनियम" कहा गया है) की धारा 80जजग में अंतर्विष्ट उपबंधों के निर्वचन से संबंधित है ।

3. **2009 की विशेष इजाजत याचिका (सिविल) सं. 8368.**

(क) मैसर्स कारपेट इंडिया (प्रा.) लि.-निर्धारिती एक भागीदारी फर्म है, जो गलीचों का विनिर्माण करके और मैसर्स आईकेईए ट्रेडिंग (इंडिया) लि. (निर्यात गृह) को विक्रय करके समर्थक विनिर्माता (सपोर्टिंग मैन्यूफैक्चरर) के रूप में आय प्राप्त कर रही है ।

(ख) निर्धारिती ने तारीख 30 अक्तूबर, 2001 को निर्धारण वर्ष 2001-2002 के लिए, अन्य बातों के साथ, शुल्क की वापसी के रूप में कुल 68,82,801/- रुपए के कुल निर्यात-प्रोत्साहन सहित 6,49,83,432/-रुपए के कुल विक्रय का उल्लेख करते हुए 'शून्य' विवरणी फाइल की और धारा 80जजग के अधीन प्रत्यक्ष निर्यातकर्ता के बराबर 1,97,10,927/- रुपए के कुल लाभ में से 1,57,68,742/- रुपए की कटौती का दावा किया ।

(ग) निर्धारण अधिकारी ने संवीक्षा करने के पश्चात् तारीख 25 फरवरी, 2004 के आदेश द्वारा धारा 80जजग के अधीन 57,18,040/- रुपए की कुल आय का निष्कर्ष निकालते हुए निर्धारित द्वारा यथा दावाकृत 1,57,68,742/- रुपए के बजाए 1,08,96,505/- रुपए की कटौती मंजूर की ।

(घ) निर्धारित ने व्यथित होकर आय-कर आयुक्त (अपील) के समक्ष एक अपील फाइल की, जो तारीख 12 अगस्त, 2004 के आदेश द्वारा यह अभिनिर्धारित करते हुए मंजूर की गई कि निर्धारिती 80जजग के अधीन निर्यातक के बराबर निर्यात प्रोत्साहनों की कटौती का हकदार है ।

(ङ) राजस्व विभाग ने आय-कर अपील अधिकरण (जिसे आगे संक्षेप में "अधिकरण" कहा गया है) तथा उच्च न्यायालय के समक्ष अपीलें फाइल की किंतु ये अपीलें क्रमशः तारीख 23 फरवरी, 2007 और 13 मई, 2008 के आदेशों द्वारा खारिज कर दी गईं और आखिरकार उसे विशेष इजाजत लेकर इस न्यायालय में आना पड़ा ।

(च) चूंकि इन अपीलों में विधि का एक सामान्य प्रश्न उद्भूत हुआ है, इसलिए इनका इस सामान्य आदेश द्वारा निपटारा किया जाएगा ।

4. पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउंसेलों को सुना और अभिलेख का परिशीलन किया ।

विचारणीय मुद्दा (मुद्दे)

5. इस न्यायालय के समक्ष जो विधि का संक्षिप्त किंतु महत्वपूर्ण प्रश्न उद्भूत होता है, वह यह है कि क्या वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में समर्थक विनिर्माता, जो शुल्क वापसी (ड्यूटी ड्रा बैक), ड्यूटी इन्टाइटलमेंट पास-बुक आदि के रूप में निर्यात प्रोत्साहन प्राप्त करता है, आय-कर अधिनियम की धारा 80जजग के अधीन प्रत्यक्ष निर्यातकर्ता के बराबर कटौती का हकदार है ?

विरोधी दलीलें

6. प्रारंभ में, राजस्व विभाग की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि निर्धारिती गलीचों (कारपेट) के विनिर्माण का व्यापार करता है और वह उनको प्रायिक तौर पर विभिन्न इकाईयों को बेचता है जिनमें मैसर्स आईकेईए ट्रेडिंग (इंडिया) लि. (निर्यात गृह/व्यापार गृह) भी है और वे उसके पश्चात् निर्धारिती द्वारा विनिर्मित माल का निर्यात करते हैं । निर्धारिती ने विवरणी फाइल करते समय आय-कर अधिनियम की धारा 80जजग के अधीन प्रत्यक्ष निर्यातकर्ता के बराबर कटौती का दावा किया चूंकि वह शुल्क वापसी आदि के रूप में निर्यात प्रोत्साहन प्राप्त करता है । यह भी दलील दी गई कि इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि निर्धारिती एक समर्थक विनिर्माता के रूप में कार्य कर रहा है और निर्धारिती फर्म द्वारा विदेशी संघटकों को माल का प्रत्यक्ष निर्यात नहीं किया जाता है, इसलिए वह प्रत्यक्ष निर्यातकर्ता के बराबर कटौती का दावा करने का हकदार नहीं है । तथापि, उच्च न्यायालय ने इस न्यायालय के निर्णय अर्थात् **आय-कर आयुक्त, तिरुवनंतपुरम** बनाम **बेबी मरीन एक्सपोर्ट्स**[1] वाले मामले का गलत अवलंब लिया और यह अभिनिर्धारित किया कि निर्धारिती प्रत्यक्ष निर्यातकर्ता के बराबर कटौती का दावा करने का हकदार है, जो कि विधि के अनुसार संधार्य नहीं है चूंकि उस मामले के विवाद्यक और तथ्य इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से प्रभेदनीय हैं ।

7. इस प्रक्रम पर, यह भी बताया गया कि उच्च न्यायालय तथा अधिकरण ने विवाद्यक का विनिश्चय करते समय विधि की गलती की है, क्योंकि उन्होंने निर्यात प्रोत्साहन को निर्यात गृह या व्यापार गृह द्वारा समर्थक विनिर्माता को संदत्त किए गए प्रीमियम के बराबर माना और इस तथ्य का मूल्यांकन नहीं किया कि निर्धारिती-फर्म के मामले में अंतर्वलित

---

[1] (2007) 290 आई. टी. आर. 323 (एस. सी.).

तथ्यों और विवाद्यकों का विनिश्चय-आधार **बेबी मरीन एक्सपोर्ट्स** (उपर्युक्त) वाले मामले से पूरी तरह से भिन्न है । यह उल्लेख किया गया कि उक्त मामला कारबार के लाभ और निर्धारिती फर्म के आवर्त में निर्यात गृह प्रीमियम को सम्मिलित करने की अर्हता से संबंधित था । अतः किसी भी परिस्थिति में, उच्च न्यायालय द्वारा इसका अवलंब नहीं लिया जा सकता था ।

8. इसके विपरीत, निर्धारिती की ओर से विद्वान् काउंसेल का आधार यह है कि निर्धारिती समर्थक विनिर्माता के रूप में कार्यरत है और निर्यात गृहों के माध्यम से विदेशी संघटकों को माल का निर्यात करता है, इसलिए वह आय-कर अधिनियम की धारा 80जजग के निबंधनों के अनुसार प्रत्यक्ष निर्यातकर्ता को उपलभ्य लाभों के लिए उसी प्रकार से निर्यात प्रोत्साहनों की कटौती का विधिसम्मत रूप से हकदार है । यह दलील दी गई कि उच्च न्यायालय ने **बेबी मरीन एक्सपोर्ट्स** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय का ठीक ही अवलंब लिया है । अतः यह विशेष इजाजत अपील खारिज की जानी चाहिए ।

चर्चा

9. मामले की परीक्षा करने से पूर्व, हम आय-कर अधिनियम की धारा 80जजग के सुसंगत उपबंधों को निर्दिष्ट करना उपयुक्त समझते हैं :–

> "**80जजग. निर्यात कारबार के लिए प्रतिधारित लाभों की बाबत कटौती** – (1) जहां कोई निर्धारिती जो भारतीय कंपनी है या (कंपनी से भिन्न) ऐसा व्यक्ति है जो भारत में निवासी है, भारत के बाहर किसी ऐसे माल या वाणिज्या के निर्यात के कारबार में लगा है जिसको यह धारा लागू होती है, वहां इस धारा के उपबंधों के अनुसार और उनके अधीन रहते हुए निर्धारिती की कुल आय की संगणना करने में ऐसे माल या वाणिज्या के निर्यात से निर्धारिती द्वारा प्राप्त लाभों की उस सीमा तक जो उपधारा (1ख) में निर्दिष्ट है, कटौती अनुज्ञात की जाएगी :
>
> परंतु यह कि यदि निर्धारिती, जो निर्यात गृह प्रमाणपत्र या व्यापार गृह प्रमाणपत्र का धारक है (जिसे इस धारा में इसके पश्चात् यथास्थिति, निर्यात गृह या व्यापार गृह कहा गया है) उपधारा (4क) के खंड (ख) में उल्लिखित यह प्रमाणपत्र देता है कि उसमें विनिर्दिष्ट निर्यात आवर्त की रकम की बाबत इस उपधारा के अंतर्गत कटौती

किसी समर्थक विनिर्माता को अनुज्ञात की जाए, तो निर्धारिती की दशा में कटौती की रकम में से ऐसी रकम घटा दी जाएगी जिसका निर्धारिती को व्यापार माल के निर्यात से व्युत्पन्न कुल लाभ से वही अनुपात है जो उक्त प्रमाणपत्र में विनिर्दिष्ट निर्यात-आवर्त की रकम का ऐसे व्यापार माल की बाबत निर्धारिती के कुल निर्यात-आवर्त से है ।

(1क) जहां निर्धारिती ने, जो समर्थक विनिर्माता है, पूर्व वर्ष के दौरान किसी निर्यात गृह या व्यापार गृह को किसी माल या वाणिज्या का विक्रय किया है जिसकी बाबत निर्यात गृह या व्यापार गृह ने उपधारा (1) के परंतुक के अधीन प्रमाणपत्र जारी किया है, वहां इस धारा के उपबंधों के अनुसार और उनके अधीन रहते हुए निर्धारिती की कुल आय की संगणना करने में निर्यात गृह या व्यापार गृह को ऐसे माल या वाणिज्या के, जिसकी बाबत निर्यात गृह या व्यापार गृह ने प्रमाणपत्र दिया है, विक्रय किए जाने से निर्धारिती द्वारा प्राप्त किए गए लाभों की उस सीमा तक, जो उपधारा (1ख) में निर्दिष्ट है, कटौती अनुज्ञात की जाएगी ।

(1ख) * * * * *

(2) * * * * *

(3) * * * * *

(3क) उपधारा (1क) के प्रयोजनों के लिए, माल या वाणिज्या के विक्रयों से समर्थक विनिर्माता द्वारा प्राप्त लाभ –

(क) उस दशा में जहां समर्थक विनिर्माता द्वारा चलाए जा रहे कारबार में अनन्यतः एक या अधिक निर्यात गृहों और व्यापार गृहों को माल या वाणिज्या का विक्रय आता है, वहां कारबार के लाभ होंगे ;

(ख) उस दशा में जहां समर्थक विनिर्माता द्वारा चलाए जा रहे कारबार में, अनन्यतः एक या अधिक निर्यात गृहों, व्यापार गृहों को माल या वाणिज्या का विक्रय नहीं आता है, वहां वह रकम होगी जिसका कारबार के लाभ से वही अनुपात है जो संबंधित निर्यात गृह या व्यापार गृह के विक्रय के बारे में आवर्त का निर्धारिती द्वारा किए जाने वाले कारबार के कुल आवर्त से है ।

(4) * * * * *

(4क) * * * * *

(4ख) * * * * *

(4ग) * * * * *

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए, –

(क) 'संपरिवर्तनीय विदेशी मुद्रा' से अभिप्रेत है ऐसी विदेशी मुद्रा जो भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा विदेशी मुद्रा प्रबंध अधिनियम, 1999 (1999 का 42) और उसके अधीन बनाए गए किन्हीं नियमों के प्रयोजनों के लिए तत्समय संपरिवर्तनीय विदेशी मुद्रा मानी गई है ;

(कक) 'भारत के बाहर निर्यात' के अंतर्गत भारत में स्थित किसी दुकान, एम्पोरियम या किसी अन्य स्थापन में विक्रय के रूप में या अन्यथा कोई ऐसा संव्यवहार नहीं आएगा जिसमें सीमा-शुल्क अधिनियम, 1962 (1962 का 52) में परिभाषित किसी सीमा-शुल्क स्टेशन पर निकासी अंतर्वलित नहीं है ;

(ख) 'निर्यात-आवर्त' से ऐसे माल या वाणिज्या के, जिसको यह धारा लागू होती है और जिसका भारत के बाहर निर्यात किया जाता है, उपधारा (2) के खंड (क) के अनुसार निर्धारिती द्वारा संपरिवर्तनीय विदेशी मुद्रा में भारत में प्राप्त किए गए या भारत में लाए गए विक्रय आगम अभिप्रेत हैं किंतु इसके अंतर्गत ऐसा भाड़ा या बीमा नहीं है, जो सीमा-शुल्क अधिनियम, 1962 (1962 का 52) में परिभाषित सीमा-शुल्क स्टेशन से परे माल या वाणिज्या के परिवहन के कारण हुआ माना जा सकता है ;

(खक) 'निर्यात-आवर्त' के अंतर्गत ऐसा भाड़ा या बीमा नहीं आएगा जो सीमा-शुल्क अधिनियम, 1962 (1962 का 52) में परिभाषित सीमा-शुल्क स्टेशन से परे किसी माल या वाणिज्या के परिवहन के कारण हुआ माना जा सकता है :

परंतु 1 अप्रैल, 1991 को या उसके पश्चात् प्रारंभ होने वाले किसी निर्धारण वर्ष के संबंध में 'कुल आवर्त' पद इस प्रकार प्रभावी होगा मानों इसके अंतर्गत धारा 28 के खंड (iiiक), (iiiख), (iiiग), (iiiघ) और (iiiङ) में उल्लिखित कोई राशि न हो ।

(खकक) 'कारबार से लाभ' से अभिप्रेत है 'कारबार या वृत्ति के लाभ और अभिलाभ' शीर्ष के अंतर्गत संगणित कारबार के लाभ, जैसे कि वे निम्नलिखित को घटाकर आएं, अर्थात् –

(1) धारा 28 के खंड (iiiक), (iiiख), (iiiग), (iiiघ) और (iiiङ) में उल्लिखित किसी राशि का अथवा दलाली, कमीशन, ब्याज, किराया, प्रभार या वैसी ही प्रकृति की किसी अन्य प्राप्ति के रूप में किन्हीं प्राप्तियों का, जो ऐसे लाभों में सम्मिलित हैं, नब्बे प्रतिशत ; और

(2) भारत के बाहर स्थिति निर्धारिती के किसी शाखा कार्यालय, भांडागार या किसी अन्य स्थापन के लाभ ;

(ग) * * * * *

(घ) * * * * *

(ङ) * * * * *

आय-कर अधिनियम की धारा 28 के खंड (iiiक), (iiiख), (iiiग), (iiiघ) और (iiiङ) निम्नलिखित हैं :–

"28. **कारबार या वृत्ति के लाभ और अभिलाभ** – निम्नलिखित आय 'कारबार या वृत्ति के लाभ और अभिलाभ' शीर्ष के अधीन आय-कर से प्रभार्य होगी,–

(i) * * * * *

(ii) * * * * *

(iii) * * * * *

(iiiक) आयात और निर्यात (नियंत्रण) अधिनियम, 1947 (1947 का 18) के अधीन बनाए गए आयात (नियंत्रण) आदेश, 1955 के अधीन अनुदत्त किसी लाइसेंस के विक्रय से लाभ ;

(iiiख) भारत सरकार की किसी स्कीम के अधीन निर्यात मद्दे किसी व्यक्ति द्वारा प्राप्त या प्राप्य नकद सहायता (चाहे वह किसी भी नाम से ज्ञात हो) ;

(iiiग) सीमा-शुल्क और केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क वापसी नियम, 1971 के अधीन निर्यात मद्दे किसी व्यक्ति को वापसी के

रूप में पुनःसंदत्त या पुनःसंदेय कोई सीमा-शुल्क या उत्पाद-शुल्क ;

(iiiघ) विदेश व्यापार (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1992 (1992 का 22) की धारा 5 के अधीन विरचित और घोषित निर्यात-आयात नीति के अधीन ड्यूटी एन्टाइटलमेंट पास बुक स्कीम, जो ड्यूटी रिमिशन स्कीम है, के अंतरण पर कोई लाभ ;

(iiiङ) विदेश व्यापार (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1992 (1992 का 22) की धारा 5 के अधीन विरचित और घोषित निर्यात-आयात नीति के अधीन ड्यूटी फ्री रिप्लेनिशमेंट सर्टिफिकेट, जो ड्यूटी रिमीशन स्कीम है, के अंतरण पर कोई लाभ ।"

10. आय-कर अधिनियम की धारा 80जजग का एकमात्र प्रयोजन निर्यात कारबार की अभिवृद्धि करना तथा वैश्विक बाजार में घरेलू उत्पादों को प्रतिस्पर्धी बनाए रखने के लिए निर्यात से हुए लाभ पर कर की कटौती मंजूर करना है । आय-कर अधिनियम की धारा 80जजग के प्रारंभ से ये लाभ केवल प्रत्यक्ष निर्यातकर्ता को उपलभ्य थे, जो बाद में आय-कर अधिनियम की धारा 80जजग में उपधारा (1क) और (3क) अंतःस्थापित करके ऐसे समर्थक विनिर्माता को भी दिया गया, जो निर्यात गृह/व्यापार गृह को माल या वाणिज्या का विक्रय करता है । विधान-मंडल ने आय-कर अधिनियम की धारा 80जजग को कटौती के प्रयोजन के लिए दो भागों में विभाजित किया है, अर्थात् प्रत्यक्ष निर्यातकर्ता और समर्थक विनिर्माता । प्रत्यक्ष निर्यातकर्ता, वह है जो भारतीय कंपनी है या ऐसा व्यक्ति (कंपनी से भिन्न) है जो भारत में निवासी है और जो प्रत्यक्ष रूप से किसी अन्य देश को माल का निर्यात करता है जबकि समर्थक विनिर्माता वह है, जो भारतीय कंपनी है या ऐसा व्यक्ति (कंपनी से भिन्न) है जो भारत में निवासी है और जो प्रत्यक्ष निर्यात करने के बजाए ऐसे निर्यात गृह को माल का प्रदाय करता है जो अंततः इन माल का निर्यात करता है । तथापि, धारा 80जजग के स्पष्टीकरण के खंड (खक) और (खकक) में "कुल आवर्त" और जो मदें इसमें सम्मिलित नहीं हैं तथा "कारबार के लाभ" को आय-कर अधिनियम की धारा 28 के खंड (iiiक) से (iiiकङ) में उल्लिखित किसी राशि का नब्बे प्रतिशत घटाकर आई राशि के रूप में परिभाषित किया गया है । धारा 28 के खंड (iiiक) से (iiiकङ) में आयात लाइसेंस के विक्रय से

लाभ, निर्यात मद्धे प्राप्त या प्राप्य नकद सहायता, निर्यात मद्धे वापसी शुल्क (सीमा शुल्क और केंद्रीय उत्पाद-शुल्क वापसी नियम), ड्यूटी इंटाइटलमेंट पास-बुक के अंतरण पर कोई लाभ (ड्यूटी रिमिशन स्कीम) और ड्यूटी फ्री रिप्लेनिशमेंट सर्टिफिकेट के अंतरण पर हुए लाभ का विनिर्दिष्ट रूप से उल्लेख है ।

11. यह सुविख्यात बात है कि आय के विभिन्न स्रोत हो सकते हैं । आय के इन स्रोतों को उस सकल कुल आय का पता लगाने के लिए एकसाथ संयोजित किया जाता है, जिस पर कर उद्गृहीत किया जा सके । तथापि, आय-कर अधिनियम में निर्धारिती की सकल कुल आय से कतिपय कटौतियां मंजूर करने के लिए उपबंध किया गया है । मोटे तौर पर, कटौतियों से करादेय आय कम हो जाती है । प्रस्तुत मामले में, यह स्पष्ट है कि संबंधित निर्धारण वर्ष के लिए निर्धारिती की कुल आय 1,97,10,927/- रुपए थी, जिसमें से उसने आय-कर अधिनियम की धारा 80जजग के अधीन 1,57,68,742/- रुपए की कटौती का दावा किया, जिसे निर्धारण अधिकारी द्वारा भागतः नामंजूर कर दिया गया और केवल 1,08,96,505/- रुपए की कटौती मंजूर की गई । तथापि, निर्धारिती ने आय-कर अधिनियम की धारा 80जजग के अधीन प्रत्यक्ष निर्यातकर्ता के बराबर कटौती का दावा किया, जिसे अंततः उच्च न्यायालय द्वारा कायम रखा गया ।

12. प्रस्तुत मामले में, संपूर्ण विवाद्यक समर्थक विनिर्माता की दशा में आय-कर अधिनियम की धारा 80जजग के अधीन कटौती की संगणना करने की रीति से संबंधित है । आय-कर अधिनियम के विभिन्न उपबंधों का परिशीलन करने पर यह स्पष्ट है कि आय-कर अधिनियम की धारा 80जजग में निर्यात कारबार के लिए प्रतिधारित लाभों की बाबत कटौती के लिए उपबंध किया गया है और विशिष्ट रूप से, उपधारा (1क) और (3क) में समर्थक विनिर्माता की दशा में कटौती के लिए उपबंध है । "कुल आवर्त" इस धारा के स्पष्टीकरण के खंड (खक) के अनुसार अवधारित किया जाना चाहिए जबकि "कारबार के लाभ" स्पष्टीकरण के खंड (खकक) के अनुसार अवधारित किया जाना चाहिए । इन दोनों खंडों में क्रमशः उल्लिखित कतिपय प्राप्तियों के अपवर्जन और 90 प्रतिशत घटाने का उपबंध किया गया है । समर्थक विनिर्माता की बाबत कटौती की संगणना आय-कर अधिनियम की धारा 80जजग (3क) द्वारा अनुध्यात है, जबकि ऐसी संगणित कटौती को दिया जाने वाला प्रभाव धारा 80जजग (1क) के अधीन अनुध्यात है । दूसरे शब्दों में, कटौती की संगणना करने के

लिए मशीनरी आय-कर अधिनियम की धारा 80जजग (3ग) में उपबंधित है और आय-कर अधिनियम की धारा 80जजग (1क) द्वारा अनुध्यात अनुसार ऐसी कटौती की संगणना करने के पश्चात् कटौती की ऐसी रकम को निर्धारिती की करादेय आय/कुल आय निकालने के लिए उसकी सकल कुल आय से कटौती किए जाना आवश्यक है ।

13. **बेबी मेरीन एक्सपोर्ट्स** (उपर्युक्त) वाले मामले में विधि का यह प्रश्न अंतर्वलित था कि क्या निर्धारिती द्वारा प्राप्त किया गया निर्यात गृह प्रीमियम आय-कर अधिनियम, 1961 की धारा 80जजग के अधीन कटौती की संगणना करते समय निर्धारिती के "कारबार के लाभ" में सम्मिलित किए जाने योग्य है ? उक्त मामले में मुख्य रूप से आय-कर अधिनियम, 1961 की धारा 80जजग के अधीन कटौती के प्रयोजन के लिए कारबार के लाभ में निर्यात गृह प्रीमियम सम्मिलित करने की पात्रता से संबंधित विवाद्यक पर विचार किया गया था । जबकि प्रस्तुत मामले में, विचार करने के लिए मुख्य मुद्दा यह है कि क्या निर्धारित-फर्म को, जो एक समर्थक विनिर्माता है, आय-कर अधिनियम, 1961 की धारा 80जजग के अधीन कटौती के प्रयोजन के लिए इस मामले के विशिष्ट तथ्यों को ध्यान में रखते हुए प्रत्यक्ष निर्यातकर्ता के बराबर समझा जाना चाहिए या नहीं ।

14. **बेबी मेरीन एक्सपोर्ट्स** (उपर्युक्त) वाले मामले में विवाद्यक का विनिश्चय करते हुए इस न्यायालय की दो न्यायाधीशों की पीठ ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

> "धारा 80जजग(1क) का स्पष्ट अर्थान्वयन करने पर, प्रत्यर्थी कुल आय की संगणना करने में निर्यात गृह से प्राप्त हुई प्रीमियम की रकम की कटौती का दावा करने का स्पष्ट रूप से हकदार है । निर्यात गृह प्रीमियम को कारबार के लाभ में सम्मिलित किया जा सकता है क्योंकि यह प्रत्यर्थी के कारबार प्रचलन का अभिन्न भाग है, जिसमें प्रत्यर्थी द्वारा निर्यात गृह को विक्रय किए गए माल समाविष्ट हैं ।"

पूर्वोक्त विनिश्चय को इस न्यायालय की एक अन्य दो न्यायाधीशों की पीठ द्वारा 2009 की विशेष इजाजत अपील (सिविल) सं. 7615, 2012 की सिविल अपील सं. 6437 तथा तारीख 12 सितम्बर, 2012 को विनिश्चित **आय-कर आयुक्त, करनाल** बनाम **सुशील कुमार गुप्ता**[1] वाले मामले में

---

[1] 2012 की सिविल अपील सं. 6437, तारीख 12 सितम्बर, 2012 को विनिश्चित.

अनुसरण किया गया था । पूर्वोक्त मामले में जिस प्रश्न पर विचार किया गया था, उसे नीचे उद्धृत किया जाता है :–

"3. इन सिविल अपीलों में अवधारण करने के लिए उद्भूत सामान्य प्रश्न निम्नलिखित है –

क्या समर्थक विनिर्माता (निर्धारिती) के पक्ष में अस्वीकार किया गया निर्यात लाभों का 90 प्रतिशत ऐसे समर्थक विनिर्माता को अधिनियम की धारा 80जजग (3क) के अधीन ग्राह्य कटौती की संगणना करते समय आय-कर अधिनियम, 1961 की धारा 80जजग के स्पष्टीकरण (खकक) के निबंधनों के अनुसार घटाया जाना चाहिए या नहीं ?

4. आय-कर आयुक्त **बनाम** बेबी मरीन एक्सपोर्ट्स (2007) 290 आई. टी. आर. 323/160 टैक्समेन 160 वाले मामले में इस प्रश्न का उत्तर निर्धारिती के पक्ष में और विभाग के विरुद्ध दिया गया है ।

5. तद्नुसार, विभाग द्वारा फाइल की गई ये सिविल अपीलें खारिज की जाती हैं ।"

मोटे तौर पर, हमारा यह मत है कि ये दोनों मामले समान नहीं हैं और आय-कर अधिनियम की धारा 80जजग के अधीन समर्थक विनिर्माता द्वारा निर्यात प्रोत्साहनों की कटौती से संबद्ध नहीं किया जा सकता है ।

15. तथापि, हम इन विनिश्चयों से सहमत नहीं हैं और चूंकि धारा 80जजग के स्पष्टीकरण (खकक) में आय-कर अधिनियम की धारा 28 (iiiक) से (iiiङ) में उल्लिखित रकम की 90 प्रतिशत कटौती विनिर्दिष्ट रूप से घटाई गई है, इसलिए हमारा यह मत है कि इन विनिश्चयों पर एक बृहत्तर पीठ द्वारा पुनर्विचार किया जाना चाहिए, चूंकि इस विवाद्यक का दोनों पक्षकारों के धनीय फायदों के रूप में अत्यधिक प्रभाव है । हमारे द्वारा गहराई से विचार करने के पश्चात्, इस न्यायालय के विचार के लिए साधारण महत्व का निम्नलिखित विधि का सारवान् प्रश्न उद्भूत होता है :–

"क्या प्रस्तुत मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों में, समर्थक विनिर्माता, जो शुल्क वापसी, ड्यूटी इन्टाइटलमेंट पास-बुक आदि के रूप में निर्यात प्रोत्साहन प्राप्त करता है, आय-कर अधिनियम, 1961 की धारा 80जजग के अधीन कटौती का हकदार है या नहीं ?"

16. तद्नुसार, हम अपीलों के इस समूह को बृहत्तर न्यायपीठ को निर्दिष्ट करते हैं । मामलों को समुचित आदेशों के लिए भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के समक्ष रखा जाए ।

अपीलें बृहत्तर न्यायपीठ के विनिश्चय के लिए निर्दिष्ट की गईं ।

जस.

[2018] 4 उम. नि. प. 47

शंकर

बनाम

मध्य प्रदेश राज्य

तथा

सुरेश धोबी

बनाम

मध्य प्रदेश राज्य

18 अप्रैल, 2018

न्यायमूर्ति एन. वी. रमना और न्यायमूर्ति एस. अब्दुल नज़ीर

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302/149 – हत्या और विधिविरुद्ध जमाव – दोषसिद्धि – कई सारे अभियुक्तों द्वारा चाकू, गुप्ती और लात-घूसों से मृतक पर हमला किया जाना – अपीलार्थी-अभियुक्तों की भूमिका लात-घूसों से पिटाई करने तक पाया जाना – चिकित्सीय साक्ष्य के अनुसार चाकू से कारित क्षति के कारण मृत्यु होना – जहां अभियुक्तों द्वारा निभाई गई भूमिका के बारे में घटना के प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के साक्ष्य में विरोधाभास हो और तात्विक पहलुओं पर एक-दूसरे के कथन से संपुष्टि न होती हो तथा घटना का कोई स्वतंत्र साक्षी भी न हों, वहां अभियुक्तों की दोषिता युक्तियुक्त संदेह के परे साबित न होने पर केवल धारणाओं और उपधारणाओं के आधार पर की गई उनकी दोषसिद्धि को कायम रखना न्यायोचित नहीं होगा ।

मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि तारीख 8 मई, 1998 को संजय

सोरले नामक व्यक्ति भरवेली गांव में एक विवाह में सम्मिलित हुआ था । जब रस्में निभाई जा रही थीं तब दीपक और दो अन्य व्यक्ति मोटरसाइकिल पर वहां आए । संजय सोरले और मोटरसाइकिल पर सवार व्यक्तियों के बीच कहा-सुनी हुई । दीपक ने उस स्थान से जाते हुए संजय सोरले को धमकी दी और वहां से चला गया । उसके पश्चात्, वह पुनः गुड्डा **उर्फ** शिवशंकर, शिव, सुरेश (अपीलार्थी) और शंकर (अपीलार्थी) सहित एक बुलेट मोटरसाइकिल पर विवाह स्थल पर वापस आया और संजय सोरले को विवाह स्थल से सड़क पर ले गया और उस पर हमला किया । अभिकथित रूप से कुल मिलाकर 11 व्यक्ति अपराध में संलिप्त थे । गुड्डा ने चाकू से और शिव ने गुप्ती से क्षतियां कारित की थीं जबकि शंकर और सुरेश अर्थात् इस अपील में अपीलार्थियों ने घूसों से प्रहार करके उस पर हमला किया था । क्षतिग्रस्त संजय सोरले को पुलिस थाना, भरवेली ले जाया गया और 11.00 बजे अपराह्न में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की गई । क्षतिग्रस्त संजय सोरले को उपचार के लिए जिला अस्पताल भेजा गया, जहां उसे मृत घोषित कर दिया गया । अभियुक्तों को गिरफ्तार किया गया और अभियुक्त शिवशंकर, मनोज, द्वारका और शिवकुमार के बताने पर चाकू और अपराध में आलिप्त करने वाली अन्य सामग्री अभिगृहीत की गईं । अभियुक्तों अर्थात् मनोज, बाबूराव, दीपक, गुड्डा **उर्फ** शिवशंकर, शंकर और द्वारका **उर्फ** डॉन के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 148 और 302/149 के अधीन आरोप लगाए गए । इन आरोपों के अतिरिक्त, अभियुक्त रुपेश, चोखू **उर्फ** राकेश, सुरेश, शिवकुमार और डब्ल्यू **उर्फ** सुधांशु को अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 3(2)(5) के अधीन दंडनीय अपराध के लिए अतिरिक्त रूप से आरोपित किया गया । अभियुक्तों ने आरोपों से इनकार किया, मिथ्या रूप से फंसाए जाने का अभिवाक् किया और विचारण किए जाने का दावा किया । विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश ने विस्तृत विचारण करने के पश्चात् छह अभियुक्तों को सभी आरोपों से दोषमुक्त कर दिया और अभियुक्तों (इस अपील में अपीलार्थियों सहित) को अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 3(2)(5) के अधीन आरोपों से उन्मोचित कर दिया । तथापि, विचारण न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि शेष पांच अभियुक्त (इस अपील में अपीलार्थियों सहित) भारतीय दंड संहिता की धारा 148 और 302/149 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए दोषी हैं । तद्नुसार, तारीख उन्हें दोषसिद्ध किया और भारतीय दंड संहिता की धारा 148 के अधीन अपराध के लिए एक वर्ष की अवधि के लिए कठोर कारावास भुगतने जबकि भारतीय दंड

संहिता की धारा 302/149 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए जुर्माने सहित आजीवन कारावास भुगतने का दंडादेश दिया । सभी पांच अभियुक्त विचारण न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर अपनी दोषसिद्धि और दंडादेश के अधिनिर्णय को चुनौती देते हुए मामले को मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय, जबलपुर के समक्ष अपील में लेकर आए । उच्च न्यायालय ने उनकी अपील को गुणागुण रहित पाया और विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए निर्णय को कायम रखते हुए इसे खारिज कर दिया । इस खारिजी से व्यथित होकर अभियुक्त सं. 3 सुरेश धोबी और अभियुक्त सं. 5 शंकर ने उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपीलें फाइल कीं । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलें मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – अभि. सा. 1 गणेश प्रसाद के साक्ष्य से यह स्पष्ट होता है कि यद्यपि उसने दोनों अभियुक्त-अपीलार्थियों को देखा था, किंतु वह उन्हें केवल उनके चेहरे से जानता था और अभि. सा. 5 सावित्री बाई ने ही उसे उनके नाम बताए थे और उसने जो कहा था उसके आधार पर ही उसने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में उनके नाम अभिलिखित कराए थे । इस साक्षी ने यह भी कथन किया कि दोनों अभियुक्तों ने अपने नाम शंकर और सुरेश बताए थे । किंतु उसके साक्ष्य से यह स्पष्ट नहीं होता है कि अभियुक्तों ने अपने नाम किसको बताए थे । हालांकि दोनों अभियुक्तों के नाम प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में हैं और अभि. सा. 1 के अनुसार, इन दोनों अभियुक्तों द्वारा निभाई गई भूमिका यह है कि उन्होंने अन्य अभियुक्तों के साथ-साथ आहत की लात और घूसों से प्रहार करके पिटाई की थी । अभि. सा. 1 द्वारा अभिव्यक्त रूप से यह कथन किया गया है कि जब उसने मदद के लिए पुकारने की सोची, अभियुक्त-अपीलार्थी घटनास्थल से भाग गए । अभि. सा. 5 के साक्ष्य से यह प्रतीत होता है कि अभियोजन के पक्षकथन में इस बारे में अत्यधिक विसंगति है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट किसने दर्ज की थी । अभि. सा. 5 द्वारा स्पष्ट रूप से यह कथन किया गया है कि उसने ही पुलिस थाने में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की थी और किसी अन्य व्यक्ति द्वारा शिकायत दर्ज कराने के बारे में उसे कोई जानकारी नहीं थी तथा उसे उसकी रिपोर्ट संलग्न न करने के कारण का भी पता नहीं है । उसने यह स्पष्ट किया कि रिपोर्ट दर्ज करने के पश्चात् वह अपने घर लौट आई थी । उसके घर लौटने के आधे घंटे के पश्चात् पुलिस ने उसका कथन अभिलिखित किया था । यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि अभि. सा. 5 ने विनिर्दिष्ट रूप से यह कथन किया है कि अभि. सा. 1 गणेश प्रसाद ने रिपोर्ट दर्ज नहीं की थी । इस साक्षी द्वारा यह भी स्पष्ट किया

गया कि अभियुक्तों में से किसी ने भी आहत पर लाठी से प्रहार नहीं किया था । डाक्टर ने अपनी यह राय व्यक्त की कि मृत्यु हृदय से अत्यधिक रक्त बहने के परिणामस्वरूप हो सकती है और मृत्यु मरणोत्तर परीक्षा के 18 घंटे के भीतर हुई हो सकती है । प्रतिपरीक्षा में डाक्टर से यह बात निकलकर आई कि मृत्यु केवल क्षति. सं. 1 से कारित हुई थी और अन्य क्षतियों से मृत्यु होने की कोई संभावना नहीं थी । डाक्टर की राय में, क्षति सं. 1 केवल किसी चाकू या गुप्ती से कारित की जा सकती थी न कि हाथ या लाठी द्वारा । इस न्यायालय ने प्रमुख अभियोजन साक्षियों अर्थात् अभि. सा. 1 और 5 के साक्ष्य पर गंभीरता पूर्वक विचार किया है और यह स्पष्ट है कि तात्विक पहलुओं पर उनके कथनों की अन्य साक्ष्य से संपुष्टि नहीं हो रही है । यह प्रतीत होता है कि निचले न्यायालयों ने अभि. सा. 1 और 5 के कथनों की सत्यता पर विचार किए बिना उनके साक्ष्य को लापरवाहीपूर्वक अत्यधिक महत्व दिया है । सर्वप्रथम, यदि अभि. सा. 5 के कथन को सत्य मान लिया जाए, तो प्रथम इत्तिला रिपोर्ट (उपाबंध पी. 1) की उत्पत्ति और असलियत निस्संदेह शंकास्पद है । यदि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट (प्रदर्श पी. 1) अभि. सा. 1 की शिकायत के आधार पर दर्ज की गई थी, जिसे इसके लेखक एम. जी. चौबे (अभि. सा. 17) के कथन द्वारा सम्यक् रूप से साबित नहीं किया गया है, तो अभि. सा. 5 के कथन पर विश्वास नहीं किया जा सकता है और प्रभावशील नहीं किया जा सकता है, क्योंकि उसने अपने साक्ष्य में स्पष्ट रूप से यह प्रकथन किया है कि उसने ही पुलिस में शिकायत दर्ज की थी और अभि. सा. 1 ने पुलिस में कोई रिपोर्ट दर्ज नहीं की थी । यदि अभि. सा. 1 के कथन पर विश्वास किया जाए, तो यह नहीं कहा जा सकता है कि वह घटना का प्रत्यक्षदर्शी साक्षी था, क्योंकि उसके अनुसार, घटना के समय वह मदद के लिए अन्य व्यक्तियों को बुलाने हेतु मंडप में गया था और घटनास्थल मंडप से दिखाई नहीं दे रहा था । यह तथ्य अभि. सा. 1 और 5 के एक अन्य घनिष्ठ नातेदार, अभि. सा. 4 अमित के साक्ष्य द्वारा भी साबित होता है । अभि. सा. 4 के अनुसार, जब वह और अभि. सा. 1 मंडप में मौजूद थे, तब संजय सोरले वहां आया और अचेत अवस्था में जाते हुए नीचे गिर गया । जब अभि. सा. 1 और 4 मंडप से बाहर देखने के लिए गए, तब तक अभियुक्त उस स्थान से चले गए थे । इस साक्षी का यह कथन है कि उसे कोई जानकारी नहीं है कि अभियुक्त किस दिशा में गए थे । अभि. सा. 5 कोई और नहीं अपितु अभि. सा. 1 की भतीजी है । उसके अनुसार, वह व्यक्तिगत रूप से मंडप में मौजूद थी और जब अभियुक्त मृतक को बाहर

ले जा रहे थे तब वह अभियुक्तों के पीछे-पीछे गई थी । केवल इससे प्रत्यक्षदर्शी होने का तथ्य सिद्ध होता है किंतु महत्वपूर्ण बात यह है कि इस साक्षी ने अन्वेषक अधिकारी को इस तथ्य के बारे में नहीं बताया था कि वह मंडप से घटनास्थल तक मृतक के पीछे-पीछे गई थी । इस आशय का यह लोप प्रदर्श डी 2 के रूप में चिन्हित है । इस बात को देखते हुए, अभि. सा. 1 का यह साक्ष्य भी कि उसे हमलावरों के नामों के बारे में अभि. सा. 5 के माध्यम से पता चला था, विश्वासोत्पादक नहीं है । प्रस्तुत मामले को देखने से ही किसी संकोच के बिना यह कहा जा सकता है कि अभियोजन पक्ष अभिकथित अपराध को तर्कपूर्ण और विश्वसनीय साक्ष्य प्रस्तुत करके साबित करने मे पूरी तरह से असफल रहा है । दूसरे शब्दों में, यह मामला प्रमुख अभियोजन साक्षियों के साक्ष्य में कई विरोधाभासों सहित दुर्बल और कमजोर आधार पर आधारित है । इसके अतिरिक्त, अधिकांश अभियोजन साक्षी पक्षद्रोही हो गए हैं और किसी स्वतंत्र साक्षी ने अभियोजन के पक्षकथन का समर्थन नहीं किया है । दिलचस्प बात यह है कि कोई शनाख्त परेड आयोजित नहीं की गई थी, हालांकि अभि. सा. 1 का यह कथन है कि वह अभियुक्तों को केवल उनके चेहरे से पहचान सकता है और आंरभ में अभियुक्तों के रूप में नामित केवल पांच व्यक्ति थे किंतु बाद में कुल 11 व्यक्तियों को आरोपित किया गया था और उनमें से अधिकांश को विचारण न्यायालय द्वारा पहले ही दोषमुक्त कर दिया गया है । अभिलेख पर की सामग्री से यह दर्शित होता है कि अभियुक्तों के कब्जे से एक लाठी भी बरामद हुई थी, किंतु यह दर्शित करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं है कि आहत पर हमला करने में लाठी किसने चलाई थी । अभि. सा. 5 के अनुसार, अभियुक्तों में से किसी ने भी आहत पर लाठी से हमला नहीं किया था । प्रस्तुत मामले में, निचले न्यायालय अभि. सा. 1 और 5 के साक्ष्य में के विरोधाभासों और विकारों पर विचार करने में असफल रहे हैं । अभि. सा. 1 के साक्ष्य से स्पष्ट रूप से यह प्रकट होता है कि अभियुक्त-अपीलार्थी शंकर और सुरेश की अपराध में सहभागिता और निभाई गई भूमिका मृतक पर लात और घूसों से प्रहार करने तक सीमित थी, जबकि अन्य अभियुक्त गुड्डा और शिव मृतक पर क्रमशः चाकू और गुप्ती से हमला कर रहे थे । अभियोजन साक्षी के ऐसे कथन की संपुष्टि, जो कि अन्यथा अविश्वसनीय है, एक अन्य अभियोजन साक्षी के अन्य अविश्वसनीय साक्ष्य से नहीं की जा सकती है । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में भी यह उल्लेख है कि शंकर और सुरेश, जो इस अपील में अपीलार्थी हैं, ने विपदग्रस्त की लात और घूसों से पिटाई की थी और उनके द्वारा कोई आयुध लिए होने

का उल्लेख नहीं किया गया है । जबकि, अभि. सा. 5 ने अलग ही यह कथन किया है कि अभियुक्त शंकर ने भी आहत पर चाकू से हमला किया था । इन साक्षियों के कथनों से, जो कि प्रमुख साक्षी हैं, इस अपील में अभियुक्तों द्वारा निभाई गई भूमिका के बारे में एक-दूसरे से संपुष्टि नहीं होती है । मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट और अभि. सा. 7 (डा. निलाए जैन) के साक्ष्य से आहत की लात, तमाचों और घूसों से की गई पिटाई के परिणामस्वरूप उसे कोई क्षति कारित होना प्रकट नहीं होता है, क्योंकि ऐसी क्षतियां दृष्टिगोचर नहीं हैं । अभियोजन पक्ष ने आहत पर हमला करने वाले बहुत सारे हमलावरों को अभियुक्त बनाया था किंतु साक्षी, हालांकि जिनके साक्ष्य विसंगतियों से भरे हैं, यह उल्लेख करने में समर्थ नहीं हो सके हैं कि इस अपील में अपीलार्थियों ने मृतक को कैसे क्षतियां कारित की थीं जिससे उसकी मृत्यु हो गई थी । ऐसे परिदृश्य में, अपीलार्थियों को दोषसिद्ध करना न्याय के हित में नहीं होगा क्योंकि दांडिक विचारण में सबूत का मानदंड युक्तियुक्त संदेह के परे सबूत होने का है और अभियोजन पक्ष इन मानदंडों के अनुसार अभियुक्तों की दोषिता को साबित नहीं कर सका है । निचले न्यायालयों ने अपनी स्वयं की धारणाओं और उपधारणों के आधार पर अभियुक्तों को दोषसिद्ध किया है । यद्यपि अभियोजन पक्ष के साक्ष्य में की प्रत्येक विसंगति और विरोधाभास अभियोजन के पक्षकथन के लिए घातक नहीं होता है, किंतु प्रस्तुत मामले में विरोधाभास मामले की तह तक जाते हैं और तात्विक हैं तथा ऐसे साक्ष्य के आधार पर अभियुक्तों को दोषसिद्ध करना उचित नहीं है । (पैरा 9, 11, 12, 13, 15 और 18)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2013] (2013) 10 स्केल 454 :
एस. गोविंदराजू बनाम **कर्नाटक राज्य** ; 14

[2002] (2002) 6 एस. सी. सी. 470 :
हरिजन थिरुपला और अन्य बनाम **लोक अभियोजक, आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय, हैदराबाद** । 17

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2011 की दांडिक अपील सं. 1785 और इसके साथ 2011 की दांडिक अपील सं. 1786-1788.

1998 के सेशन मामला सं. 120 में 1999 की दांडिक अपील सं. 333 में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय, जबलपुर के तारीख 12 सितम्बर, 2007 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध संविधान, 1950 के अनुच्छेद 136 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से — सर्वश्री कृष्णकांत पांडे, धानेश बी. धोतरे और शिव सागर तिवारी

प्रत्यर्थी की ओर से — सर्वश्री डी. एस. परमार, राजेश श्रीवास्तव और (सुश्री) स्वरुपमा चतुर्वेदी (मिश्रा सौरभ की ओर से)

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एन. वी. रमना ने दिया ।

न्या. रमना – विशेष इजाजत लेकर फाइल की गई ये अपीलें 1999 की दांडिक अपील सं. 315, 316, 333 और 590 में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय, जबलपुर द्वारा तारीख 12 सितम्बर, 2007 को पारित किए गए उस निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई हैं, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने इस अपील में अपीलार्थियों द्वारा फाइल की गई दांडिक अपीलें खारिज कर दीं और विचारण न्यायालय द्वारा उनके विरुद्ध पारित किए गए दोषसिद्ध और दंडादेश के आदेश की अभिपुष्टि की ।

2. अभियोजन पक्ष के अनुसार, मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि तारीख 8 मई, 1998 को संजय सोरले नामक व्यक्ति भरवेली गांव में एक विवाह में सम्मिलित हुआ था । जब रस्में निभाई जा रही थीं तब दीपक और दो अन्य व्यक्ति मोटरसाइकिल पर वहां आए । संजय सोरले और मोटरसाइकिल पर सवार व्यक्तियों के बीच कहा-सुनी हुई । दीपक ने उस स्थान से जाते हुए संजय सोरले को धमकी दी और वहां से चला गया । उसके पश्चात्, वह लगभग 10.30 बजे अपराह्न में गुड्डा **उर्फ** शिवशंकर, शिव, सुरेश (अपीलार्थी) और शंकर (अपीलार्थी) सहित एक बुलेट मोटरसाइकिल पर विवाह स्थल पर वापस आया और संजय सोरले को विवाह स्थल से सड़क पर ले गया और उस पर हमला किया । अभिकथित रूप से कुल मिलाकर 11 व्यक्ति अपराध में संलिप्त थे । गुड्डा ने चाकू से और शिव ने गुप्ती से क्षतियां कारित की थीं जबकि शंकर और सुरेश अर्थात् इस अपील में अपीलार्थियों ने घूसों से प्रहार करके उस पर हमला किया था । क्षतिग्रस्त संजय सोरले को पुलिस थाना, भरवेली ले जाया गया और 11.00 बजे अपराह्न में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की गई ।

3. पुलिस ने इस प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को 1998 के अपराध सं. 54 के रूप में रजिस्ट्रीकृत करने के पश्चात् क्षतिग्रस्त संजय सोरले को उपचार के लिए जिला अस्पताल, बालाघाट भेजा, जहां उसे मृत घोषित कर दिया गया । मृत्युसमीक्षा (प्रदर्श पी. 3) करने के पश्चात् मृतक का शव मरणोत्तर परीक्षा के लिए भेजा गया, साक्षियों के कथन अभिलिखित किए गए, पटवारी द्वारा स्थलनक्शा (प्रदर्श पी. 5) तथा पुलिस द्वारा भी स्थलनक्शा (प्रदर्श पी. 24) बनाया गया । अभियुक्तों को गिरफ्तार किया गया और अभियुक्त शिवशंकर, मनोज, द्वारका और शिवकुमार के बताने पर चाकू और अपराध में आलिप्त करने वाली अन्य सामग्री अभिगृहीत की गईं । बुलेट मोटरसाइकिल (प्रदर्श पी. 9) भी, जो अभिकथित रूप से अभियुक्तों द्वारा चलाई जा रही थी, अभियुक्त चोखू **उर्फ** राकेश के कब्जे से बरामद की गई । अन्य वस्तुएं जैसे रक्तरंजित मिट्टी, सादा मिट्टी और मृतक के वस्त्र अभिगृहीत किए गए और विशेषज्ञ परीक्षण के लिए भेजे गए । पांच अभियुक्तों अर्थात् मनोज, बाबूराव, दीपक, गुड्डा **उर्फ** शिवशंकर, शंकर और द्वारका **उर्फ** डॉन के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 148 और 302/149 के अधीन आरोप लगाए गए । इन आरोपों के अतिरिक्त, अभियुक्त रुपेश, चोखू **उर्फ** राकेश, सुरेश, शिवकुमार और डब्ल्यू **उर्फ** सुधांशु को अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 3(2)(5) के अधीन दंडनीय अपराध के लिए अतिरिक्त रूप से आरोपित किया गया । अभियुक्तों ने आरोपों से इनकार किया, मिथ्या रूप से फंसाए जाने का अभिवाक् किया और विचारण किए जाने का दावा किया ।

4. विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश ने 1998 के विशेष सेशन मामला सं. 51 और 1998 के सेशन मामला सं. 120 में विस्तृत विचारण करने के पश्चात् छह अभियुक्तों को सभी आरोपों से दोषमुक्त कर दिया और अभियुक्तों (इस अपील में अपीलार्थियों सहित) को अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 3(2)(5) के अधीन आरोपों से उन्मोचित कर दिया । तथापि, विचारण न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि शेष पांच अभियुक्त (इस अपील में अपीलार्थियों सहित) भारतीय दंड संहिता की धारा 148 और 302/149 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए दोषी हैं । तद्नुसार, तारीख 27 जनवरी, 1999 के निर्णय द्वारा उन्हें दोषसिद्ध किया और भारतीय दंड संहिता की धारा 148 के अधीन अपराध के लिए एक वर्ष की अवधि के लिए कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया । जबकि भारतीय दंड संहिता की धारा

302/149 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए उन्हें आजीवन कारावास भुगतने और प्रत्येक द्वारा 2,000/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने और जुर्माने के संदाय करने में व्यतिक्रम करने पर एक वर्ष का अतिरिक्त कारावास भुगतने का दंडादेश दिया । तथापि, सभी दंडादेश साथ-साथ चलने का निदेश दिया गया ।

5. सभी पांच अभियुक्त विचारण न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर अपनी दोषसिद्धि और दंडादेश के अधिनिर्णय को चुनौती देते हुए मामले को मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय, जबलपुर के समक्ष अपील में लेकर आए । उच्च न्यायालय ने इस अपील में आक्षेपित निर्णय द्वारा उनकी अपील को गुणागुण रहित पाया और इसलिए विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए निर्णय को कायम रखते हुए इसे खारिज कर दिया । इस खारिजी से व्यथित होकर अभियुक्त सं. 3 सुरेश धोबी और अभियुक्त सं. 5 शंकर वर्तमान अपीलों के द्वारा इस न्यायालय के समक्ष आए हैं ।

6. हमने अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल तथा प्रत्यर्थी-राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल को सुना । दुर्भाग्यवश, स्थगन लेने के बावजूद अपीलार्थियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल से कोई उचित सहायता नहीं मिली । तथापि, राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि चूंकि दो न्यायालयों ने समवर्ती रूप से अभियुक्तों की दोषिता की अभिपुष्टि की है, इसलिए इस न्यायालय के लिए आक्षेपित निर्णय में हस्तक्षेप करने के लिए कोई उचित कारण नहीं हैं और इस दलील के समर्थन में तर्क प्रस्तुत किए ।

7. मुख्य साक्षियों, अभि. सा. 1 और अभि. सा. 5, जिनका साक्ष्य इस मामले के लिए महत्वपूर्ण है, के साक्ष्य की अनुदित प्रतियां जो अपीलार्थी द्वारा अपील के साथ फाइल की गई हैं, स्पष्ट नहीं हैं और हमने उनमें बहुत सारी टंकण और व्याकरण संबंधी गलतियां पाई हैं । सच्चाई यह है कि प्रत्यर्थी-राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने स्वयं ही अभि. सा. 1 और 5 के साक्ष्य की अनुदित प्रतियां फाइल की हैं । हम प्रत्यर्थी-राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल का एक न्यायसंगत निष्कर्ष पर पहुंचने की प्रक्रिया में साक्ष्य पर विचार करने में की गई सामर्थ्यवान् सहायता के लिए आभार व्यक्त करते हैं ।

8. अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य से यह प्रकट होता है कि अभियोजन का संपूर्ण पक्षकथन दो अभियोजन साक्षियों अर्थात् अभि. सा. 1 गणेश प्रसाद और अभि. सा. 5 सावित्री बाई के साक्ष्य पर आधारित है ।

9. अभि. सा.1 गणेश प्रसाद के साक्ष्य से यह स्पष्ट होता है कि यद्यपि उसने दोनों अभियुक्त-अपीलार्थियों को देखा था, किंतु वह उन्हें केवल उनके चेहरे से जानता था और अभि. सा. 5 सावित्री बाई ने ही उसे उनके नाम बताए थे और उसने जो कहा था उसके आधार पर ही उसने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में उनके नाम अभिलिखित कराए थे । इस साक्षी ने यह भी कथन किया कि दोनों अभियुक्तों ने अपने नाम शंकर और सुरेश बताए थे । किंतु उसके साक्ष्य से यह स्पष्ट नहीं होता है कि अभियुक्तों ने अपने नाम किसको बताए थे । हालांकि दोनों अभियुक्तों के नाम प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में हैं और अभि. सा. 1 के अनुसार, इन दोनों अभियुक्तों द्वारा निभाई गई भूमिका यह है कि उन्होंने अन्य अभियुक्तों के साथ-साथ आहत की लात और घूसों से प्रहार करके पिटाई की थी । अभि. सा. 1 द्वारा अभिव्यक्त रूप से यह कथन किया गया है कि जब उसने मदद के लिए पुकारने की सोची, अभियुक्त-अपीलार्थी घटनास्थल से भाग गए ।

10. अभि. सा. 5 सावित्री बाई ने, जो वार्ड की पंच भी थी, यह अभिसाक्ष्य दिया कि वह विवाह स्थल (मंडप) पर आहत संजय सोरले से लगभग 10 फुट की दूरी पर खड़ी थी, तब अभियुक्त शिव संजय सोरले को वहां से बाहर ले गया जहां अन्य अभियुक्त गुड्डा, दीपक, शंकर और सुरेश मौजूद थे । इस साक्षी ने, अभि. सा. 1 के साक्ष्य के प्रतिकूल, यह अभिसाक्ष्य दिया कि अभियुक्त-अपीलार्थी शंकर चाकू से लैस था और आहत पर हमला किया था जबकि शिव ने गुप्ती से, गुड्डा ने चाकू से हमला किया था जबकि सुरेश और दीपक ने संजय को पकड़ा हुआ था । इस साक्षी ने यह कहा कि उसने घटनास्थल पर मौजूद अन्य व्यक्तियों को नहीं देखा था । जब वह जोर-जोर से चिल्लाई, तो अभियुक्त भाग गए और आहत लड़खड़ाता हुआ मंडप में आया । जबकि प्रतिपरीक्षा में इस साक्षी ने स्पष्ट रूप से यह कथन किया कि मंडप के स्थान से घटनास्थल को नहीं देखा जा सकता था ।

11. अभि. सा. 5 के साक्ष्य से यह प्रतीत होता है कि अभियोजन के पक्षकथन में इस बारे में अत्यधिक विसंगति है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट किसने दर्ज की थी । अभि. सा. 5 द्वारा स्पष्ट रूप से यह कथन किया गया है कि उसने ही पुलिस थाने में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की थी और किसी अन्य व्यक्ति द्वारा शिकायत दर्ज कराने के बारे में उसे कोई जानकारी नहीं थी तथा उसे उसकी रिपोर्ट संलग्न न करने के कारण का भी पता नहीं है । उसने यह स्पष्ट किया कि रिपोर्ट दर्ज करने के पश्चात्

वह अपने घर लौट आई थी । उसके घर लौटने के आधे घंटे के पश्चात् पुलिस ने उसका कथन अभिलिखित किया था । यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि अभि. सा. 5 ने विनिर्दिष्ट रूप से यह कथन किया है कि अभि. सा. 1 गणेश प्रसाद ने रिपोर्ट दर्ज नहीं की थी । इस साक्षी द्वारा यह भी स्पष्ट किया गया कि अभियुक्तों में से किसी ने भी आहत पर लाठी से प्रहार नहीं किया था ।

12. इस प्रक्रम पर, डाक्टर के साक्ष्य पर दृष्टिपात करना अति सुसंगत है । अभि. सा. 7 डा. निलाए जैन के अनुसार, जिसने मृतक के शव की मरणोत्तर परीक्षा की थी, मृतक को निम्नलिखित क्षतियां पहुंची थी :–

> "1. चूचुक के निकट 2.0 × 1.5 × 3.0 सें. मी. का तिर्यक शामित घाव मौजूद ।
>
> 2. मध्य सहायक रेखा पर 10वीं, 11वीं, और 12वीं पसली पर लगभग 1.5 × 1.0 × 4.5 सें. मी. सामान्य आकार का तिर्यक शामित घाव ।
>
> 3. उदर पर कालक्रम रेखा पर 10वीं, 11वीं, और 12वीं पसली पर लगभग 3.0 × 2.5 × 6.0 (गहराई) का तिर्यक आकार का शामित घाव जो जांघ के ऊपर (ऊपरी ओर) पार्श्विक भाग पर है ।
>
> 4. दाएं वृक्कीय कोण पर लगभग 5.0 × 2.0 × 7.0 सें. मी. (गहराई) का एक तिर्यक शामित घाव ।
>
> 5. चूचुक के निकट एक लगभग 5.0 × 1.5 × 2.0 सें. मी. आकार का क्षैतिज शामित घाव पूरी तरफ स्पष्ट है ।"

डाक्टर ने अपनी यह राय व्यक्त की कि मृत्यु हृदय से अत्यधिक रक्त बहने के परिणामस्वरूप हो सकती है और मृत्यु मरणोत्तर परीक्षा के 18 घंटे के भीतर हुई हो सकती है । प्रतिपरीक्षा में डाक्टर से यह बात निकलकर आई कि मृत्यु केवल क्षति. सं. 1 से कारित हुई थी और अन्य क्षतियों से मृत्यु होने की कोई संभावना नहीं थी । डाक्टर की राय में, क्षति सं. 1 केवल किसी चाकू या गुप्ती से कारित की जा सकती थी न कि हाथ या लाठी द्वारा ।

13. हमने प्रमुख अभियोजन साक्षियों अर्थात् अभि. सा. 1 और 5 के साक्ष्य पर गंभीरता पूर्वक विचार किया है और यह स्पष्ट है कि तात्विक

पहलुओं पर उनके कथनों की अन्य साक्ष्य से संपुष्टि नहीं हो रही है । यह प्रतीत होता है कि निचले न्यायालयों ने अभि. सा. 1 और 5 के कथनों की सत्यता पर विचार किए बिना उनके साक्ष्य को लापरवाहीपूर्वक अत्यधिक महत्व दिया है । सर्वप्रथम, यदि अभि. सा. 5 के कथन को सत्य मान लिया जाए, तो प्रथम इत्तिला रिपोर्ट (उपाबंध पी. 1) की उत्पत्ति और असलियत निस्संदेह शंकास्पद है । यदि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट (प्रदर्श पी. 1) अभि. सा. 1 की शिकायत के आधार पर दर्ज की गई थी, जिसे इसके लेखक एम. जी. चौबे (अभि. सा. 17) के कथन द्वारा सम्यक् रूप से साबित नहीं किया गया है, तो अभि. सा. 5 के कथन पर विश्वास नहीं किया जा सकता है और प्रभावशील नहीं किया जा सकता है, क्योंकि उसने अपने साक्ष्य में स्पष्ट रूप से यह प्रकथन किया है कि उसने ही पुलिस में शिकायत दर्ज की थी और अभि. सा. 1 ने पुलिस में कोई रिपोर्ट दर्ज नहीं की थी । यदि अभि. सा. 1 के कथन पर विश्वास किया जाए, तो यह नहीं कहा जा सकता है कि वह घटना का प्रत्यक्षदर्शी साक्षी था, क्योंकि उसके अनुसार, घटना के समय वह मदद के लिए अन्य व्यक्तियों को बुलाने हेतु मंडप में गया था और घटनास्थल मंडप से दिखाई नहीं दे रहा था । यह तथ्य अभि. सा. 1 और 5 के एक अन्य घनिष्ठ नातेदार, अभि. सा. 4 अमित के साक्ष्य द्वारा भी साबित होता है । अभि. सा. 4 के अनुसार, जब वह और अभि. सा. 1 मंडप में मौजूद थे, तब संजय सोरले वहां आया और अचेत अवस्था में जाते हुए नीचे गिर गया । जब अभि. सा. 1 और 4 मंडप से बाहर देखने के लिए गए, तब तक अभियुक्त उस स्थान से चले गए थे । इस साक्षी का यह कथन है कि उसे कोई जानकारी नहीं है कि अभियुक्त किस दिशा में गए थे । अभि. सा. 5 कोई और नहीं अपितु अभि. सा. 1 की भतीजी है । उसके अनुसार, वह व्यक्तिगत रूप से मंडप में मौजूद थी और जब अभियुक्त मृतक को बाहर ले जा रहे थे तब वह अभियुक्तों के पीछे-पीछे गई थी । केवल इससे प्रत्यक्षदर्शी होने का तथ्य सिद्ध होता है किंतु महत्वपूर्ण बात यह है कि इस साक्षी ने अन्वेषक अधिकारी को इस तथ्य के बारे में नहीं बताया था कि वह मंडप से घटनास्थल तक मृतक के पीछे-पीछे गई थी । इस आशय का यह लोप प्रदर्श डी. 2 के रूप में चिन्हित है । इस बात को देखते हुए, अभि. सा. 1 का यह साक्ष्य भी कि उसे हमलावरों के नामों के बारे में अभि. सा. 5 के माध्यम से पता चला था, विश्वासोत्पादक नहीं है ।

14. इस प्रक्रम पर, **एस. गोविंदराजू** बनाम **कर्नाटक राज्य**[1] वाले

[1] (2013) 10 स्केल 454.

मामले में इस न्यायालय द्वारा निम्नलिखित शब्दों में की गई मताभिव्यक्तियों पर दृष्टिपात करना उपयोगी होगा :–

> "यह सुस्थिर विधिक प्रतिपादना है कि न्यायालय को साक्ष्य का मूल्यांकन करते समय इस बात को ध्यान में रखा जाना चाहिए कि क्या विरोधाभास/लोप इतने महत्वपूर्ण हैं कि विचारण तात्विक रूप से प्रभावित हो सकता है । तुच्छ बातों से संबंधित छुट-पुट विरोधाभासों, विसंगतियों, अतिरंजनाओं या सुधारों को, जिनसे अभियोजन के पक्षकथन का सारभाग प्रभावित नहीं होता है, साक्ष्य को समग्र रूप में नामंजूर करने का आधार नहीं बनाया जाना चाहिए । विचारण न्यायालय को संपूर्ण उपलब्ध साक्ष्य का परिशीलन करने के पश्चात् ही साक्षियों की विश्वसनीयता के बारे में राय बनानी चाहिए और अपील न्यायालय के लिए, प्रसामान्य अनुक्रम में, उनकी विश्वसनीयता के बारे में पुनर्विलोकन करना न्यायोचित नहीं होगा जब तक कि ऐसा करने के लिए उचित कारण न दिए जाएं । जहां लोप विरोधाभास की ऐसी कोटि में आता है/आते हैं जिनसे किसी साक्षी की सत्यता के संबंध में गंभीर संदेह पैदा होता है, और अन्य साक्षी भी साक्ष्य को स्वीकार्य बनाने के लिए न्यायालय के समक्ष तात्विक सुधार करते हैं, वहां ऐसे साक्ष्य का अवलंब लेना सुरक्षित नहीं होगा । प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के साक्ष्य में पाई गई कमियों की प्रकृति यदि छुट-पुट नहीं हैं, तो उनके साक्ष्य को अविश्वसनीय और अविश्वस्त मानने का आधार हो सकता है । ऐसी परिस्थितियों में, हो सकता है ऐसे साक्षियों का साक्ष्य विश्वासोत्पादक न हो और यदि उनका साक्ष्य अन्य उपलब्ध साक्ष्य या ऐसे कथन का जो पहले अभिलिखित किया गया है, का विरोधी और विरोधाभासी होना पाया जाता है तब ऐसे किसी मामले में यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है कि अभियोजन पक्ष ने अपने पक्षकथन को युक्तियुक्त संदेह के परे साबित किया है ।"

15. प्रस्तुत मामले को देखने से ही किसी संकोच के बिना यह कहा जा सकता है कि अभियोजन पक्ष अभिकथित अपराध को तर्कपूर्ण और विश्वसनीय साक्ष्य प्रस्तुत करके साबित करने में पूरी तरह से असफल रहा है । दूसरे शब्दों में, यह मामला प्रमुख अभियोजन साक्षियों के साक्ष्य में कई विरोधाभासों सहित दुर्बल और कमजोर आधार पर आधारित है । इसके अतिरिक्त, अधिकांश अभियोजन साक्षी पक्षद्रोही हो गए हैं और किसी स्वतंत्र साक्षी ने अभियोजन के पक्षकथन का समर्थन नहीं किया है ।

दिलचस्प बात यह है कि कोई शनाख्त परेड आयोजित नहीं की गई थी, हालांकि अभि. सा. 1 का यह कथन है कि वह अभियुक्तों को केवल उनके चेहरे से पहचान सकता है और आरंभ में अभियुक्तों के रूप में नामित केवल पांच व्यक्ति थे किंतु बाद में कुल 11 व्यक्तियों को आरोपित किया गया था और उनमें से अधिकांश को विचारण न्यायालय द्वारा पहले ही दोषमुक्त कर दिया गया है । अभिलेख पर की सामग्री से यह दर्शित होता है कि अभियुक्तों के कब्जे से एक लाठी भी बरामद हुई थी, किंतु यह दर्शित करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं है कि आहत पर हमला करने में लाठी किसने चलाई थी । अभि. सा. 5 के अनुसार, अभियुक्तों में से किसी ने भी आहत पर लाठी से हमला नहीं किया था ।

16. हमारी राय में, विचारण न्यायालय का निर्णय ऐसी धारणाओं और उपधारणों से भरा है, जिनके आधार पर विचारण न्यायालय ने अभियुक्तों की दोषसिद्धि और दंडादेश अधिनिर्णीत की है । विचारण न्यायालय ने यह भी उल्लेख किया है कि गणेश प्रसाद (अभि. सा. 1), अमित (अभि. सा. 4) और सावित्री बाई (अभि. सा. 5) के सिवाय किसी अन्य साक्षी ने अभियोजन के पक्षकथन का समर्थन नहीं किया है । स्पष्ट तौर पर, महत्वपूर्ण पहलुओं पर अभि. सा. 1 और 5 के कथनों की संपुष्टि नहीं होती है, विशिष्ट रूप से प्रथम इत्तिला रिपोर्ट की उत्पत्ति संदेहास्पद रही है, तो भी विचारण न्यायालय अभि. सा. 1 और 5 के साक्ष्यों से और स्वयं अपनी उपधारणाओं से अपने आप को आश्वस्त किया है ।

17. उच्च न्यायालय ने भी दुर्भाग्यवश विधि के स्थिर सिद्धांतों के अनुसार मामले पर विचार नहीं किया है । किसी अभियुक्त के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि अधिनिर्णीत करने से पूर्व न्यायालयों को यह तथ्य ध्यान में रखना चाहिए कि उन मुख्य अभियोजन साक्षियों के साक्ष्य पर संदेह करने की कोई गुंजाइश नहीं रहनी चाहिए जिनके साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि अधिनिर्णीत की जा रही है । साधारणतया, किसी दांडिक मामले में साक्ष्य का मूल्यांकन करते समय न्यायालय को यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि साक्ष्य की मात्रा नहीं, अपितु गुणवत्ता है, जो तात्विक होती है । न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह साक्षी की विश्वसनीयता और अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य पर विचार करे तथा विवेकपूर्ण रीति में उनका यह निर्धारण करे कि क्या ये विश्वासोत्पादक हैं या नहीं ताकि अभियुक्त को दोषसिद्ध करने से पूर्व इन्हें स्वीकार किया जा सके और इनके आधार पर कार्यवाही की जा सके ।

यहां **हरिजन थिरुपला और अन्य** बनाम **लोक अभियोजक, आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय, हैदराबाद**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा की गई मताभिव्यक्तियों पर दृष्टिपात करना उचित होगा :–

> "ऐसे मामलों में जहां न्यायालय को अभियुक्त की दोषिता के बारे में युक्तियुक्त संदेह उत्पन्न होता है, वहां ऐसे संदेह का फायदा अभियुक्त के पक्ष में जाना चाहिए । साथ-ही-साथ, न्यायालय को अभियोजन पक्ष के साक्ष्य को काल्पनिक आधारों या अनुमानों और अटकलबाजी के आधार पर इसे मिथ्या, अविश्वसनीय या अविश्वस्त मानकर नामंजूर नहीं करना चाहिए । अभियोजन के पक्षकथन को संपूर्ण साक्ष्य पर विचार करते हुए समग्र रूप में आंकना चाहिए ।
>
> साक्ष्य का मूल्यांकन करने में न्यायालय का दृष्टिकोण समेकित होना चाहिए न कि विकृत या एकीकृत । दूसरे शब्दों में, अभियुक्त की दोषिता या अन्यथा के बारे में निष्कर्ष पर पहुंचने में अभियोजन के पक्षकथन पर या अभियुक्त की निर्दोषिता पर पड़ने वाले साक्ष्य के संपूर्ण प्रभाव को ध्यान में रखा जाना चाहिए । अभियुक्त की दोषिता के बारे में निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए न्यायालय को उसके समक्ष प्रस्तुत किए गए साक्ष्य का मूल्यांकन, विश्लेषण और निर्धारण अधिसंभाव्यताओं, इसके अंतर्निहित महत्व और साक्षियों के विद्वेष के मानदंड के द्वारा किया जाना चाहिए ।
>
> यह भी कहना होगा कि अंततोगत्वा और अंततः प्रत्येक मामले में विनिश्चय हर एक मामले के तथ्यों पर निर्भर करता है ।"

18. प्रस्तुत मामले में, निचले न्यायालय अभि. सा. 1 और 5 के साक्ष्य में के विरोधाभासों और विकारों पर विचार करने में असफल रहे हैं । अभि. सा. 1 के साक्ष्य से स्पष्ट रूप से यह प्रकट होता है कि अभियुक्त-अपीलार्थी शंकर और सुरेश की अपराध में सहभागिता और निभाई गई भूमिका मृतक पर लात और घूसों से प्रहार करने तक सीमित थी, जबकि अन्य अभियुक्त गुड्डा और शिव मृतक पर क्रमशः चाकू और गुप्ती से हमला कर रहे थे । अभियोजन साक्षी के ऐसे कथन की संपुष्टि, जो कि अन्यथा अविश्वसनीय है, एक अन्य अभियोजन साक्षी के अन्य अविश्वसनीय साक्ष्य से नहीं की जा सकती है । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में भी यह उल्लेख है कि शंकर और सुरेश, जो इस अपील में अपीलार्थी हैं, ने विपदग्रस्त की

---

[1] (2002) 6 एस. सी. सी. 470.

लात और घूसों से पिटाई की थी और उनके द्वारा कोई आयुध लिए होने का उल्लेख नहीं किया गया है । जबकि, अभि. सा. 5 ने अलग ही यह कथन किया है कि अभियुक्त शंकर ने भी आहत पर चाकू से हमला किया था । इन साक्षियों के कथनों से, जो कि प्रमुख साक्षी हैं, इस अपील में अभियुक्तों द्वारा निभाई गई भूमिका के बारे में एक-दूसरे से संपुष्टि नहीं होती है । मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट और अभि. सा. 7 (डा. निलाए जैन) के साक्ष्य से आहत की लात, तमाचों और घूसों से की गई पिटाई के परिणामस्वरूप उसे कोई क्षति कारित होना प्रकट नहीं होता है, क्योंकि ऐसी क्षतियां दृष्टिगोचर नहीं हैं । अभियोजन पक्ष ने आहत पर हमला करने वाले बहुत सारे हमलावरों को अभियुक्त बनाया था किंतु साक्षी, हालांकि जिनके साक्ष्य विसंगतियों से भरे हैं, यह उल्लेख करने में समर्थ नहीं हो सके हैं कि इस अपील में अपीलार्थियों ने मृतक को कैसे क्षतियां कारित की थीं जिससे उसकी मृत्यु हो गई थी । ऐसे परिदृश्य में, अपीलार्थियों को दोषसिद्ध करना न्याय के हित में नहीं होगा क्योंकि दांडिक विचारण में सबूत का मानदंड युक्तियुक्त संदेह के परे सबूत होने का है और अभियोजन पक्ष इन मानदंडों के अनुसार अभियुक्तों की दोषिता को साबित नहीं कर सका है । निचले न्यायालयों ने अपनी स्वयं की धारणाओं और उपधारणों के आधार पर अभियुक्तों को दोषसिद्ध किया है । यद्यपि अभियोजन पक्ष के साक्ष्य में की प्रत्येक विसंगति और विरोधाभास अभियोजन के पक्षकथन के लिए घातक नहीं होता है, किंतु प्रस्तुत मामले में विरोधाभास मामले की तह तक जाते हैं और तात्विक हैं तथा ऐसे साक्ष्य के आधार पर अभियुक्तों को दोषसिद्ध करना उचित नहीं है ।

19. पूर्वगामी चर्चा को दृष्टिगत करते हुए, हम निचले न्यायालयों द्वारा अपीलार्थियों को अभिकथित अपराधों के लिए दोषसिद्ध करने के लिए दिए गए कारणों का समर्थन नहीं कर सकते हैं और हमारा यह सुविचारित मत है कि अभियोजन पक्ष अभियुक्तों की दोषिता को युक्तियुक्त संदेह के परे साबित करने में पूरी तरह से असफल रहा है । परिणामतः, हम उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए आक्षेपित निर्णय को अपास्त और इन अपीलों को मंजूर करते हैं ।

अपीलें मंजूर की गईं ।

जस.

निशान सिंह

बनाम

ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, क्षेत्रीय प्रबंधक और अन्य

27 अप्रैल, 2018

मुख्य न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा, न्यायमूर्ति ए. एम. खानविलकर और न्यायमूर्ति डी. वाई. चन्द्रचूड़

मोटर यान अधिनियम, 1988(1988 का 59) – धारा 166 और 118 सपठित रूल्स आफ दि रोड रेग्युलेशन्स, 1989, विनियम 23 – प्रतिकर – उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रीति में यान चलाना – यानों के बीच दूरी – किसी मोटर यान के चालक द्वारा उससे ठीक आगे चलने वाले मोटर यान के बीच पर्याप्त दूरी न बनाए रखने के कारण हुई टक्कर के संबंध में यह उपदर्शित करने वाला कोई साक्ष्य न होने पर कि वह दुर्घटना आगे चलने वाले यान के चालक द्वारा सड़क के बीचों-बीच अचानक ब्रेक लगाने के कारण घटी थी, आगे चलने वाले यान के चालक को उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रीति से यान चलाने का दोषी नहीं ठहराया जा सकता है ।

मोटर यान अधिनियम, 1988 – धारा 140 – त्रुटि के बिना दायित्व – प्रतिकर – ट्रक के चालक द्वारा अचानक ब्रेक लगाने के कारण उससे पीछे चलने वाली कार के दुर्घटनाग्रस्त होने के कारण एक व्यक्ति की मृत्यु – यद्यपि यह दुर्घटना कार के चालक द्वारा दोनों यानों के बीच पर्याप्त दूरी न बनाए रखने के कारण हुई थी तथापि, ट्रक का स्वामी और चालक, इस तथ्य को ध्यान में रखे बिना कि ट्रक को उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रीति से नहीं चलाया जा रहा था, धारा 140 के अधीन प्रतिकर का संदाय संयुक्ततः और पृथक्तः करने के लिए दायी होंगे ।

प्रस्तुत मामले में, एक मारुति कार की ट्रक के साथ, जो कि उसके आगे चल रहा था, दुर्घटना हो गई जिसके कारण कार में यात्रा करने वाले व्यक्तियों को गंभीर क्षतियां कारित हुईं और अपीलार्थी सं. 1 की पत्नी की मृत्यु हो गई । अपीलार्थियों के अनुसार, ट्रक चालक ने, जब ट्रक सड़क के बीचों-बीच था, अचानक ब्रेक लगाई जिससे वह दाईं ओर आ गया जिसके परिणामस्वरूप मारुति कार की ट्रक के साथ पीछे से टक्कर हो गई ।

इसके पश्चात्, भारतीय दंड संहिता की धारा 304क, 337, 338 और 427 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए धारा 279 के अधीन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत की गई । अपीलार्थियों ने यह प्राख्यान किया कि मृतक लाभप्रद रूप से नियोजित थी और डेयरी के कारबार से प्रति मास 10,000/- रुपए कमा रही थी । इन प्राख्यानों के आधार पर मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण/अपर जिला न्यायाधीश के समक्ष एक दावा याचिका फाइल की गई थी । अपीलार्थी सं. 1 ने अधिकरण के समक्ष अभिसाक्ष्य दिया । अपीलार्थियों ने मारुति कार के चालक की परीक्षा की । अपीलार्थियों ने पुलिस द्वारा प्रत्यर्थी सं. 3, उल्लंघनकारी ट्रक के चालक के विरुद्ध फाइल किए गए आरोप पत्र का भी अवलंब लिया । प्रत्यर्थियों ने दावा याचिका का विरोध किया । प्रत्यर्थियों के अनुसार, घटना मारुति कार के चालक की उपेक्षा के कारण घटित हुई और ट्रक के चालक की ओर से कोई उपेक्षा नहीं बरती गई थी । इसके अलावा, अपीलार्थी मारुति कार के स्वामी और चालक को पक्षकार बनाने में असफल रहे थे, जो कि दुर्घटना के लिए उत्तरदायी थी और इसलिए, अपीलार्थियों को कोई अनुतोष अनुदत्त नहीं किया जा सकता था । अधिकरण ने अभिलेख पर विद्यमान संपूर्ण साक्ष्य का विश्लेषण किया और इस प्रश्न के संबंध में कि ट्रक को उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रीति में चलाया जा रहा था अथवा नहीं, अपीलार्थियों के विरुद्ध उत्तर दिया । अधिकरण ने, इसके बजाय यह अभिनिर्धारित किया कि दुर्घटना मारुति कार के चालक द्वारा उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रूप में कार चलाने के कारण घटी थी । अतः, अधिकरण ने यह निष्कर्ष निकाला कि ट्रक का चालक और ट्रक का बीमाकर्ता यथा दावाकृत प्रतिकर संदत्त करने के लिए दायी नहीं हैं । अधिकरण ने योगदायी उपेक्षा के प्रश्न का उल्लेख किया किन्तु प्रस्तुत मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए और विशेषकर इस कारण कि मारुति कार के स्वामी और चालक को पक्षकार नहीं बनाया गया था, उसने यह अभिनिर्धारित किया कि अपीलार्थी किसी भी अनुतोष के हकदार नहीं हैं । अधिकरण ने मामले को समग्र दृष्टि से देखते हुए दावा याचिका खारिज कर दी । अपीलार्थियों ने उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्च न्यायालय ने अधिकरण द्वारा अभिलिखित इस निष्कर्ष को दोहराते हुए अपील संक्षिप्ततः खारिज कर दी कि साक्ष्य से स्पष्टतः यह उपदर्शित होता है कि स्वयं मारुति कार के चालक ने अपना यान चलाने में उपेक्षा बरती थी और वह एक ही दिशा में चलने वाले दो यानों के बीच पर्याप्त दूरी रखने में असफल रहा था । इसके अलावा, मारुति कार के चालक, स्वामी और संबंधित बीमा कंपनी को दावा याचिका में पक्षकार नहीं

बनाया गया था । अतः, उच्च न्यायालय ने प्रथम अपील में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया । अपीलार्थियों ने ऊपर उल्लिखित विनिश्चयों को विशेष इजाजत लेकर इस अपील में चुनौती दी है । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील भागतः मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – अधिकरण द्वारा इस प्रकार अभिलिखित निष्कर्ष को उच्च न्यायालय द्वारा यह मत व्यक्त करते हुए अभिपुष्ट कर दिया गया है कि साक्ष्य स्पष्ट रूप से इस तथ्य का सूचक है कि मारुति कार को उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रीति में चलाया जा रहा था, जो कि इस प्रकृति की दुर्घटना होने का कारण था और जिसके परिणामस्वरूप मारुति कार में के एक यात्री की मृत्यु हुई थी । मारुति कार को और कोई नहीं बल्कि अभि. सा.2 चला रहा था । उसने अपने साक्ष्य में यह स्वीकार किया है कि प्रश्नगत ट्रक लगभग एक किलोमाटर तक काफी समय तक मारुति कार से आगे चल रहा था और दुर्घटना के समय ट्रक और मारुति कार की दूरी केवल 10-15 फुट थी । उसने यह भी स्वीकार किया है कि विधि में यह आदिष्ट है कि एक ही दिशा में चलाए जाने वाले दो यानों के बीच पर्याप्त दूरी बनाए रखी जानी चाहिए । इस संबंध में भी कोई विवाद नहीं है कि उस सड़क की चौड़ाई, जिस पर दोनों यान चल रहे थे, लगभग केवल 14 फुट थी । यह अपरिमेय है कि ऐसी संकीर्ण सड़क पर प्रश्नगत ट्रक तेज़ गति से चल रहा होगा, जैसा कि अभिकथन किया गया है । हर हालत में मारुति कार से, जो ट्रक के पीछे चल रही थी, यह प्रत्याशित था कि वह सुरक्षित दूरी बनाए रखे, जैसा कि रूल्स आफ दि रोड रेग्युलेशन्स, 1989 के विनियम 23 द्वारा परिकल्पित है । विनियमों में या अन्यत्र कहीं भी "पर्याप्त दूरी" अभिव्यक्ति की परिभाषा नहीं दी गई है । पर्याप्त दूरी संबंधी सामान्य नियम यह है कि टक्कर होने से बचने के लिए और पीछे चलने वाले चालक को प्रतिक्रिया करने के लिए अनुज्ञात करने हेतु आदर्श स्थितियों में कम से कम दो से तीन सेकेंड अंतराल की सुरक्षित दूरी होनी चाहिए । ट्रक और मारुति कार के बीच 10-15 फुट की दूरी निश्चित रूप से सुरक्षित दूरी नहीं थी और इसके लिए मारुति कार के चालक को जिम्मेदारी लेनी चाहिए । इससे आवश्यक रूप से यह परिणाम निकलना चाहिए कि विचाराधीन विवाद्यक के संबंध में निष्कर्ष दावेदारों के विरुद्ध निकलना चाहिए । (पैरा 10)

यह उपदर्शित करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं था कि ट्रक के चालक ने सड़क के बीचों-बीच अचानक ब्रेक लगाई थी । इसके अलावा, अधिकरण द्वारा विवाद्यक सं. 1 के संबंध में अभिलिखित निष्कर्ष यह है कि दुर्घटना

के घटित होने के वास्तविक स्थान के संबंध में और सर्वेक्षण कराए जाने के बारे में कोई साक्ष्य नहीं है । इसलिए, विचाराधीन विवाद्यक का उत्तर अपीलार्थियों (दावेदारों) के विरुद्ध दिया गया था, अर्थात्, यह कि प्रश्नगत ट्रक को ट्रक चालक द्वारा उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रीति में नहीं चलाया जा रहा था और न ही वह ट्रक को सड़क के दाईं ओर से बीचों-बीच लाया था या अचानक ब्रेक लगाई थी, जो कि दुर्घटना का कारण बनी हो । चूंकि यह तथ्य संबंधी एक समवर्ती निष्कर्ष और एक संभावित दृष्टिकोण है, इसलिए इसमें हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है । (पैरा 11)

अगला प्रश्न यह है कि क्या अधिकरण को कम के कम ट्रक चालक की योगदायी उपेक्षा संबंधी प्रश्न का उत्तर अपीलार्थियों (दावेदारों) के पक्ष में देना चाहिए था । योगदायी उपेक्षा का प्रश्न तब उद्भूत होगा जब दोनों पक्षकार उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रीति में यान चलाने के कारण दुर्घटना में अंतर्वलित हों । ऐसे मामले में, जैसा कि प्रस्तुत मामला है, जब मारुति कार ट्रक के पीछे चल रही थी और ट्रक के चालक के ऊपर कोई दोष नहीं डाला जा सकता है तब यान को उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रीति में चलाने के कारण मारुति कार के चालक को दोषी माना जाना चाहिए । उच्च न्यायालय ने इस तथ्य का उचित रूप से उल्लेख किया कि मारुति कार के चालक और स्वामी तथा उस यान के बीमाकर्ता को दावा याचिका में पक्षकारों के रूप में आलिप्त नहीं किया गया था । अधिकरण ने भी इस तथ्य का उल्लेख किया कि समस्त अधिसंभाव्यताओं में मारुति कार के चालक और स्वामी को इसलिए पक्षकार नहीं बनाया गया था क्योंकि वे अपीलार्थियों के निकट संबंधी थे । ऐसी स्थिति में, योगदायी उपेक्षा संबंधी प्रश्न पर कार्यवाही नहीं की जा सकती है । (पैरा 12)

यद्यपि, जहां तक अधिनियम की धारा 166 के अधीन दावा याचिका का संबंध है, अपील असफल होती है क्योंकि अपीलार्थी प्रश्नगत ट्रक के चालक द्वारा उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रीति में यान चलाने संबंधी तथ्य को सिद्ध करने में असफल रहे हैं तथापि, अपीलार्थी इस अपील में अधिनियम की धारा 140 के अधीन अनुतोष की सीमित व्याप्ति तक सफल होने चाहिएं । ऊपर उल्लिखित कारणों से यह अपील भागतः मंजूर की जाती है । अपीलार्थियों को अधिनियम की धारा 140 के अधीन सीमित अनुतोष अनुदत्त किया जाता है । प्रत्यर्थी सं. 2 और प्रत्यर्थी सं. 3 को, उस दुर्घटना में हुई मृत्यु के कारण अधिनियम की धारा 140 के अधीन प्रतिकर मद्धे अपीलार्थियों को 50,000/- रुपए (केवल पचास हजार रुपए) की राशि का

दावा याचिका फाइल करने की तारीख से वसूली की तारीख तक 9 प्रतिशत की दर पर ब्याज सहित संदाय करने के लिए संयुक्ततः और पृथक्तः दायी ठहराया जाता है । (पैरा 14 और 15)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2010] (2010) 13 एस. सी. सी. 249 :
इंद्रा देवी और अन्य बनाम **बागड़ा राम और एक अन्य** ; 13

[2010] (2010) 8 एस. सी. सी. 620 :
ईश्वरप्पा उर्फ **महेश्वरप्पा और एक अन्य** बनाम
सी. एस. गुरूशंथप्पा और एक अन्य । 13

सिविल अपीली अधिकारिता : 2016 की सिविल अपील सं. 10145.

2015 के अपीली आदेश सं. 125 में उत्तराखंड उच्च न्यायालय की नैनीताल न्यायपीठ के तारीख 5 मार्च, 2015 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री विजय प्रकाश और सुश्री निधि

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री के. के. भट्ट और रंजन कुमार पांडेय

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति ए. एम. खानविलकर ने दिया ।

न्या. खानविलकर – दावेदारों द्वारा विशेष इजाजत लेकर फाइल की गई इस अपील में 2015 के आदेश सं. 125 से उद्भूत अपील में उत्तराखंड उच्च न्यायालय की नैनीताल न्यायपीठ के तारीख 5 मार्च, 2015 के उस निर्णय और आदेश को चुनौती दी गई है जिसके द्वारा अपील खारिज कर दी गई थी और 2012 की मोटर दुर्घटना दावा याचिका सं. 147 में मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण/अपर जिला न्यायाधीश-III रुद्रपुर, ऊधम सिंह नगर द्वारा पारित तारीख 10 दिसम्बर, 2014 के उस आदेश को कायम रखा था जिसके द्वारा दावा याचिका इस निष्कर्ष के आधार पर खारिज कर दी गई थी कि प्रश्नगत दुर्घटना ट्रक नं. यूपी 32जैड 2397 को उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रूप में चलाने के कारण नहीं घटी थी बल्कि मारुति कार नं. यूपी 02डी 5292 को उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रूप में चलाने के कारण घटी थी जिसके परिणामस्वरूप बलविन्दर कौर की मृत्यु हो गई थी, जो कि मंजीत सिंह द्वारा चलाई जा रही कार में बैठी हुई थी ।

2. संक्षिप्त रूप से, अपीलार्थी सं. 1 ने यह प्राख्यान किया कि जब वह अपनी पत्नी बलविन्दर कौर के साथ, जो कि अपीलार्थी सं. 2 से 4 की माता थी, ग्राम कुआंखेड़ा, जिला बिजनौर स्थित अपने वैवाहिक गृह से अपने चचेरे भाई मंजीत सिंह और बिट्टू और उसके पुत्र करनजीत सिंह के साथ तारीख 28 नवम्बर, 2010 को एक मारुति कार नं. यूपी 02डी 5292 में, जिसे कश्मीर सिंह का पुत्र मंजीत सिंह चला रहा था, बिन्दुखेड़ा गांव में अपने घर वापस लौट रहा था तब उक्त कार दुर्घटनाग्रस्त हो गई जिसके कारण उसमें यात्रा करने वाले व्यक्तियों को गंभीर क्षतियां कारित हुईं और बलविन्दर कौर की मृत्यु हो गई । मारुति कार ट्रक नं. यूपी 32जैड 2397 के साथ, जो कि उसके आगे चल रहा था, टकरा गई । अपीलार्थियों के अनुसार, ट्रक चालक ने, जब ट्रक सड़क के बीचों-बीच था, अचानक ब्रेक लगाई जिससे वह दाईं ओर आ गया जिसके परिणामस्वरूप मारुति कार की ट्रक के साथ पीछे से टक्कर हो गई । बलविन्दर कौर की उसी दिन, अर्थात्, 28 नवम्बर, 2010 को, जब उसका सरकारी अस्पताल, काशीपुर में उपचार चल रहा था, उसे पहुंची क्षतियों के परिणामस्वरूप अंततः मृत्यु हो गई । इसके पश्चात्, तारीख 4 दिसम्बर, 2010 को पुलिस थाना कुंडा, जिला ऊधम सिंह नगर में भारतीय दंड संहिता की धारा 304क, 337, 338 और 427 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए धारा 279 के अधीन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 93/10 रजिस्ट्रीकृत की गई । अपीलार्थियों ने यह प्राख्यान किया कि बलविन्दर कौर लाभप्रद रूप से नियोजित थी और डेयरी के कारबार से प्रति मास 10,000/- रुपए (केवल दस हजार रुपए) कमा रही थी ।

3. इन प्राख्यानों के आधार पर मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण/अपर जिला न्यायाधीश-III, रुद्रपुर, ऊधम सिंह नगर के समक्ष एक दावा याचिका फाइल की गई थी जो कि 2012 का मोटर दुर्घटना दावा सं. 147 है । अपीलार्थी सं. 1 ने, जो कि अपनी पत्नी के साथ कार में यात्रा कर रहा था, अधिकरण के समक्ष अभिसाक्ष्य दिया । अपीलार्थियों ने मंजीत सिंह की भी परीक्षा की, जो कि सुसंगत समय पर मारुति कार नं. यूपी 02डी 5292 चला रहा था । अपीलार्थियों ने पुलिस द्वारा प्रत्यर्थी सं. 3 (पारसनाथ), उल्लंघनकारी ट्रक के चालक के विरुद्ध फाइल किए गए आरोप पत्र का भी अवलंब लिया ।

4. प्रत्यर्थियों ने दावा याचिका का विरोध किया । प्रत्यर्थियों के अनुसार, घटना मारुति कार के चालक की उपेक्षा के कारण घटित हुई और ट्रक के चालक की ओर से कोई उपेक्षा नहीं बरती गई थी । प्रत्यर्थियों

द्वारा यह प्राख्यान किया गया था कि ट्रक के चालक के पास एक विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति थी । इसके अलावा, अपीलार्थी मारुति कार के स्वामी और चालक को पक्षकार बनाने में असफल रहे थे, जो कि दुर्घटना के लिए उत्तरदायी थी और इसलिए, अपीलार्थियों को कोई अनुतोष अनुदत्त नहीं किया जा सकता था ।

5. अधिकरण ने अभिलेख पर विद्यमान संपूर्ण साक्ष्य का विश्लेषण किया और इस प्रश्न के संबंध में कि ट्रक को उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रीति में चलाया जा रहा था अथवा नहीं, अपीलार्थियों के विरुद्ध उत्तर दिया । अधिकरण ने, इसके बजाय यह अभिनिर्धारित किया कि दुर्घटना मारुति कार के चालक द्वारा उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रूप में कार चलाने के कारण घटी थी । अतः, अधिकरण ने यह निष्कर्ष निकाला कि ट्रक का चालक और ट्रक का बीमाकर्ता यथा-दावाकृत प्रतिकर संदत्त करने के लिए दायी नहीं हैं । अधिकरण ने योगदायी उपेक्षा के प्रश्न का उल्लेख किया किन्तु प्रस्तुत मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए और विशेषकर इस कारण कि मारुति कार के स्वामी और चालक को पक्षकार नहीं बनाया गया था, उसने यह अभिनिर्धारित किया कि अपीलार्थी किसी भी अनुतोष के हकदार नहीं हैं । अधिकरण ने यह उल्लेख भी किया कि मारुति कार का क्रय मंजीत सिंह द्वारा दुर्घटना से लगभग एक-डेढ़ वर्ष पूर्व किया गया था किन्तु उसे उसके नाम में अंतरित नहीं कराया गया था और न ही वह बीमाकृत थी । अधिकरण ने मामले को समग्र दृष्टि से देखते हुए तारीख 10 दिसम्बर, 2014 के निर्णय द्वारा दावा याचिका खारिज कर दी ।

6. अपीलार्थियों ने उत्तराखंड उच्च न्यायालय की नैनीताल न्यायपीठ के समक्ष अपील फाइल की । उच्च न्यायालय ने अधिकरण द्वारा अभिलिखित इस निष्कर्ष को दौहराते हुए अपील संक्षिप्ततः खारिज कर दी कि साक्ष्य से स्पष्टतः यह उपदर्शित होता है कि स्वयं मारुति कार के चालक ने अपना यान चलाने में उपेक्षा बरती थी और वह एक ही दिशा में चलने वाले दो यानों के बीच पर्याप्त दूरी रखने में असफल रहा था । इसके अलावा, मारुति कार के चालक, स्वामी और संबंधित बीमा कंपनी को दावा याचिका में पक्षकार नहीं बनाया गया था । अतः, उच्च न्यायालय ने प्रथम अपील में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया ।

7. अपीलार्थियों ने ऊपर उल्लिखित विनिश्चयों को इस अपील में चुनौती दी है । अपीलार्थियों के अनुसार, अधिकरण द्वारा अभिलिखित और उच्च न्यायालय द्वारा पुष्ट किया गया यह निष्कर्ष मान्य नहीं है कि मारुति

कार के चालक ने उसी दिशा में मारुति कार के आगे चलने वाले ट्रक से सुरक्षित दूरी नहीं बनाए रखी थी । अपीलार्थियों ने अधिकरण द्वारा अभिलिखित और उच्च न्यायालय द्वारा पुष्ट किए गए इस निष्कर्ष को भी चुनौती दी है कि मारुति कार को उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रीति में चलाया जा रहा था । इस बात पर जोर दिया गया है कि इस तथ्य से कि मारुति कार मंजीत सिंह के नाम में रजिस्ट्रीकृत नहीं थी या यह कि मारुति कार से संबंधित दस्तावेज़ और मारुति कार के चालक की विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति को अभिलेख पर नहीं लाया गया था, ट्रक चालक की योगदायी उपेक्षा के कारण अपीलार्थियों को प्रतिकर प्राप्त करने से वंचित नहीं किया जा सकता है । इसके अलावा, अधिकरण ने योगदायी उपेक्षा के मुद्दे के संबंध में इस निमित्त कोई विवाद्यक विरचित किए बिना अपीलार्थियों के विरुद्ध निष्कर्ष अभिलिखित करके प्रत्यक्ष त्रुटि कारित की है । इस बात पर बल दिया गया है कि ट्रक चालक को इस आधार पर मुक्त करने के लिए ट्रक को उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रूप में नहीं चलाया जा रहा था, अधिकरण द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष अनुचित और विधि की दृष्टि से अमान्य है । इसके अतिरिक्त, अधिकरण ने पुलिस द्वारा प्रत्यर्थी सं. 3, ट्रक चालक के विरुद्ध सम्यक् अन्वेषण के पश्चात् फाइल किए गए आरोपपत्र की प्रभावकारिता को पूर्णतः अल्पीकृत कर दिया । अपीलार्थियों ने इस प्राख्यान के आधार पर कि मृत बलविन्दर कौर प्रति मास लगभग 10,000/- रुपए (केवल दस हजार रुपए) कमा रही थी और उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके कुटुम्ब को गंभीर परेशानी का सामना करना पड़ रहा था, प्रतिकर से संबंधित अपने दावे को भी दोहराया । अपीलार्थियों के अनुसार, अधिकरण तथा उच्च न्यायालय ने इस मामले में अति तकनीकी रीति में कार्यवाही की थी और साक्ष्य का मूल्यांकन अधिसंभाव्यताओं की प्रबलता के आधार पर नहीं किया था ।

8. दूसरी ओर, प्रत्यर्थियों ने अधिकरण द्वारा लेखबद्ध इस निष्कर्ष का समर्थन किया है कि दुर्घटना ट्रक को उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रूप में चलाने के कारण नहीं घटी थी बल्कि वह मारुति कार के चालक द्वारा उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रूप में कार चलाने के लिए घटी थी । प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउन्सेल ने यह दलील दी कि उस निष्कर्ष के आधार पर प्रत्यर्थियों पर कोई दायित्व नहीं डाला जा सकता है । उसने यह दलील दी कि अधिकरण द्वारा अभिलिखित और उच्च न्यायालय द्वारा पुष्ट किए गए साक्ष्य के विश्लेषण में कोई हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है । प्रत्यर्थियों ने दावा याचिका को खारिज करने के लिए अधिकरण द्वारा

अभिलिखित और उच्च न्यायालय द्वारा अभिपुष्ट निष्कर्षों का समर्थन किया है ।

9. हमने अपीलार्थियों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउन्सेल श्री विजय प्रकाश और प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउन्सेल श्री के. के. भट्ट को सुना ।

10. विवादास्पद प्रश्न यह है कि क्या अधिकरण ने विवाद्यक सं. 1 का उत्तर अपीलार्थियों के विरुद्ध और प्रत्यर्थियों के पक्ष में देकर कोई त्रुटि कारित की है । अधिकरण ने, उक्त विवाद्यक सं. 1 का उत्तर देते समय मौखिक और दस्तावेज़ी दोनों प्रकार के साक्ष्य का, जिसके अंतर्गत अपीलार्थियों द्वारा फाइल किया गया आरोप पत्र भी है, विश्लेषण किया और निम्न प्रकार मत व्यक्त किया :–

> "20. स्थल रेखांक दस्तावेज़ सं. 6सी/6, जो कि अभिलेख पर फाइल किया गया है, प्रश्नगत सड़क की चौड़ाई 14 फुट प्रतीत होती है और सड़क के दोनों ओर 7 कदम का कच्चा लेख प्रतीत होता है । यह तथ्य विलक्षण है कि उक्त दुर्घटना आमने-सामने होने वाली दुर्घटना नहीं है बल्कि यह दुर्घटना मारुति कार की प्रश्नगत कार के चालक द्वारा प्रश्नगत ट्रक के पिछले भाग से हुई टक्कर के परिणामस्वरूप घटी और इसी तथ्य का याचियों के साक्ष्य में भी उल्लेख किया गया है । अभि. सा. 2 मंजीत सिंह, प्रश्नगत कार के चालक ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह कथन किया है कि वह कार को ट्रक के पीछे लगभग 10 से 15 फुट की दूरी पर चला रहा था । पक्की सड़क की चौड़ाई 14 फुट होने के बावजूद, प्रश्नगत कार के चालक ने अपने यान की ट्रक से दूरी 10-15 फुट ही रखी, जो कि यातायात नियमों के अनुसार प्रतीत नहीं होती है । उसे प्रत्येक परिस्थिति से बचने के लिए समुचित दूरी बनाए रखते हुए यान चलाना चाहिए था किन्तु उसने अभि. सा. 2 के रूप में अपनी प्रतिपरीक्षा में यह स्वीकार किया है कि वह यह जानता है कि 'उसे भारी यान से समुचित दूरी बनाए रखनी चाहिए' । इन परिस्थितियों में, उस यान को जो कि भारी यान के पीछे चल रहा है, समुचित दूरी बनाए रखनी चाहिए और यदि समुचित दूरी नहीं रखी जाती है तो प्रश्नगत दुर्घटना घटित होने के संबंध में संपूर्ण उपेक्षा का अवधारण पीछे चलने वाले यान के आधार पर किया जाएगा । इसके अतिरिक्त, घटनास्थल पर प्रश्नगत ट्रक को अभिगृहीत करने और यानों को घटनास्थल से

पुलिस अभिरक्षा में लिए जाने और उनका तकनीकी सर्वेक्षण कराए जाने के संबंध में घटनास्थल पर कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है ।

21. याचिका में उल्लिखित तथ्यों और अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 के साक्ष्य द्वारा यह विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता है कि प्रश्नगत दुर्घटना में प्रश्नगत ट्रक के चालक की ओर से उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रूप में यान चलाया जा रहा था और इस प्रयोजनार्थ केवल उक्त दुर्घटना के संबंध में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत कराने और प्रश्नगत ट्रक के चालक के विरुद्ध आरोप पत्र प्रस्तुत करने से प्रश्नगत ट्रक के चालक को उक्त दुर्घटना के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता है जबकि अभिलेख पर उपलब्ध याची के साक्ष्य से यह तथ्य सामने आया है कि दुर्घटना इसलिए घटी क्योंकि प्रश्नगत कार का चालक प्रश्नगत कार को यातायात नियमों के अनुसार नहीं चला रहा था, अर्थात्, दुर्घटना इसलिए घटी क्योंकि यान को ट्रक से समुचित दूरी बनाए रखते हुए नहीं चलाया जा रहा था और इससे स्पष्ट रूप से यह प्रतीत होता है कि कार की गति तेज़ रही होगी जिसके कारण प्रश्नगत कार अनियंत्रित होकर प्रश्नगत ट्रक के पिछले भाग से टकरा गई और उक्त दुर्घटना घटी । इन परिस्थितियों में, प्रश्नगत दुर्घटना के संबंध में ट्रक नं. यूपी 32जैड 2397 के चालक की ओर से कोई उतावलापन और उपेक्षा नहीं बरती गई थी किन्तु इसका अवधारण मारुति कार नं. यूपी 02डी 5292 के चालक मंजीत सिंह की भूमिका के आधार पर किया जाना है ।

22. उपर्युक्त निर्वचन के आधार पर यह प्रतीत होता है कि उक्त दुर्घटना पुलिस थाना कुंडा, जिला ऊधम सिंह नगर के क्षेत्र के अंतर्गत ग्राम कुंडा काशीपुर-जेशपुर मार्ग पर 28 नवम्बर, 2000 को लगभग 6.45 अपराह्न ट्रक नं. यूपी 32जैड 2397 के चालक द्वारा ट्रक को उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रूप में चलाने के कारण और अचानक ब्रेक लगाने के कारण नहीं घटी थी बल्कि यह मंजीत सिंह, चालक द्वारा प्रश्नगत कार नं. यूपी 02डी 5292 को उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रीति में चलाने के परिणामस्वरूप घटी थी जिसमें बलविन्दर कौर को, जो कि कार में बैठी हुई थी, गंभीर क्षतियां कारित हुईं और गंभीर क्षतियों के कारण उसके उपचार के दौरान उसकी मृत्यु हुई थी ।"

अधिकरण द्वारा इस प्रकार अभिलिखित निष्कर्ष को उच्च न्यायालय द्वारा

यह मत व्यक्त करते हुए अभिपुष्ट कर दिया गया है कि साक्ष्य स्पष्ट रूप से इस तथ्य का सूचक है कि मारुति कार को उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रीति में चलाया जा रहा था, जो कि इस प्रकृति की दुर्घटना होने का कारण था और जिसके परिणामस्वरूप मारुति कार में के एक यात्री की मृत्यु हुई थी । मारुति कार को और कोई नहीं बल्कि अभि.सा.2 मंजीत सिंह चला रहा था । उसने अपने साक्ष्य में यह स्वीकार किया है कि प्रश्नगत ट्रक लगभग एक किलोमीटर तक काफी समय तक मारुति कार से आगे चल रहा था और दुर्घटना के समय ट्रक और मारुति कार की दूरी केवल 10-15 फुट थी । उसने यह भी स्वीकार किया है कि विधि में यह आदिष्ट है कि एक ही दिशा में चलाए जाने वाले दो यानों के बीच पर्याप्त दूरी बनाए रखी जानी चाहिए । इस संबंध में भी कोई विवाद नहीं है कि उस सड़क की चौड़ाई, जिस पर दोनों यान चल रहे थे, लगभग केवल 14 फुट थी । यह अपरिमेय है कि ऐसी संकीर्ण सड़क पर प्रश्नगत ट्रक तेज़ गति से चल रहा होगा, जैसा कि अभिकथन किया गया है । हर हालत में मारुति कार से, जो ट्रक के पीछे चल रही थी, यह प्रत्याशित था कि वह सुरक्षित दूरी बनाए रखे, जैसा कि रूल्स आफ दि रोड रेग्युलेशन्स, 1989 के विनियम 23 द्वारा परिकल्पित है, जो कि निम्नलिखित रूप में है :–

> "23. आगे चलने वाले यानों से दूरी – ऐसे किसी मोटर यान का चालक, जो किसी अन्य यान के पीछे चल रहा है, ऐसे अन्य यान से पर्याप्त दूरी बनाए रखेगा जिससे कि यदि आगे चलने वाले यान को अचानक यान धीरे करना या रोकना पड़े तो टक्कर होने से बचा जा सके ।"

विनियमों में या अन्यत्र कहीं भी "पर्याप्त दूरी" अभिव्यक्ति की परिभाषा नहीं दी गई है । पर्याप्त दूरी संबंधी सामान्य नियम यह है कि टक्कर होने से बचने के लिए और पीछे चलने वाले चालक को प्रतिक्रिया करने के लिए अनुज्ञात करने हेतु आदर्श स्थितियों में कम से कम दो से तीन सेकेंड अंतराल की सुरक्षित दूरी होनी चाहिए । ट्रक और मारुति कार के बीच 10-15 फुट की दूरी निश्चित रूप से सुरक्षित दूरी नहीं थी और इसके लिए मारुति कार के चालक को जिम्मेदारी लेनी चाहिए । इससे आवश्यक रूप से यह परिणाम निकलना चाहिए कि विचाराधीन विवाद्यक के संबंध में निष्कर्ष दावेदारों के विरुद्ध निकलना चाहिए ।

11. अधिकरण ने यह उल्लेख भी किया कि अभिलेख पर यह

उपदर्शित करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं था कि ट्रक के चालक ने सड़क के बीचों-बीच अचानक ब्रेक लगाई थी । इसके अलावा, अधिकरण द्वारा विवाद्यक सं. 1 के संबंध में अभिलिखित निष्कर्ष यह है कि दुर्घटना के घटित होने के वास्तविक स्थान के संबंध में और सर्वेक्षण कराए जाने के बारे में कोई साक्ष्य नहीं है । इसलिए, विचाराधीन विवाद्यक का उत्तर अपीलार्थियों (दावेदारों) के विरुद्ध दिया गया था, अर्थात्, यह कि प्रश्नगत ट्रक को ट्रक चालक द्वारा उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रीति में नहीं चलाया जा रहा था और न ही वह ट्रक को सड़क के दाईं ओर से बीचों-बीच लाया था या अचानक ब्रेक लगाई थी, जो कि दुर्घटना का कारण बनी हो । चूंकि यह तथ्य संबंधी एक समवर्ती निष्कर्ष और एक संभावित दृष्टिकोण है, इसलिए इसमें हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है ।

12. अगला प्रश्न यह है कि क्या अधिकरण को कम के कम ट्रक चालक की योगदायी उपेक्षा संबंधी प्रश्न का उत्तर अपीलार्थियों (दावेदारों) के पक्ष में देना चाहिए था । योगदायी उपेक्षा का प्रश्न तब उद्भूत होगा जब दोनों पक्षकार उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रीति में यान चलाने के कारण दुर्घटना में अंतर्वलित हों । ऐसे मामले में, जैसा कि प्रस्तुत मामला है, जब मारुति कार ट्रक के पीछे चल रही थी और ट्रक के चालक के ऊपर कोई दोष नहीं डाला जा सकता है तब यान को उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रीति में चलाने के कारण मारुति कार के चालक को दोषी माना जाना चाहिए । उच्च न्यायालय ने इस तथ्य का उचित रूप से उल्लेख किया कि मारुति कार के चालक और स्वामी तथा उस यान के बीमाकर्ता को दावा याचिका में पक्षकारों के रूप में आलिप्त नहीं किया गया था । अधिकरण ने भी इस तथ्य का उल्लेख किया कि समस्त अधिसंभाव्यताओं में मारुति कार के चालक और स्वामी को इसलिए पक्षकार नहीं बनाया गया था क्योंकि वे अपीलार्थियों के निकट संबंधी थे । ऐसी स्थिति में, योगदायी उपेक्षा संबंधी प्रश्न पर कार्यवाही नहीं की जा सकती है ।

13. तथापि, ऐसी दशा में भी, अधिकरण को मोटर यान अधिनियम, 1988 (जिसे संक्षेप में "अधिनियम" कहा गया है) की धारा 140 का अवलंब लेने की सलाह दी जा सकती थी, जिसमें दुर्घटना में अंतर्वलित यान (प्रश्नगत ट्रक) के स्वामी के दायित्व के लिए उपबंध किया गया है । यह एक सुस्थापित स्थिति है कि यान के स्वामी पर अधिनियम की धारा 140 के अधीन दायित्व डालने के लिए इस तथ्य पर ध्यान देना आवश्यक नहीं है कि प्रश्नगत यान उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रीति में चलाया जा रहा

था । हम **इंद्रा देवी और अन्य** बनाम **बागड़ राम और एक अन्य**[1] तथा **ईश्वरप्पा** उर्फ **महेश्वरप्पा और एक अन्य** बनाम **सी. एस. गुरूशंथप्पा और एक अन्य**[2] वाले विनिश्चयों के प्रति लाभप्रद रूप में निर्देश कर सकते हैं, जो कि प्रत्यक्षतः इस मुद्दे के संबंध में हैं ।

14. तद्नुसार, यद्यपि, जहां तक अधिनियम की धारा 166 के अधीन दावा याचिका का संबंध है, अपील असफल होती है क्योंकि अपीलार्थी प्रश्नगत ट्रक के चालक द्वारा उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रीति में यान चलाने संबंधी तथ्य को सिद्ध करने में असफल रहे हैं तथापि, अपीलार्थी इस अपील में अधिनियम की धारा 140 के अधीन अनुतोष की सीमित व्याप्ति तक सफल होने चाहिएं । हमें उस आधार पर अनुतोष को गठित करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है ।

15. ऊपर उल्लिखित कारणों से यह अपील भागतः मंजूर की जाती है । अपीलार्थियों को अधिनियम की धारा 140 के अधीन सीमित अनुतोष अनुदत्त किया जाता है । प्रत्यर्थी सं. 2 और प्रत्यर्थी सं. 3 को, उस दुर्घटना में, जो 28 नवम्बर, 2010 को घटी थी, बलविन्दर कौर की मृत्यु के कारण अधिनियम की धारा 140 के अधीन प्रतिकर मद्धे अपीलार्थियों को 50,000/- रुपए (केवल पचास हजार रुपए) की राशि का दावा याचिका फाइल करने की तारीख से वसूली की तारीख तक 9 प्रतिशत की दर पर ब्याज सहित संदाय करने के लिए संयुक्ततः और पृथक्तः दायी ठहराया जाता है ।

16. उपर्युक्त निबंधनानुसार, अपील भागतः मंजूर की जाती है और खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील भागतः मंजूर की गई ।

ग्रो.

---

[1] (2010) 13 एस. सी. सी. 249.

[2] (2010) 8 एस. सी. सी. 620.

ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड

बनाम

मैसर्स नरभेराम पावर एंड स्टील प्राइवेट लिमिटेड

2 मई, 2018

मुख्य न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा, न्यायमूर्ति ए. एम. खानविलकर और न्यायमूर्ति डी. वाई. चन्द्रचूड़

माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996(1996 का 26) – धारा 11(6) – मध्यस्थ की नियुक्ति – जहां बीमाकर्ता कंपनी द्वारा निराकरण पत्र के माध्यम से कारण बताते हुए बीमा संबंधी दावे को नामंजूर कर दिया जाता है वहां इसका अभिप्राय बीमाकर्ता द्वारा दायित्व से पूर्णतः प्रत्याख्यान करना न कि दावे की धनराशि को विवादित करना होगा, इसलिए, ऐसा विवाद माध्यस्थम् के लिए निर्देशित नहीं किया जा सकेगा और शिकायतों के शमन के लिए सिविल वाद फाइल करना ही समुचित उपचार होगा ।

प्रस्तुत मामले में, प्रत्यर्थी ने ओडिशा राज्य में अपने एक कारखाने की बाबत एक फायर इंडस्ट्रियल ऑल रिस्क पालिसी ली थी । अक्तूबर, 2013 में, "फाएलिन" नामक एक चक्रवाती तूफान आया जिससे ओडिशा राज्य के अधिकांश भाग प्रभावित हुए । उक्त चक्रवाती तूफान के क़ारण प्रत्यर्थी को नुकसान हुआ जिसका प्राक्कलन उसने 3,93,36,224.00 रुपए किया । अपीलार्थी-बीमाकर्ता को एक सूचना दी गई थी और उसने एक कंपनी को सर्वेक्षक के रूप में नियुक्त किया, जिसने कारखाना परिसर का दौरा किया । प्रत्यर्थी और बीमाकर्ता के बीच काफी पत्र-व्यवहार हुआ । इसके पश्चात् प्रत्यर्थी ने सर्वेक्षक की रिपोर्ट पर टिप्पणी की और अपीलार्थी से उसके दावे का परिनिर्धारण करने का अनुरोध किया । चूंकि अंततोगत्वा, दावे का परिनिर्धारण नहीं किया गया था, इसलिए प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी को यह सूचित करते हुए एक संसूचना भेजी कि उसने माध्यस्थम् करार का अवलंब लिया है और उससे मध्यस्थ के नाम के बारे में सहमति देने का अनुरोध किया, जिसे उसने नामनिर्दिष्ट किया था । अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी द्वारा किए गए दावे का निराकरण करते हुए उक्त पत्र का उत्तर दिया और पक्षकारों के बीच उत्पन्न विवादों को माध्यस्थम् को निर्देशित करने से इनकार कर दिया । चूंकि बीमाकर्ता ने प्रत्यर्थी द्वारा किए गए अनुरोध को

स्वीकार करने से इनकार कर दिया था इसलिए उसने माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (जिसे संक्षेप में "1996 का अधिनियम" कहा गया है) की धारा 11(6) के अधीन एक मध्यस्थ की नियुक्ति करने के लिए एक आवेदन फाइल किया जिससे कि वह प्रत्यर्थी द्वारा नामनिर्दिष्ट मध्यस्थ के साथ मिलकर पक्षकारों के बीच उद्भूत हुए विवादों और मतभेदों का न्यायनिर्णयन करने के लिए एक पीठासीन मध्यस्थ को नियुक्त करने की कार्यवाही कर सके । बीमाकर्ता द्वारा उक्त आवेदन का विरोध किया गया था और उच्च न्यायालय ने, पालिसी के खंड 13 में प्रयुक्त भाषा और दावेदार के दावे का निराकरण करते समय दिए गए कारणों पर विचार करते हुए, उच्च न्यायालय के एक सेवानिवृत्त न्यायाधीश को मध्यस्थ नियुक्त कर दिया । उक्त आदेश को इस अपील में विशेष इजाजत लेकर चुनौती दी गई है । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – जब माध्यस्थम् खंड का सावधानीपूर्वक पठन किया जाता है तो इससे पूर्णतः सुस्पष्ट हो जाता है कि जब बीमाकर्ता एक बार पालिसी के अधीन या उसकी बाबत दायित्व के संबंध में विवाद करता है तब मध्यस्थ को कोई भी निर्देश नहीं किया जा सकता है । यह खंड के दूसरे भाग में अंतर्विष्ट है । खंड के तीसरे भाग में यह अनुबंधित है कि पालिसी के संबंध में कार्रवाई या वाद चलाने के किसी अधिकार का अवलंब लेने से पूर्व हानि या नुकसान की रकम के संबंध में मध्यस्थ/मध्यस्थों का पूर्व पंचाट इसकी पूर्व-शर्त है । उच्च न्यायालय ने, जैसा कि आक्षेपित आदेश से दर्शित होगा, दूसरे भाग पर जोर दिया है और उस आधार पर यह राय व्यक्त की है कि दूसरे भाग और तीसरे भाग में सामंजस्य नहीं है और वास्तव में यह एक विसंगत टिप्पण प्रतीत होता है क्योंकि स्कीम को दो भागों में विभाजित नहीं किया जा सकता है, जिसमें से एक के संबंध में विनिश्चय माध्यस्थम् द्वारा और दूसरे के संबंध में विनिश्चय वाद में किया जाए । (पैरा 8)

इस बात पर विशेष जोर देने की आवश्यकता नहीं है कि माध्यस्थम् खंड का कठोरतापूर्वक निर्वचन करना आवश्यक है । खंड में की किसी अभिव्यक्ति से माध्यस्थम् का आशय सुस्पष्ट रूप से अभिव्यक्त होना चाहिए । इसमें ऐसी धारणा अधिकथित की जा सकती है जिन स्थितियों में माध्यस्थम् खंड को प्रभावी नहीं किया जा सकता है । यदि किसी खंड में यह अनुबंधित है कि कतिपय परिस्थितियों के अधीन कोई माध्यस्थम् नहीं हो सकता है और वे प्रमाण्य रूप से स्पष्ट हैं तो मध्यस्थ की नियुक्ति से संबंधित संविवाद को छोड़ देना होगा । (पैरा 24)

वर्तमान मामले में, खंड 13 में स्पष्ट रूप से यह आधारतत्व अधिकथित किया गया है कि यदि बीमाकर्ता ने दायित्व को विवादित किया है या उसे स्वीकार नहीं किया है तो कोई मतभेद या विवाद माध्यस्थम् के लिए निर्देशित नहीं किया जाएगा । मामले में विशेष बल इस बात पर दिया गया है कि क्या बीमाकर्ता ने पालिसी के अधीन या उसकी बाबत अपने दायित्व को विवादित किया है या उसे स्वीकार नहीं किया है । बीमाकर्ता द्वारा पत्र के माध्यम् से प्रत्यर्थी के दावे को नामंजूर करने के लिए कारण बताए गए थे । प्रत्यर्थी की ओर से यह निवेदन किया गया है कि उपर्युक्त संसूचना पालिसी के अधीन या उसकी बाबत दायित्व से प्रत्याख्यान करने की कोटि में नहीं आती है । संसूचना के पठन मात्र से विवाद उचित रूप से खंड 13 के भाग 2 के अंतर्गत आता है । खंड के उक्त भाग में स्पष्ट रूप से यह सूचित होता है कि पक्षकार इस संबंध में सहमत हो गए हैं और उन्होंने यह समझ लिया है कि यदि कंपनी ने दायित्व को विवादित किया है या उसे स्वीकार नहीं किया है तो कोई मतभेद या विवाद माध्यस्थम् को निर्देशित नहीं किया जा सकेगा । उस संसूचना में दावे को बिल्कुल भी स्वीकार न करने के लिए कारण बताए गए हैं । यह बीमाकर्ता द्वारा दायित्व से पूर्णतः प्रत्याख्यान करने के सिवाय और कुछ नहीं है । यह हानि की मात्रा से संबंधित कोई विवाद नहीं है । प्रस्तुत मामले में, इस बात से कोई संबंध नहीं है कि पालिसी शून्य थी अथवा नहीं क्योंकि यह प्रश्न बीमाकर्ता द्वारा नहीं उठाया गया था । बीमा-कंपनी ने तथ्यों के आधार पर दायित्व को उपर्युक्त कारणों के आधार पर स्वीकार करने से इनकार करके दावे का निराकरण किया है । ऐसा कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि परिमाण के संबंध में किसी प्रकार का कोई विवाद है । यह प्रत्यर्थी द्वारा यथा-दावाकृत हानि की क्षतिपूर्ति करने से प्रत्याख्यान है । ऐसी स्थिति पूर्ण रूप से विवादों से प्रत्याख्यान करने और दायित्व को स्वीकार न करने की संकल्पना के भीतर आती है । यह माध्यस्थम् खंडों में से कोई एक खंड नहीं है जिसका निर्वचन इस तरीके से किया जा सकता है कि किसी दावे का प्रत्याख्यान स्वतः विवाद की कोटि में आएगा और इसलिए उसे माध्यस्थम् को निर्देशित करना होगा । पक्षकार पालिसी के अधीन करार किए गए निबंधनों और शर्तों तथा उसमें अंतर्विष्ट माध्यस्थम् खंड से आबद्ध हैं । यह कोई ऐसा मामला नहीं है जिसमें माध्यस्थम् से बचने के लिए मात्र कपट के अभिकथन का दबाव डाला गया हो । यह कोई ऐसी स्थिति नहीं है जहां यह आधार अपनाया गया हो कि कतिपय दावों का संबंध छूटप्राप्त विषयों से है और इसलिए वे माध्यस्थम् योग्य नहीं हैं । दूसरे भाग में प्रयुक्त

भाषा पूर्णतः स्पष्ट और असंदिग्ध है चूंकि उसमें यह अनुबंधित है कि यह स्पष्ट रूप से माना और समझा गया है कि यदि कंपनी ने दायित्व को विवादित किया है या उसे स्वीकार नहीं किया है तो कोई भी मतभेद या विवाद माध्यस्थम् के लिए निर्देशित किए जाने योग्य नहीं होगा । उच्च न्यायालय ने यह राय अभिव्यक्त करके गंभीर त्रुटि की है कि भाग 2 और भाग 3 के बीच असंगति है । अतः, प्रत्यर्थी जिस एकमात्र उपचार का अवलंब ले सकता है वह यह है कि वह अपनी शिकायतों के शमन के लिए सिविल वाद संस्थित करे । यदि दो मास के भीतर सिविल वाद फाइल कर दिया जाता है तो परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 14 का लाभ उसके फायदे में लागू हो जाएगा । (पैरा 25 और 26)

प्रभेदित निर्णय

पैरा

[1976] [1976] 3 उम. नि. प. 559 =
(1976) 1 एस. सी. सी. 943 :
वल्कन इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम
महाराज सिंह और अन्य । 6,15,18,19,20,26

निर्दिष्ट निर्णय

[2016] (2016) 10 एस. सी. सी. 386 :
ए. अय्यासामी बनाम **ए परमशिवम् और अन्य** ; 6,22

[2016] (2016) 2 एल. डब्ल्यू. 769 :
मैसर्स जम्बो बैग्स लिमिटेड बनाम
मैसर्स दि न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड ; 6,20

[2013] (2013) 4 एस. सी. सी. 44 :
न्यूटन इंजीनियरिंग एंड केमिकल्स लिमिटेड बनाम
इंडियन ऑयल कारपोरेशन लिमिटेड और अन्य ; 14

[2013] (2013) 4 एस. सी. सी. 35 :
दीप ट्रेडिंग कंपनी बनाम **इंडियन ऑयल कारपोरेशन और अन्य** ; 13

[2013] (2013) 1 एस. सी. सी. 641 :
क्लोरो कंट्रोल्स इंडिया प्राइवेट लिमिटेड बनाम
सेवर्न ट्रेंट वॉटर प्यूरीफिकेशन इंक और अन्य ; 6,23

[2013] मनु/एमएच/0542/2013 :
एस्सार स्टील इंडिया लिमिटेड बनाम
दि न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड ; 6,21

[2006] (2006) 2 एस. सी. सी. 638 :
पुंज लॉयड लिमिटेड बनाम **पैट्रोनेट**
एम.एच.बी. लिमिटेड ; 13

[2004] (2004) 8 एस. सी. सी. 644 :
यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम
हरचन्द राय चन्दन लाल ; 5,11

[2000] ए. आई. आर. 2000 एस. सी. 10 :
ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम
समयनलुर प्राइमरी एग्रीकल्चरल कोआपरेटिव बैंक ; 5,10

[2000] (2000) 8 एस. सी. सी. 151 :
दतार स्विचगियर्स लिमिटेड बनाम
टाटा फाइनेंस लिमिटेड और एक अन्य ; 13

[1966] ए. आई. आर. 1966 एस. सी. 1644 :
जनरल एश्योरेंस सोसायटी लिमिटेड बनाम
चन्दूमल जैन और एक अन्य ; 5,9

[1923] आई. एल. आर. 47 मुम्बई 509 =
ए. आई. आर. 1923 मुम्बई 249 =
बाम्बे एल. आर. 164 :
ईगल स्टार एंड ब्रिटिश डोमिनियन्स इंश्योरेंस कंपनी
बनाम **दीनानाथ एंड हेमराज** । 18

[1894] (1894) 2 आइरिश एल. आर. 723 =
28 आइरिश एल. टी. 95 :
ओ कोनोर बनाम **नारविच यूनियन फॉयर एंड**
लाइफ इंश्योरेंस सोसायटी ; 16

[1893] 1893 अपील केसेज 85 =
9 टी. एल. आर. 146 = 57 जे. पी. 228 :
केलिडोनियन इंश्योरेंस कंपनी बनाम **एंड्रयू गिलमौर** ; 15

[1888] (1888) 20 क्यू. बी. डी. 171,172 : **विनी** बनाम **बिग्नोल्ड** ; 15,16

[1856] (1856) 25 एल. जे. एक्स 308 = 5 एच.एल.सी.811 = 4 डब्ल्यू. आर. 746 : **स्कॉट** बनाम **ऐवरी** । 15

सिविल अपीली अधिकारिता : 2018 की सिविल अपील सं. 2268.

2017 की माध्यस्थम् याचिका सं. 229 में कलकत्ता उच्च न्यायालय के तारीख 5 सितम्बर, 2017 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री पी. के. सेठ और सुश्री मंजीत चावला

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री सचिन दत्ता, ज्येष्ठ अधिवक्ता, सालर एम. खान, सुश्री श्रीदेवी पानिक्कर, पारिका गुप्ता और अमल मेरिन कुरियन

न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा ने दिया ।

मु. न्या. मिश्रा – प्रत्यर्थी-मैसर्स नरभेराम पावर एंड स्टील प्राइवेट लिमिटेड ने प्लाट सं. 11 और 13, गुंडीचापदा इंडस्ट्रियल एस्टेट, जिला धेनकनाल, ओडिशा में स्थित कारखाने की बाबत एक फायर इंडस्ट्रियल ऑल रिस्क पालिसी सं. 31150/11/2014/65 ली थी । अक्तूबर, 2013 में, "फाएलिन" नामक एक चक्रवाती तूफान आया जिससे ओडिशा राज्य के अधिकांश भाग प्रभावित हुए । उक्त चक्रवाती तूफान के कारण प्रत्यर्थी को नुकसान हुआ जिसका प्राक्कलन उसने 3,93,36,224.00 रुपए किया । अपीलार्थी-बीमाकर्ता को एक सूचना दी गई थी और उसने अशोक चोपड़ा एंड कंपनी को सर्वेक्षक के रूप में नियुक्त किया, जिसने तारीख 20 और 21 नवम्बर, 2013 को कारखाना परिसर का दौरा किया । प्रत्यर्थी और बीमाकर्ता के बीच काफी पत्र-व्यवहार हुआ । तारीख 22 दिसम्बर, 2014 को प्रत्यर्थी ने सर्वेक्षक की रिपोर्ट पर टिप्पणी की और अपीलार्थी से उसके दावे का परिनिर्धारण करने का अनुरोध किया । चूंकि अंततोगत्वा, दावे का परिनिर्धारण नहीं किया गया था, इसलिए प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी को यह सूचित करते हुए तारीख 21 जनवरी, 2017 की एक संसूचना भेजी कि उसने माध्यस्थम् करार का अवलंब लिया है और उससे मध्यस्थ के नाम के बारे में सहमति देने का अनुरोध किया, जिसे उसने नामनिर्दिष्ट किया था ।

2. अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी द्वारा किए गए दावे का निराकरण करते हुए

उक्त पत्र का उत्तर दिया और पक्षकारों के बीच उत्पन्न विवादों को माध्यस्थम् को निर्देशित करने से इनकार कर दिया । चूंकि बीमाकर्ता ने प्रत्यर्थी द्वारा किए गए अनुरोध को स्वीकार करने से इनकार कर दिया था इसलिए उसने माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (जिसे संक्षेप में "1996 का अधिनियम" कहा गया है) की धारा 11(6) के अधीन एक मध्यस्थ की नियुक्ति करने के लिए एक आवेदन फाइल किया जिससे कि वह प्रत्यर्थी द्वारा नामनिर्दिष्ट मध्यस्थ के साथ मिलकर पक्षकारों के बीच उद्भूत हुए विवादों और मतभेदों का न्यायनिर्णयन करने के लिए एक पीठासीन मध्यस्थ को नियुक्त करने की कार्यवाही कर सके ।

3. बीमाकर्ता द्वारा उक्त आवेदन का विरोध किया गया था और उच्च न्यायालय ने, पालिसी के खंड 13 में प्रयुक्त भाषा और दावेदार के दावे का निराकरण करते समय दिए गए कारणों पर विचार करते हुए, उच्च न्यायालय के एक सेवानिवृत्त न्यायाधीश को मध्यस्थ नियुक्त कर दिया । उक्त आदेश को इस अपील में विशेष इजाजत लेकर चुनौती दी गई है ।

4. हमने अपलार्थी की ओर से विद्वान् काउन्सेल श्री पी. के. सेठ और प्रत्यर्थी की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल श्री सचिन दत्ता को सुना ।

5. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउन्सेल द्वारा पालिसी के खंड 13 का अवलंब लेते हुए इस बात पर जोर दिया गया है कि जब एक बार दावे को निराकृत कर दिया गया था और बीमाकर्ता ने इस संबंध में विवाद कर दिया था या पालिसी के अधीन या उसकी बाबत दायित्व को स्वीकार नहीं किया था तब कोई मतभेद या विवाद माध्यस्थम को निर्देशित नहीं किया जाना चाहिए था । उसने आगे यह निवेदन भी किया कि उच्च न्यायालय ने उक्त खंड के निर्वचन के संबंध में यह मत अभिव्यक्त करके गलत दृष्टिकोण अपनाया है कि वह असंदिग्धता से ग्रस्त है और इसका सप्रयोजन पठन किए जाने की आवश्यकता है जिसके न हो सकने पर माध्यस्थम् खंड निरर्थक हो जाता है । **जनरल एश्योरेंस सोसायटी लिमिटेड** बनाम **चन्दूमल जैन और एक अन्य**[1], **ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **समयनलुर प्राइमरी एग्रीकल्चरल कोआपरेटिव बैंक**[2] और **यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **हरचन्द राय चन्दन लाल**[3] वाले विनिश्चयों का अवलंब लिया गया है ।

---

[1] ए. आई. आर. 1966 एस. सी. 1644.

[2] ए. आई. आर. 2000 एस. सी. 10.

[3] (2004) 8 एस. सी. सी. 644.

6. इसके विपरीत, प्रत्यर्थी की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल ने यह दलील दी कि उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश पूर्ण रूप से अभेद्य है और विद्यमान तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में उच्च न्यायालय द्वारा अभिव्यक्त मत में दोष नहीं निकाला जा सकता है । उसने आगे इस बात पर जोर दिया कि जब निराकरण संबंधी पत्र का उचित रूप से अर्थ लगाया जाए तो उसका संबंध पालिसी के अधीन या उसकी बाबत दायित्व के संबंध में विवाद करने और उसे स्वीकार न करने से नहीं है बल्कि वास्तव में वह दावे से इनकार करने की कोटि में आता है, जिसका संबंध मूलभूत रूप से दावे की मात्रा से है । इन निवेदनों को बल प्रदान करने के लिए उसने **वल्कन इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **महाराज सिंह और अन्य**[1], **क्लोरो कंट्रोल्स इंडिया प्राइवेट लिमिटेड** बनाम **सेवर्न ट्रेंट वॉटर प्यूरीफिकेशन इंक और अन्य**[2], **ए. अय्यासामी** बनाम **ए परमशिवम् और अन्य**[3], **मैसर्स जम्बो बैग्स लिमिटेड** बनाम **मैसर्स दि न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड**[4] और **एस्सार स्टील इंडिया लिमिटेड** बनाम **दि न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड**[5] वाले मामलों का अवलंब लिया ।

7. परस्पर-विरोधी दलीलों का मूल्यांकन करने के लिए माध्यस्थम् खंड, अर्थात्, पालिसी के खंड 13 की बारीकी से जांच और संवीक्षा करना आवश्यक है । उक्त खंड निम्नलिखित रूप में है :–

> "13. यदि इस पालिसी के अधीन संदत्त की जाने वाली राशि की मात्रा के बारे में (जब दायित्व को अन्यथा स्वीकार कर लिया जाता है) कोई विवाद या मतभेद उद्भूत होगा तो ऐसा मतभेद सभी प्रश्नों के संबंध में स्वतंत्र रूप से पक्षकारों द्वारा लिखित में नियुक्त किए जाने वाले किसी एकमात्र मध्यस्थ को विनिश्चय के लिए निर्देशित किया जाएगा या यदि वे किसी एकमात्र मध्यस्थ के संबंध में सहमत नहीं हो सकते हैं तो किसी पक्षकार द्वारा माध्यस्थम् का अवलंब लेने के 30 दिन के भीतर उसे तीन मध्यस्थों के एक पैनल को निर्देशित किया जाएगा, जिसमें दो मध्यस्थ वे होंगे जिनमें से एक-एक मध्यस्थ विवाद/मतभेद के पक्षकारों में से प्रत्येक पक्षकार द्वारा

---

[1] [1976] 3 उम. नि. प. 559 = (1976) 1 एस. सी. सी. 943.
[2] (2013) 1 एस. सी. सी. 641.
[3] (2016) 10 एस. सी. सी. 386.
[4] (2016) 2 एल. डब्ल्यू. 769.
[5] मनु/एमएच/0542/2013.

नियुक्त किया जाएगा और तीसरा मध्यस्थ ऐसे दो मध्यस्थों द्वारा नियुक्त किया जाएगा और माध्यस्थम् का संचालन माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 के उपबंधों के अधीन और उनके अनुसार किया जाएगा ।

यह स्पष्ट रूप से करार किया जाता है और समझा जाता है कि इसमें इसके पूर्व उपबंधित कोई मतभेद या विवाद तब माध्यस्थम् के लिए निर्देशित नहीं किया जाएगा यदि कंपनी ने इस पालिसी के अधीन या उसकी बाबत दायित्व के संबंध में विवाद किया है या उसे स्वीकार नहीं किया है ।

यह अभिव्यक्त रूप से अनुबंधित और घोषित किया जाता है कि इस पालिसी के संबंध में कार्रवाई या वाद चलाने के किसी अधिकार की पूर्व शर्त यह होगी कि ऐसे मध्यस्थ/मध्यस्थों द्वारा हानि या नुकसान की रकम का पंचाट पहले अभिप्राप्त किया जाएगा ।"

(जोर देने के लिए रेखांकन किया गया है ।)

8. जब हम ऊपर उद्धृत खंड का सावधानीपूर्वक पठन करते हैं तो इससे पूर्णतः सुस्पष्ट हो जाता है कि जब बीमाकर्ता एक बार पालिसी के अधीन या उसकी बाबत दायित्व के संबंध में विवाद करता है तब मध्यस्थ को कोई भी निर्देश नहीं किया जा सकता है । यह खंड के दूसरे भाग में अंतर्विष्ट है । खंड के तीसरे भाग में यह अनुबंधित है कि पालिसी के संबंध में कार्रवाई या वाद चलाने के किसी अधिकार का अवलंब लेने से पूर्व हानि या नुकसान की रकम के संबंध में मध्यस्थ/मध्यस्थों का पूर्व पंचाट इसकी पूर्व-शर्त है । उच्च न्यायालय ने, जैसा कि आक्षेपित आदेश से दर्शित होगा, दूसरे भाग पर जोर दिया है और उस आधार पर यह राय व्यक्त की है कि दूसरे भाग और तीसरे भाग में सामंजस्य नहीं है और वास्तव में यह एक विसंगत टिप्पण प्रतीत होता है क्योंकि स्कीम को दो भागों में विभाजित नहीं किया जा सकता है, जिसमें से एक के संबंध में विनिश्चय माध्यस्थम् द्वारा और दूसरे के संबंध में विनिश्चय वाद में किया जाए ।

9. इससे पूर्व कि हम निराकरण संबंधी तथ्य और खंड पर पड़ने वाले उसके प्रभाव पर विचार करें, हम पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउन्सेल द्वारा उद्धृत नजीरों पर चर्चा करना उचित समझते हैं । **जनरल एश्योरेंस सोसायटी लिमिटेड** (उपर्युक्त) वाले मामले में संविधान न्यायपीठ ने बीमा संविदा पर विचार करते समय यह राय व्यक्त की है कि ऐसी संविदा वाणिज्यिक संव्यवहारों के आधार पर की जाती है और किसी बीमा संविदा

से संबंधित दस्तावेजों का निर्वचन करते समय न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह उन्हीं शब्दों का निर्वचन करे जिन शब्दों द्वारा पक्षकारों ने संविदा को अभिव्यक्त किया है क्योंकि न्यायालय का यह कार्य नहीं है कि वह कोई नई संविदा बनाए, चाहे वह कितनी भी युक्तिसंगत क्यों न हो ।

10. **ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** (उपर्युक्त) वाले मामले में दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने यह राय व्यक्त की है कि बीमा पालिसी का अर्थान्वयन उसमें अंतर्विष्ट अनुबंधों के प्रतिनिर्देश से ही किया जाना होता है और उसमें आने वाले शब्दों का कोई कृत्रिम अस्वाभाविक अर्थान्वयन नहीं किया जा सकता है ।

11. **यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** (उपर्युक्त) वाले मामले में न्यायालय ने यह निर्णय दिया है कि पालिसी के निबंधन ही पक्षकारों के बीच की गई संविदा को शासित करेंगे और वे उसमें दी गई परिभाषाओं का अनुपालन करने के लिए आबद्ध हैं । इसके अलावा, पालिसी में आने वाली अभिव्यक्ति का निर्वचन पालिसी के निबंधनों के प्रति निर्देश से न कि किसी अन्य विधि में दी गई परिभाषाओं के प्रतिनिर्देश से किया जाना चाहिए क्योंकि पक्षकारों ने वह संविदा सोच-समझकर की है ।

12. उपर्युक्त सिद्धांत स्थापित विधिक स्थिति के क्षेत्र के अंतर्गत आते हैं । उक्त प्रतिपादनाओं का स्वाभाविक परिणाम यह है कि पक्षकार पालिसी में प्रगणित खंडों द्वारा आबद्ध हैं और न्यायालय किसी खंड को भिन्न रूप देकर उसमें किसी साम्या को आरोपित नहीं करता है । न्यायालय करार में ऐसे अनुबंधों का निर्वचन कर सकता है । ऐसा इस कारण है कि उनका संबंध वाणिज्यिक संव्यवहारों से होता है और सौदेबाजी करने की शक्ति की कमी के कारण निबंधनों और शर्तों की अविवेकपूर्णता का सिद्धांत उद्भूत नहीं होता है । उक्त सिद्धांत एक भिन्न क्षेत्र में लागू होता है ।

13. इस संदर्भ में, **दीप ट्रेडिंग कंपनी** बनाम **इंडियन ऑयल कारपोरेशन और अन्य**[1] वाले निर्णय के प्रतिनिर्देश करना अनुदेशात्मक होगा । इस निर्णय में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने समयावधि के अवसान के पश्चात् मध्यस्थ नियुक्त करने संबंधी उस मामले में के प्रत्यर्थी सं. 1 के अधिकार के संबंध में विचार किया था । न्यायालय ने करार के खंड 29 के प्रतिनिर्देश किया जिसमें मध्यस्थ की नियुक्ति की प्रक्रिया के लिए उपबंध था । न्यायालय ने **दतार स्विचगियर्स लिमिटेड** बनाम **टाटा फाइनेंस**

---

[1] (2013) 4 एस. सी. सी. 35.

लिमिटेड और एक अन्य[1] और **पुंज लॉयड लिमिटेड** बनाम **पैट्रोनेट एम. एच. बी. लिमिटेड**[2] वाले मामलों में के निर्णयों के प्रतिनिर्देश करने के पश्चात्, निम्नलिखित रूप में अभिनिर्धारित किया :–

> "19. यदि हम दतार स्विचगियर्स वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधिक स्थिति स्वीकृत तथ्यों को लागू करें तो यह दृष्टव्य होगा कि कारपोरेशन ने मध्यस्थ नियुक्त करने संबंधी अपना अधिकार खो दिया है । ऐसा इस कारण है कि तारीख 9 अगस्त, 2004 को व्यौहारी ने कारपोरेशन से करार के खंड 29 के निबंधनानुसार मध्यस्थ नियुक्त करने की मांग की थी किन्तु यह तब तक नहीं किया गया था जब तक कि व्यौहारी ने धारा 11(6) के अधीन इलाहाबाद उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति को मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए आवेदन कर दिया था । कारपोरेशन द्वारा यह नियुक्ति धारा 11(6) के अधीन कार्यवाहियों के लंबित रहने के दौरान ही की गई थी । कारपोरेशन द्वारा उसके अधिकार के समपहृत हो जाने के पश्चात् की गई ऐसी नियुक्ति का कोई महत्व नहीं था और इससे व्यौहारी धारा 11(6) के अधीन मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा मध्यस्थ की नियुक्ति की ईप्सा करने से निर्हकित नहीं हो गया है । हम उपर्युक्त प्रश्नों का तद्नुसार उत्तर देते हैं ।'

14. इस संबंध में, **न्यूटन इंजीनियरिंग एंड केमिकल्स लिमिटेड** बनाम **इंडियन ऑयल कारपोरेशन लिमिटेड और अन्य**[3] वाले मामले के निर्णय के प्रतिनिर्देश करना लाभप्रद है । उक्त मामले में, पक्षकारों के बीच एक अभिव्यक्त, स्पष्ट और असंदिग्ध माध्यस्थम् खंड मौजूद था जिसमें यह उपबंध किया गया था कि विवादों को प्रत्यर्थी कारपोरेशन के कार्यकारी निदेशक (उत्तरी क्षेत्र) को एकमात्र माध्यस्थम् के लिए निर्देशित किए जाएंगे और यदि उक्त प्राधिकारी एकमात्र मध्यस्थ के रूप में कार्य करने में असमर्थ या अनिच्छुक है तो मामले ऐसे कार्यकारी निदेशक (उत्तरी क्षेत्र) द्वारा अपने स्थान पर पदाभिहित ऐसे व्यक्ति को निर्देशित किए जाएंगे, जो एकमात्र मध्यस्थ के रूप में कार्य करने का इच्छुक है । माध्यस्थम् खंड में आगे यह उपबंध किया गया था कि यदि उनमें से कोई भी मध्यस्थ के रूप में कार्य करने में समर्थ नहीं है तो किसी अन्य व्यक्ति को एकमात्र मध्यस्थ

---

[1] (2000) 8 एस. सी. सी. 151.
[2] (2006) 2 एस. सी. सी. 638.
[3] (2013) 4 एस. सी. सी. 44.

के रूप में कार्य नहीं करना चाहिए और यदि कारपोरेशन में उक्त प्राधिकारी का कार्यालय अस्तित्व में नहीं रहता है और पक्षकार किसी सहमत समाधान पर पहुंचने में असमर्थ हैं तो माध्यस्थम् खंड अस्तित्व में नहीं रहेगा और उसके बारे में यह माना जाएगा कि उसने अपना क्रम पूरा कर लिया है । न्यायालय ने इस खंड का निर्वचन करते हुए यह मत व्यक्त किया कि ऐसी स्थिति में न्यायालय के पास विवादों के समाधान के लिए मध्यस्थ नियुक्त करने की कोई शक्ति नहीं है ।

15. **वल्कन इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** (उपर्युक्त) वाले मामले में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने उस मामले में अंतर्वलित पालिसी के खंड 13, 18 और 19 का निर्वचन किया था । समुचित मूल्यांकन की दृष्टि से, हम उक्त निर्णय में विचारार्थ उद्भूत होने वाले पालिसी के खंडों के प्रतिनिर्देश करना उचित समझते हैं । वे खंड निम्नलिखित रूप में हैं :–

> "13. यदि दावा किसी प्रकार से कपटपूर्ण होता है या उसके समर्थन में कोई मिथ्या घोषणा की जाती है या उसका उपयोग किया जाता है या बीमाकृत व्यक्ति या उसकी ओर से कार्य करने वाले किसी व्यक्ति द्वारा उस पालिसी के अधीन कोई फायदा अभिप्राप्त करने के लिए किन्हीं कपटपूर्ण साधनों या युक्तियों का प्रयोग किया जाता है या बीमाकृत व्यक्ति के जानबूझकर किए गए कार्य से या उसकी मौनानुकूलता के कारण हानि या नुकसान होता है या यदि दावा किया जाता है और उसे अस्वीकार कर दिया जाता है तथा ऐसी अस्वीकृति के पश्चात् तीन मास के भीतर या (इस पालिसी की 18वीं शर्त के अनुसरण में कोई माध्यस्थम् प्रारंभ होने की दशा में) मध्यस्थ या मध्यस्थों या अधिनिर्णायक द्वारा अपना पंचाट किए जाने के पश्चात् तीन मास के भीतर कोई कार्रवाई या वाद प्रारंभ नहीं किया जाता है तो इस पालिसी के अधीन सभी फायदे समपहृत हो जाएंगे ।
>
> * * *
>
> 18. यदि किसी हानि या नुकसान की रकम के बारे में कोई मतभेद उद्भूत होता है तो ऐसा मतभेद अन्य सभी प्रश्नों से पृथक् मतभेद वाले पक्षकारों द्वारा लिखित में नियुक्त किए गए किसी मध्यस्थ के विनिश्चयार्थ या यदि वे किसी एकमात्र मध्यस्थ के लिए सहमत नहीं हो सकते हैं तो मध्यस्थों के रूप में दो अहितबद्ध व्यक्तियों के विनिश्चयार्थ निर्देशित किया जाएगा.... ।
>
> * * *

और यह अभिव्यक्त रूप से अनुबंधित और घोषित किया जाता है कि इस पालिसी के संबंध में कार्रवाई या वाद चलाने के किसी अधिकार की पूर्व शर्त यह होगी कि ऐसे मध्यस्थ, मध्यस्थों या अधिनिर्णायक द्वारा हानि या नुकसान की रकम के बारे में पंचाट, यदि उसे विवादग्रस्त किया जाता है, पहले अभिप्राप्त कर लिया जाएगा ।

19. किसी भी दशा में कंपनी हानि या नुकसान होने के बारह मास के अवसान के पश्चात् किसी हानि या नुकसान के लिए तब तक दायी नहीं होगी जब तक कि वह दावा लंबित कार्रवाई या माध्यस्थम् की विषयवस्तु न हो ।"

उक्त मामले में, कंपनी ने दावाकर्ता द्वारा दावाकृत हानि या नुकसान की किसी रकम का संदाय करने संबंधी अपने दायित्व को निराकृत कर दिया था । न्यायालय ने यह राय व्यक्त की कि कंपनी द्वारा उठाए गए विवाद का संबंध किसी भी प्रकार के नुकसान की कोई रकम संदत्त करने संबंधी उसके दायित्व से था और इसलिए अपीलार्थी द्वारा उठाया गया विवाद माध्यस्थम् खंड के अंतर्गत नहीं आता था । न्यायालय ने खंड 13 और 18 का गहन विश्लेषण किया और उसके बाद **स्कॉट** बनाम **ऐवरी**[1] वाले विनिश्चय के प्रति निर्देश किया, जिसमें उस खंड को **स्कॉट** बनाम **ऐवरी** (उपरोक्त) खंड के रूप में नामित किया गया है और रस्सल ऑन आर्बिट्रेशन से एक लेखांश उद्धृत किया, जो कि निम्नलिखित रूप में है :–

"तथापि, इस किस्म का खंड भी वास्तव में आत्यांतिक नहीं होता है जहां न्यायालय यह आदेश करता है कि किसी विशिष्ट विवाद के संबंध में माध्यस्थम् करार का प्रभाव समाप्त हो गया है, उसे इसके अतिरिक्त यह आदेश करने का भी विवेकाधिकार है कि स्कॉट **बनाम** ऐवरी (उपरोक्त) खंड भी निष्प्रभावी हो गया है (रस्सल ऑन आर्बिट्रेशन, अठारहवां संस्करण के पृष्ठ 57, 58 देखिए) ।"

उक्त मामले में, **विनी** बनाम **बिग्नोल्ड**[2] वाले मामले का अवलंब लिया गया था, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि माध्यस्थम् द्वारा रकम का अवधारण करना पालिसी के अनुसार वसूली करने के अधिकार की एक पूर्व-शर्त थी और यदि माध्यस्थम् में कोई पंचाट अभिप्राप्त किए बिना कोई

---

[1] (1856) 25 एल. जे. एक्स 308 = 5 एच. एल. सी. 811 = 4 डब्ल्यू. आर. 746.

[2] (1888) 20 क्यू. बी. डी. 171,172.

कार्रवाई आरंभ की गई थी तो वह चलाने योग्य नहीं थी । एक अन्य विनिश्चय, जिस पर बल दिया गया था, वह **केलिडोनियन इंश्योरेंस कंपनी** बनाम **एंड्रयू गिलमौर**[1] वाला मामला था । न्यायालय ने यह टिप्पणी की कि उक्त विनिश्चय ऐसे मामले के संबंध में था जिसमें एक व्यापक माध्यस्थम् खंड अंतर्विष्ट था और उसमें किसी पंचाट के बिना कार्रवाई की पोषणीयता के वर्जन के रूप में **स्कॉट** बनाम **ऐवरी** (उपरोक्त) खंड को लागू करना न्यायोचित ठहराया गया था ।

16. तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने यह उल्लेख किया कि **ओ कोनोर** बनाम **नारविच यूनियन फॉयर एंड लाइफ इंश्योरेंस सोसायटी**[2] वाले मामले में **विनी** बनाम **बिग्नोल्ड** (उपर्युक्त) वाले विनिश्चय को प्रभेदित किया गया था और न्यायमूर्ति होम्स के एक लेखांश को उद्धृत किया गया था :–

> "अब, यदि संविदा की यह शर्त थी कि इस किस्म के मतभेद को माध्यस्थम् द्वारा तय किया जाना था तो मुझे कार्रवाई को रोकने में हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिए .....
>
> * * *
>
> किन्तु वादी की पालिसी में ऐसा कोई उपबंध नहीं है कि ऐसा संविवाद, जो कि उद्भूत हुआ है, माध्यस्थम् को निर्देशित किया जाना है । उसमें सावधानीपूर्वक तैयार किया गया एक खंड है, जिसके द्वारा यह करार किया गया है कि संदत्त की जाने वाली रकम, जो कि किसी भी रकम का संदाय करने संबंधी दायित्व से पृथक् है, मध्यस्थों द्वारा तय की जानी है और तब तक कोई कार्रवाई प्रारंभ नहीं की जा सकती है जब तक कि उन्होंने ऐसी रकम अवधारित न कर दी हो । इस खंड का एक परिणाम उस दशा में दो कार्यवाहियों को आवश्यक बनाना हो सकता है जहां हानि की रकम तथा समस्त दायित्व से इनकार करने के बारे में कोई विवाद होता है; किन्तु यह उन पक्षकारों में से, जिन्होंने उसे संविदा की एक शर्त बनाया है, किसी पक्षकार के लिए शिकायत करने का आधार नहीं होना चाहिए;"

न्यायालय ने उक्त लेखांश को उद्धृत करने के पश्चात् उक्त मत से

---

[1] 1893 अपील केसेज़ 85 = 9 टी. एल. आर. 146 = 57 जे. पी. 228.

[2] (1894) 2 आइरिश एल. आर. 723 = 28 आइरिश एल. टी. 95.

अपनी सहमति व्यक्त की ।

17. प्रत्यर्थी की ओर से विद्वान् काउन्सेल द्वारा बीमा विधि के संबंध में मैकगिलीवरे के पांचवे संस्करण के कुछ पैरा का अवलंब लिया गया था । उक्त पैरा निम्नलिखित रूप में है :–

> "विधि का यह नियम है कि पक्षकार अपनी प्राइवेट संविदा द्वारा न्यायालय की अधिकारिता छीन नहीं सकते; किन्तु यह अभिनिर्धारित किया गया है कि तथापि, किसी संविदा के पक्षकार इस संबंध में करार कर सकते हैं कि इसके बारे में कोई वादहेतुक तब तक उद्भूत नहीं होगा जब तक उनके बीच कोई विवादग्रस्त विषय माध्यस्थम् द्वारा अवधारित न कर दिया गया हो और इसके पश्चात् केवल मध्यस्थों के पंचाट के पश्चात् वादहेतुक उद्भूत होगा ।"

प्रत्यर्थी की ओर से निम्नलिखित पैरा की सहायता ली गई थी :–

> "नियमानुसार, जहां हानि या नुकसान की रकम ही एकमात्र ऐसा विषय है जो कि पक्षकार माध्यस्थम् के लिए निर्देशित करते हैं वहां यदि बीमाकर्ता पालिसी से संबंधित किसी दायित्व को निराकृत करते हैं तो बीमाकृत व्यक्ति पर पालिसी के संबंध में कोई कार्रवाई प्रारंभ करने से पूर्व रकम के बारे में मध्यस्थता कराने की कोई बाध्यता नहीं है ।"

18. यहां यह उल्लेख करना उपयुक्त है कि मुम्बई उच्च न्यायालय ने **ईगल स्टार एंड ब्रिटिश डोमिनियन्स इंश्योरेंस कंपनी** बनाम **दीनानाथ एंड हेमराज**[1] वाले मामले में समरूप खंड 13 का निर्वचन किया था । उच्च न्यायालय ने अंततः यह निर्णय दिया था :–

> "किन्तु खंड 13 में ऐसी विभिन्न आकस्मिकताएं उपवर्णित की गईं हैं जो कि यदि स्थापित कर दी जाती है तो बीमाकृत व्यक्ति मध्यस्थों द्वारा कोई पंचाट किए बिना कार्रवाई प्रारंभ करने का हकदार हो जाता है । इन आकस्मिकताओं में एक आकस्मिकता यह है कि 'यदि दावा किया जाता है और उसे अस्वीकार कर दिया जाता है' जो कि यदि स्थापित हो जाए तो कार्रवाई का अधिकार देता है, वाद के

---

[1] आई. एल. आर. 47 मुम्बई 509 = ए. आई. आर. 1923 मुम्बई 249 = 25 बाम्बे एल. आर. 164.

लिए उपबंधित परिसीमा अवधि अस्वीकार करने की तारीख से तीन मास नियत की गई है । जबकि यह भी उपबंधित किया गया है कि जहां पालिसी की शर्त 18 के अनुसरण में माध्यस्थम् कार्यवाही आरंभ होती है वहां पंचाट किए जाने के पश्चात् वाद के लिए तीन मास का समय अनुज्ञात किया जाना चाहिए । अतः. यह पूर्णतः स्पष्ट होता है कि कार्रवाई का अधिकार कंपनी द्वारा दावे को अस्वीकार करने के पश्चात् प्रोद्भूत हो गया था । स्वाभाविक रूप से उस प्रश्न का विनिश्चय प्रथमतः वाद द्वारा किया जाना होगा क्योंकि खंड 18 के अधीन वह प्रश्न माध्यस्थम् के लिए कभी भी निर्देशित नहीं किया जा सकता था ।"

इस न्यायालय ने **वल्कन इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** (उपर्युक्त) वाले मामले में मुम्बई उच्च न्यायालय के मत का अनुमोदन किया ।

19. इस प्रक्रम पर, हम **वल्कन इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** (उपर्युक्त) वाले मामले में की तथ्यात्मक स्थिति का संक्षेप में कथन कर सकते हैं । उक्त मामले में, प्रत्यर्थी ने उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरनगर स्थित न्यायालय में माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 की धारा 20 के अधीन एक आवेदन फाइल किया था । चूंकि उस न्यायालय की अधिकारिता के बारे में आक्षेप किया गया था, इसलिए प्रत्यर्थी ने उसे दिल्ली न्यायालय में पुनः फाइल किया । दिल्ली स्थित विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए वह आवेदन कर दिया कि बीमा कंपनी द्वारा खंड 13 के अधीन दायित्व के निराकरण के कारण उद्भूत विवाद खंड 18 में अंतर्विष्ट माध्यस्थम् करार की परिधि के भीतर आता था और माध्यस्थम् के लिए निर्देश किया जा सकता था किन्तु खंड 19 के अनुसार वह याचिका परिसीमा द्वारा वर्जित थी । अपील फाइल किए जाने पर, दिल्ली उच्च न्यायालय ने यह राय व्यक्त करते हुए उस निर्णय को उलट दिया कि खंड 18 हानि या नुकसान की रकम के बारे में मतभेदों तक निर्बंधित था ; यह कि माध्यस्थम् को निर्देश करने का अधिकार छीना नहीं गया था और माध्यस्थम् खंड के अंतर्गत विवाद तब भी आता था भले ही बीमा कंपनी ने दावा को पूर्ण रूप से निराकृत कर दिया हो ; यह कि माध्यस्थम् खंड 18 तब तक अप्रवर्तनशील था जब तक कि खंड 19 में दी गई शर्तों को पूरा नहीं कर दिया गया था ; यह कि उसमें उल्लिखित शर्त की पूर्ति हो गई थी क्योंकि प्रत्यर्थी सं. 1 ने उस तारीख को माध्यस्थम् प्रारंभ कर दिया था जब उसने तारीख 1 अक्तूबर, 1963 की सूचना जारी

की थी ; और यह कि उसका दावा खंड 19 के अर्थान्तर्गत किसी लंबित माध्यस्थम् का विषय था । उच्च न्यायालय ने इस दृष्टिकोण के आधार पर अपील मंजूर कर ली थी । इस न्यायालय ने उच्च न्यायालय के निर्णय को उलटते हुए अंततः निम्नलिखित रूप में अभिनिर्धारित किया :–

> "24. किन्तु इस मामले में इस विषय पर सतर्कतापूर्वक विचार करने पर हम इस निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि प्रत्यर्थी 1 द्वारा किए गए दावे के कंपनी द्वारा निराकरण करने पर पक्षकारों के बीच जो मतभेद पैदा हुआ था वह ऐसा नहीं था जिसे माध्यस्थम् खंड लागू होता हो और इसलिए माध्यस्थम् करार फाइल नहीं किया जा सकता था और अधिनियम की धारा 20 के अधीन कोई मध्यस्थ नियुक्त नहीं किया जा सकता था । निराकरण की तारीख के तीन मास के भीतर कंपनी के दायित्व को सिद्ध करने के लिए वाद संस्थित करने की बजाय प्रत्यर्थी सं. 1 ने धारा 20 के अधीन कार्यवाही शुरू करके गलती की है ।"

यहां यह उल्लेख करना हमारी बाध्यता है कि यद्यपि प्रत्यर्थी ने उक्त निर्णय का अवलंब लिया है तथापि, इससे उसे कोई सहायता प्राप्त नहीं होती है । इसके प्रतिकूल, जैसा कि उच्च न्यायालय द्वारा महसूस किया गया है, यह माध्यस्थम् खंड के भाग 2 और भाग 3 में अस्पष्टता के बोध को दूर करता है । इसके अलावा, इसके द्वारा निराकरण के मुद्दे पर प्रकाश डाला गया है ।

20. अब हम **मैसर्स जम्बो बैग्स लिमिटेड** (उपर्युक्त) वाले मामले में मद्रास उच्च न्यायालय के विनिश्चय के प्रतिनिर्देश कर सकते हैं । उक्त मामले में, विद्वान् मुख्य न्यायमूर्ति ने पालिसी की शर्तों के खंड 13 का निर्वचन किया । **वल्कन इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** (उपर्युक्त) वाले मामले के प्रतिनिर्देश करते हुए, उन्होंने निम्न प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

> "चूंकि वह विवाद, जो माध्यस्थम् के लिए निर्देशित नहीं किया जा सकता है, इस खंड के अंतर्गत नहीं आता है इसलिए वह माध्यस्थम् की विषयवस्तु के संबंध में नहीं हो सकता है तथा इस मामले में बीमाकृत के लिए उपचार केवल वाद संस्थित करना है ।"

और आगे यह अभिनिर्धारित किया :–

> "मेरा यह मत है कि इस बात को देखते हुए कि माध्यस्थम् खंड

में विवादों का न्यायनिर्णयन माध्यस्थम् द्वारा करने की पद्धति को वहां विनिर्दिष्ट रूप से अपवर्जित किया गया है जहां दावे का पूर्ण रूप से निराकरण कर दिया जाता है, याची को माध्यस्थम् का उपचार उपलब्ध नहीं है । इस प्रकार, विधि के अनुसार केवल सिविल वाद फाइल करने का उपचार उपलब्ध होगा ।"

हम उक्त मत से सहमत हैं ।

21. **एस्सार स्टील इंडिया लिमिटेड** (उपर्युक्त) वाले मामले में मुम्बई उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने ऐसी स्थिति के संबंध में विचार किया जहां बीमाकर्ता ने यह आधार अपनाया था कि पालिसी आरंभ से शून्य थी । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने उक्त आधार का खंडन करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि विवाद माध्यस्थम् को निर्देशित किए जा सकेंगे चूंकि स्वामी द्वारा किए गए अभिवाक् का विनिश्चय मध्यस्थ द्वारा किया जा सकता है । हमारा आशय उक्त विनिश्चय की शुद्धता के संबंध में विचार करना नहीं है क्योंकि प्रस्तुत मामले में अंतर्वलित प्रश्न पूर्णतः भिन्न है ।

22. **ए. अय्यासामी** (उपर्युक्त) वाले मामले में दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने इस प्रश्न पर विचार किया कि क्या मध्यस्थ द्वारा कपट के अभिवाक् को पर्याप्त रूप से ध्यान में रखा जा सकता है । न्यायमूर्ति सीकरी ने, तथ्यों का विश्लेषण करते हुए, निम्नलिखित राय व्यक्त की :–

"28. अतः, हमारी राय यह है कि तात्पर्यित कपट के अभिकथन इतने गंभीर नहीं थे कि जिन्हें मध्यस्थ द्वारा ध्यान में नहीं रखा जा सकता हो । अतः, निचले न्यायालयों ने अधिनियम की धारा 8 के अधीन अपीलार्थी के आवेदन को नामंजूर करके गलती की है । हम इन निर्णयों को उलटते हुए इन अपीलों को मंजूर करते हैं और परिणामस्वरूप अपीलार्थी द्वारा वाद में धारा 8 के अधीन फाइल किया गया आवेदन मंजूर किया जाता है, जिसके द्वारा पक्षकारों को माध्यस्थम् के सुपुर्द किया जाता है ।"

न्यायमूर्ति चन्द्रचूड़ ने, अपनी समवर्ती राय में, माध्यस्थम् के क्षेत्र में अनेक नज़ीरों और साहित्य के प्रतिनिर्देश करने के पश्चात्, निम्न प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

"53. मेरी राय में, माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 का निर्वचन इस प्रकार किया जाना चाहिए जिससे कि उसके निर्वचन में अंतर्निहित सिद्धांतों को ऐसी रीति में अनुकूल बनाया जा सके जो कि

साधारण विधि के संसार में विद्यमान दृष्टिकोणों से संगत हो । भारत में विधिशास्त्र को माध्यस्थम् की संस्थागत प्रभावकारिता को सुदृढ़ करने की ओर विकसित होना चाहिए । पक्षकारों द्वारा अपने सभी दावों का समाधान करने के लिए पूर्ण उपचार के रूप में चुने गए मंच का सम्मान करना उस विकास का एक भाग है । न्यायालयों के हस्तक्षेप को कम करना पुनः इसी सिद्धांत की मान्यता है ।"

उसने आगे यह अभिनिर्धारित किया कि तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में कपट का अभिकथन मात्र करना, 1996 के अधिनियम की भाषा और भाव को ध्यान में रखते हुए पक्षकारों को अपने विवादों को माध्यस्थम् के लिए प्रस्तुत करने संबंधी उनकी बाध्यता से अलग करने के लिए पर्याप्त नहीं था । हमारी सुविचारित राय में, यह विनिश्चय प्रस्तुत मामले को लागू नहीं होता है ।

23. यद्यपि प्रत्यर्थी की ओर से विद्वान् काउन्सेल ने **क्लोरो कंट्रोल्स इंडिया प्राइवेट लिमिटेड** (उपर्युक्त) वाले मामले के प्रतिनिर्देश किया है तथापि, इसका विश्लेषण करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह कोई ऐसी नज़ीर नहीं है जो प्रस्तुत मामले में के मुकदमे का विनिश्चय करने के लिए दूर-दूर तक भी सुसंगत हो ।

24. इस बात पर विशेष जोर देने की आवश्यकता नहीं है कि माध्यस्थम् खंड का कठोरतापूर्वक निर्वचन करना आवश्यक है । खंड में की किसी अभिव्यक्ति से माध्यस्थम् का आशय सुस्पष्ट रूप से अभिव्यक्त होना चाहिए । इसमें ऐसी धारणा अधिकथित की जा सकती है जिन स्थितियों में माध्यस्थम् खंड को प्रभावी नहीं किया जा सकता है । यदि किसी खंड में यह अनुबंधित है कि कतिपय परिस्थितियों के अधीन कोई माध्यस्थम् नहीं हो सकता है और वे प्रमाण रूप से स्पष्ट हैं तो मध्यस्थ की नियुक्ति से संबंधित संविवाद को छोड़ देना होगा ।

25. वर्तमान मामले में, खंड 13 में स्पष्ट रूप से यह आधारतत्व अधिकथित किया गया है कि यदि बीमाकर्ता ने दायित्व को विवादित किया है या उसे स्वीकार नहीं किया है तो कोई मतभेद या विवाद माध्यस्थम् के लिए निर्देशित नहीं किया जाएगा । मामले में विशेष बल इस बात पर दिया गया है कि क्या बीमाकर्ता ने पालिसी के अधीन या उसकी बाबत अपने दायित्व को विवादित किया है या उसे स्वीकार नहीं किया है । तारीख 26 दिसम्बर, 2014 के पत्र द्वारा प्रत्यर्थी के दावे को नामंजूर करने के लिए

निम्नलिखित कारण बताए गए थे :–

"1. आयातित कोयले की अभिकथित हानि स्पष्ट रूप से सामान की कमी है ।

2. स्टाक की प्रसंस्करण में कोई वास्तविक हानि नहीं हुई थी ।

3. स्पंज लौह का क्षय अंतर्निहित खराबी के कारण हुआ है ।

4. भवन/शैडों आदि मद्धे हुई हानि को बीमाकृत अनुरक्षण के अंतर्गत लाने के लिए बढ़ा-चढ़ा कर दिखाया गया है ।

5. चूंकि कोई तात्विक क्षति नहीं हुई है इसलिए कारबार में व्यवधान संबंधी हानि नहीं हुई है ।"

26. प्रत्यर्थी की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल ने निवेदन किया है कि उपर्युक्त संसूचना पालिसी के अधीन या उसकी बाबत दायित्व से प्रत्याख्यान करने की कोटि में नहीं आती है । हम समझते हैं कि संसूचना के पठन मात्र से विवाद उचित रूप से खंड 13 के भाग 2 के अंतर्गत आता है । खंड के उक्त भाग में स्पष्ट रूप से यह सूचित होता है कि पक्षकार इस संबंध में सहमत हो गए हैं और उन्होंने यह समझ लिया है कि यदि कंपनी ने दायित्व को विवादित किया है या उसे स्वीकार नहीं किया है तो कोई मतभेद या विवाद माध्यस्थम् को निर्देशित नहीं किया जा सकेगा । उस संसूचना में दावे को बिल्कुल भी स्वीकार न करने के लिए कारण बताए गए हैं । यह बीमाकर्ता द्वारा दायित्व से पूर्णतः प्रत्याख्यान करने के सिवाय और कुछ नहीं है । यह हानि की मात्रा से संबंधित कोई विवाद नहीं है । प्रस्तुत मामले में, हमारा संबंध इस बात से नहीं है कि पालिसी शून्य थी अथवा नहीं क्योंकि यह प्रश्न बीमाकर्ता द्वारा नहीं उठाया गया था । बीमा कंपनी ने तथ्यों के आधार पर दायित्व को उपर्युक्त कारणों के आधार पर स्वीकार करने से इनकार करके दावे का निराकरण किया है । ऐसा कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि परिमाण के संबंध में किसी प्रकार का कोई विवाद है । यह प्रत्यर्थी द्वारा यथा दावाकृत हानि की क्षतिपूर्ति करने से प्रत्याख्यान है । हमारे मतानुसार, ऐसी स्थिति पूर्ण रूप से विवादों से प्रत्याख्यान करने और दायित्व को स्वीकार न करने की संकल्पना के भीतर आती है । यह माध्यस्थम् खंडों में से कोई एक खंड नहीं है जिसका निर्वचन इस तरीके से किया जा सकता है कि किसी दावे

का प्रत्याख्यान स्वतः विवाद की कोटि में आएगा और इसलिए उसे माध्यस्थम् को निर्देशित करना होगा । पक्षकार पालिसी के अधीन करार किए गए निबंधनों और शर्तों तथा उसमें अंतर्विष्ट माध्यस्थम् खंड से आबद्ध हैं । यह कोई ऐसा मामला नहीं है जिसमें माध्यस्थम् से बचने के लिए मात्र कपट के अभिकथन का दबाव डाला गया हो । यह कोई ऐसी स्थिति नहीं है जहां यह आधार अपनाया गया हो कि कतिपय दावों का संबंध छूटप्राप्त विषयों से है और इसलिए वे माध्यस्थम् योग्य नहीं हैं । दूसरे भाग में प्रयुक्त भाषा पूर्णतः स्पष्ट और असंदिग्ध है चूंकि उसमें यह अनुबंधित है कि यह स्पष्ट रूप से माना और समझा गया है कि यदि कंपनी ने दायित्व को विवादित किया है या उसे स्वीकार नहीं किया है तो कोई भी मतभेद या विवाद माध्यस्थम् के लिए निर्देशित किए जाने योग्य नहीं होगा । उच्च न्यायालय ने यह राय अभिव्यक्त करके गंभीर त्रुटि की है कि भाग 2 और भाग 3 के बीच असंगति है । उक्त विश्लेषण **वल्कन इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** (उपर्युक्त) वाले मामले में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ के विनिश्चय में अधिकथित सिद्धांतों के प्रतिकूल है । अतः, प्रत्यर्थी जिस एकमात्र उपचार का अवलंब ले सकता है वह यह है कि वह अपनी शिकायतों के शमन के लिए सिविल वाद संस्थित करे । यदि दो मास के भीतर सिविल वाद फाइल कर दिया जाता है तो परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 14 का लाभ उसके फायदे में लागू हो जाएगा ।

27. उपर्युक्त आधारभूत कारणों को ध्यान में रखते हुए, अपील मंजूर की जाती है और उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश अपास्त किया जाता है । मामले के तथ्यों और उसकी परिस्थितियों में, खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील मंजूर की गई ।

ग्रो.

पुरूषोतम सुपुत्र तुलसीराम बड़वेक

बनाम

अनिल और अन्य

2 मई, 2018

न्यायमूर्ति अरुण मिश्रा और न्यायमूर्ति उदय उमेश ललित

माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (1996 का 26) – धारा 85 – माध्यस्थम् के लिए निर्देश – 1996 के अधिनियम के प्रवृत्त होने के काफी समय पश्चात् निष्पादित भागीदारी करार में विवादों को माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 के उपबंधों के अनुसार, माध्यस्थम् को निर्देशित करने का अनुबंध – 1996 के नए अधिनियम के प्रवर्तन में आने के पश्चात्, भागीदारी करार में विवादों को 1940 के अधिनियम के अधीन माध्यस्थम् को निर्देशित करने संबंधी अनुबंध का कोई महत्व नहीं होगा किन्तु करार में 1940 के अधिनियम के लागू होने के संबंध में गलत निर्देश करने के कारण संपूर्ण करार अविधिमान्य नहीं हो जाएगा ।

प्रस्तुत मामले में, अपीलार्थी और प्रत्यर्थियों के बीच तारीख 9 नवम्बर, 2005 का एक भागीदारी करार हुआ था । उक्त भागीदारी करार के खंड 15 में यह अनुबंधित है कि भागीदारों के बीच इस विलेख के निर्वचन या भागीदारी कारबार से संसक्त किसी अन्य विषय के संबंध में कोई विवाद होने की दशा में, उसे भारतीय माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 के उपबंधों के अनुसार माध्यस्थम् के लिए निर्देशित किया जाएगा और मध्यस्थ का विनिश्चय अंतिम और सभी भागीदारों पर आबद्धकर होगा । अपीलार्थी ने भागीदारों के पक्ष में तारीख 28 दिसम्बर, 1996 को एक रजिस्ट्रीकृत मुख्तारनामा भी निष्पादित किया था । प्रत्यर्थियों ने, अप्रैल, 2014 में, अपीलार्थी के विरुद्ध घोषणा, नुकसानी, लेखाओं और स्थायी व्यादेश के लिए ज्येष्ठ खंड सिविल न्यायाधीश के न्यायालय में सिविल वाद फाइल किया । अपीलार्थी ने सूचना की प्राप्ति के तुरंत पश्चात्, भागीदारी करार के उपर्युक्त खंड 15 को ध्यान में रखते हुए विवाद को माध्यस्थम् के लिए निर्देशित करने हेतु माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 8 के अधीन एक आवेदन फाइल किया । मामले का विरोध किया गया था । विचारण न्यायालय ने उक्त आवेदन को नामंजूर कर दिया । यह अभिनिर्धारित किया गया था कि उपर्युक्त खंड 15 अस्पष्ट है, यह कि

उसमें इस संबंध में कोई निर्देश नहीं है कि मध्यस्थ कौन होना चाहिए, यह कि मध्यस्थ के चयन के बारे में कोई उल्लेख नहीं किया गया है और यह कि यह विवाद 1996 के अधिनियम की धारा 8 के अर्थान्तर्गत करार की विषयवस्तु गठित नहीं करता है । अपीलार्थी द्वारा उच्च न्यायालय में सिविल पुनरीक्षण आवेदन फाइल करके मामले को आगे बढ़ाया गया । उच्च न्यायालय ने यह मत अपनाया कि सुसंगत खंड से यह उपदर्शित होता है कि पक्षकारों के बीच होने वाले विवादों को भारतीय माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 के उपबंधों के अनुसार माध्यस्थम् के लिए निर्देशित किया जाएगा हालांकि भागीदारी करार 1996 के अधिनियम के अधिनियमित होने के काफी समय पश्चात् किया गया था । उच्च न्यायालय ने उच्चतम न्यायालय की इन पूर्व मताभिव्यक्तियों का अवलंब लिया कि पक्षकार नए अधिनियम के प्रवृत्त होने से पूर्व भी और जब कि पुराना अधिनियम अब भी लागू होता है, नए अधिनियम के लागू होने के बारे में करार कर सकते हैं । धारा 85(2)(क) की भाषा में ऐसी कोई बात नहीं है जो पक्षकारों को इस प्रकार करार करने से वर्जित करती हो । तथापि, उसमें ऐसा वर्जन है कि वे नए अधिनियम के प्रवृत्त हो जाने के पश्चात्, जब कि पुराने अधिनियम के अधीन माध्यस्थम् कार्यवाहियां आरंभ न हुई हों हालांकि माध्यस्थम् करार पुराने अधिनियम के अधीन हो, पुराने अधिनियम के लागू होने के बारे में करार नहीं कर सकते हैं और यदि 1996 के अधिनियम के प्रवृत्त होने तक 1940 के अधिनियम के अधीन माध्यस्थम् कार्यवाहियां आरंभ नहीं हुई थीं तो उन्हें उसके पश्चात् आरंभ नहीं किया जा सकता था । इसके अलावा, यह मत व्यक्त किया गया है कि 1996 के अधिनियम के प्रवृत्त होने के पश्चात् 1940 के अधिनियम के लागू होने के बारे में करार करने के संबंध में वर्जन है । उच्च न्यायालय ने अपीलाधीन निर्णय द्वारा इस चुनौती को अस्वीकार कर दिया और उक्त सिविल पुनरीक्षण को खारिज कर दिया । उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध विशेष इजाजत लेकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की गई । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – सही दृष्टिकोण अनुकल्पी विवाद समाधान की स्कीम को कार्यान्वित करने संबंधी उद्देश्य का संवर्धन करना होगा । इस निष्कर्ष पर पहुंचना अतिश्योक्तिपूर्ण होगा कि उसमें कोई भी माध्यस्थम् नहीं हो सकेगा । माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 के लागू होने के प्रयोजनों के लिए जो कुछ तात्विक है वह पक्षकारों के बीच विवादों को माध्यस्थम् को निर्देशित करने का करार करना है । यदि ऐसा कोई माध्यस्थम् करार

होता है जो कि 1996 के अधिनियम की धारा 7 की अपेक्षाओं को पूरा करता है और यदि 1996 के अधिनियम के प्रवृत्त होने से पूर्व माध्यस्थम् कार्यवाही आरंभ हो गई है तो मामला पूर्णतः 1996 के अधिनियम के उपबंधों द्वारा शासित होगा । माध्यस्थम् करार में 1940 के अधिनियम के प्रति किसी निर्देश का कोई महत्व नहीं होगा और वह मामला पक्षकारों के मूलभूत आशय से संगत 1996 के अधिनियम के निबंधनानुसार ही माध्यस्थम् के लिए निर्देशित किया जाएगा, जैसा कि विवादों को माध्यस्थम् के लिए निर्देशित करने संबंधी किए गए माध्यस्थम् करार से प्रत्यक्ष है । इस दृष्टि से उच्च न्यायालय का यह मत व्यक्त करना सही नहीं था कि प्रस्तुत मामले में बिल्कुल भी कोई माध्यस्थम् नहीं हो सकेगा । ऐसी स्थितियों में, जहां सुसंगत खंड में "भारतीय माध्यस्थम् अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों के उपबंधों" के लागू होने के प्रतिनिर्देश किया गया है, वहां धारा 85(2)(क) के बल पर उन माध्यस्थम् कार्यवाहियों की बाबत, जो 1996 के अधिनियम के प्रवृत्त होने से पूर्व प्रारंभ नहीं हुई हैं, शासित करने वाले उपबंध केवल 1996 के अधिनियम के उपबंध ही होंगे । इसी तर्क के आधार पर यदि किसी ऐसे माध्यस्थम् करार में, जो कि 1996 के अधिनियम के प्रवृत्त हो जाने के पश्चात् किया गया है, लागू होने वाले उपबंधों के बारे में भारतीय माध्यस्थम् अधिनियम या 1940 के अधिनियम के अधीन वाले उपबंधों के प्रतिनिर्देश किया गया है तो ऐसा अनुबंध निष्प्रभावी होगा और मामला 1996 के अधिनियम के उपबंधों के अधीन शासित होना चाहिए । 1940 के अधिनियम के लागू होने के बारे में किया गया गलत निर्देश या वर्णन संपूर्ण माध्यस्थम् करार को अविधिमान्य नहीं बना देगा । ऐसे अनुबंध को 1996 के अधिनियम की धारा 85 के प्रकाश में पढ़ा जाना होगा और ऐसे संबंध को शासित करने वाले सिद्धांत 1996 के अधिनियम के अधीन और उसके अनुरूप होने चाहिएं । प्रस्तुत मामले में 1996 के अधिनियम की धारा 7 में यथा अनुबंधित "माध्यस्थम् करार" की अपेक्षाओं की पूर्णतः पूर्ति हो गई है और न ही ऐसा कोई सुझाव दिया गया है कि वह करार असम्यक् प्रभाव, कपट, प्रपीड़न या दुर्व्यपदेशन के क्षेत्र के अंतर्गत आने वाली किन्हीं परिस्थितियों के कारण दूषित हो गया है । इन परिस्थितियों में, प्रयास यह किया जाना चाहिए कि विवादों का अनुकल्पी विवाद समाधान प्रक्रिया द्वारा समाधान करने संबंधी पक्षकारों के आशय को आगे बढ़ाया जाए । अतः, उच्च न्यायालय ने पूर्णतः त्रुटि कारित की है । उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश को अपास्त किया जाता है और अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई अपील को मंजूर की जाती है । इस

मामले पर विचारण न्यायालय द्वारा 1996 के अधिनियम की धारा 8 के निबंधनानुसार कार्यवाही की जाएगी । पक्षकार, माध्यस्थम् करार को प्रभावशील बनाने के लिए तारीख 14 मई, 2018 को विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित होंगे । (पैरा 16, 17 और 19)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2006]	ए. आई. आर. 2006 पटना 1 : **राजन कुमार वर्मा और एक अन्य** बनाम **सच्चिदानंद सिंह** ;	5,18
[2000]	(2000) 6 एस. सी. सी. 359 : **कुन्हयाम्मद और अन्य** बनाम **केरल राज्य और एक अन्य** ;	18
[1999]	(1999) 9 एस. सी. सी. 334 : **थाइसेन स्टालुनियन जी. एम. बी. एच.** बनाम **स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड** ;	5,14,,15
[1996]	(1996) 6 एस. सी. सी. 716 : **एम. एम. टी. सी. लिमिटेड** बनाम **स्टरलाइट इंडस्ट्रीज़ (इंडिया) लिमिटेड** ;	12,13,16,17,18
[1986]	(1986) 4 एस. सी. सी. 146 : **इंडियन ऑयल कारपोरेशन लिमिटेड** बनाम **बिहार राज्य और अन्य** ।	18

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2018 की सिविल अपील सं. 4664.

2015 के सिविल पुनरीक्षण आवेदन सं. 88 में मुम्बई उच्च न्यायालय की नागपुर न्यायपीठ के तारीख 10 दिसम्बर, 2015 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री चिराग एम. श्रॉफ, सुश्री नेहा सांगवान और सुश्री संजना नांगिया

प्रत्यर्थी की ओर से श्री अमोल निर्मलकुमार सूर्यवंशी

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति उदय उमेश ललित ने दिया ।

न्या. ललित – इजाजत दी जाती है ।

2. इस अपील में 2015 के सिविल पुनरीक्षण आवेदन सं. 88 में मुम्बई उच्च न्यायालय की नागपुर न्यायपीठ द्वारा अपने तारीख 10 दिसम्बर, 2015 के निर्णय और आदेश द्वारा यथा अभिपुष्ट अपीलार्थी द्वारा माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (जिसे संक्षेप में "1996 का अधिनियम" कहा गया है) की धारा 8 के अधीन फाइल किए गए आवेदन को अस्वीकार किए जाने को चुनौती दी गई है ।

3. अपीलार्थी और प्रत्यर्थियों के बीच तारीख 9 नवम्बर, 2005 का एक भागीदारी करार हुआ था । उक्त भागीदारी करार का खंड 15 निम्नलिखित रूप में है :–

> "15. यह कि भागीदारों के बीच इस विलेख के निर्वचन या भागीदारी कारबार से संसक्त किसी अन्य विषय के संबंध में कोई विवाद होने की दशा में, उसे भारतीय माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 के उपबंधों के अनुसार माध्यस्थम् के लिए निर्देशित किया जाएगा और मध्यस्थ का विनिश्चय अंतिम और सभी भागीदारों पर आबद्धकर होगा ।"

4. अपीलार्थी ने भागीदारों के पक्ष में तारीख 28 दिसम्बर, 1996 को एक रजिस्ट्रीकृत मुख्तारनामा भी निष्पादित किया था । प्रत्यर्थियों ने, अप्रैल, 2014 में, अपीलार्थी के विरुद्ध घोषणा, नुकसानी, लेखाओं और स्थायी व्यादेश के लिए ज्येष्ठ खंड सिविल न्यायाधीश, भंदारा के न्यायालय में 2014 का विशेष सिविल वाद सं. 16 फाइल किया । अपीलार्थी ने, सूचना की प्राप्ति के तुरंत पश्चात्, भागीदारी करार के उपर्युक्त खंड 15 को ध्यान में रखते हुए विवाद को माध्यस्थम् के लिए निर्देशित करने हेतु 1996 के अधिनियम की धारा 8 के अधीन एक आवेदन फाइल किया । मामले का विरोध किया गया था । विचारण न्यायालय ने अपने तारीख 5 जनवरी, 2015 के आदेश द्वारा उक्त आवेदन को नामंजूर कर दिया । यह अभिनिर्धारित किया गया था कि उपर्युक्त खंड 15 अस्पष्ट है, यह कि उसमें इस संबंध में कोई निर्देश नहीं है कि मध्यस्थ कौन होना चाहिए, यह कि मध्यस्थ के चयन के बारे में कोई उल्लेख नहीं किया गया है और यह कि यह विवाद 1996 के अधिनियम की धारा 8 के अर्थान्तर्गत करार की विषयवस्तु गठित नहीं करता है ।

5. अपीलार्थी द्वारा उच्च न्यायालय में 2015 का सिविल पुनरीक्षण आवेदन सं. 88 फाइल करके मामले को आगे बढ़ाया गया । उच्च न्यायालय ने यह मत अपनाया कि सुसंगत खंड से यह उपदर्शित होता है

कि पक्षकारों के बीच होने वाले विवादों को भारतीय माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 (जिसे संक्षेप में "1940 का अधिनियम" कहा गया है) के उपबंधों के अनुसार माध्यस्थम् के लिए निर्देशित किया जाएगा हालांकि भागीदारी करार 1996 के अधिनियम के अधिनियमित होने के काफी समय पश्चात् किया गया था । उच्च न्यायालय ने **थाइसेन स्टालुनियन जी. एम. बी. एच.** बनाम **स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय के पैरा 35 के एक भाग और **राजन कुमार वर्मा और एक अन्य** बनाम **सच्चिदानंद सिंह**[2] वाले मामले में पटना उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश के विनिश्चय का अवलंब लेते हुए पैरा 6 और पैरा 7 में निम्नलिखित मताभिव्यक्ति की :–

> "उच्चतम न्यायालय ने थाइसेन स्टालुनियन जी. एम. बी. एच. (उपर्युक्त) वाले मामले में अपने निर्णय के पैरा 35 में निम्न प्रकार मत व्यक्त किया है –
>
> > '35. पक्षकार नए अधिनियम के प्रवृत्त होने से पूर्व भी और जब कि पुराना अधिनियम अब भी लागू होता है, नए अधिनियम के लागू होने के बारे में करार कर सकते हैं । धारा 85(2)(क) की भाषा में ऐसी कोई बात नहीं है जो पक्षकारों को इस प्रकार करार करने से वर्जित करती हो । तथापि, उसमें ऐसा वर्जन है कि वे नए अधिनियम के प्रवृत्त हो जाने के पश्चात्, जब कि पुराने अधिनियम के अधीन माध्यस्थम् कार्यवाहियां आरंभ न हुई हों हालांकि माध्यस्थम् करार पुराने अधिनियम के अधीन हो, पुराने अधिनियम के लागू होने के बारे में करार नहीं कर सकते हैं ।'
>
> उच्चतम न्यायालय की उपर्युक्त मताभिव्यक्तियों से यह दृष्टव्य है कि यदि 1996 के अधिनियम के प्रवृत्त होने तक 1940 के अधिनियम के अधीन माध्यस्थम् कार्यवाहियां आरंभ नहीं हुई थीं तो उन्हें उसके पश्चात् आरंभ नहीं किया जा सकता था । इसके अलावा, यह मत व्यक्त किया गया है कि 1996 के अधिनियम के प्रवृत्त होने के पश्चात् 1940 के अधिनियम के लागू होने के बारे में करार करने के संबंध में वर्जन है ।

---

[1] (1999) 9 एस. सी. सी. 334.

[2] ए. आई. आर. 2006 पटना 1.

राजन कुमार वर्मा (उपर्युक्त) वाले मामले में पटना उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा अपनाया गया समरूप मत, उच्चतम न्यायालय के समक्ष उसकी चुनौती को अस्वीकार किए जाने के कारण कायम होता है ।"

इस प्रकार उच्च न्यायालय ने अपने अपीलाधीन निर्णय द्वारा चुनौती को अस्वीकार कर दिया और उक्त सिविल पुनरीक्षण खारिज कर दिया ।

6. इस अपील के समर्थन में, विद्वान् अधिवक्ता श्री चिराग एम. श्रॉफ ने इस प्रकार निवेदन किया :–

(क) तारीख 9 नवम्बर, 2005 के भागीदारी विलेख में 1940 के अधिनियम के प्रति निर्देश को आवश्यक रूप से करार पर हस्ताक्षर करने की तारीख को यथा-प्रचलित माध्यस्थम् प्रक्रिया को निर्देशित करना होगा ।

(ख) 1940 के अधिनियम का उल्लेख करने से पक्षकारों का यह आशय विफल नहीं हो जाएगा कि विवाद समाधान प्रक्रिया के रूप में माध्यस्थम् का सहारा लिया जाएगा ।

7. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् अधिवक्ता श्री अमोल निर्मलकुमार सूर्यवंशी ने यह निवेदन किया कि यह प्रश्न कि पक्षकारों के बीच जो संबंध है, उसे 1996 का अधिनियम या 1940 का अधिनियम शासित करेगा, इतना मूलभूत था कि उस निमित्त की गई गलतियों से संपूर्ण माध्यस्थम् खंड ही अविधिमान्य हो जाएगा और इस प्रकार निचले न्यायालयों का अपीलार्थी द्वारा किए गए निवेदनों को नामंजूर करना न्यायोचित था ।

8. प्रस्तुत मामले में, यद्यपि भागीदारी करार 1996 के अधिनियम के प्रवृत्त होने के पश्चात् किया गया था तथापि, सुसंगत खंड में "भारतीय माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 के उपबंधों के अनुसार माध्यस्थम् के प्रति निर्देश किया गया है" । प्रत्यर्थी का पक्षकथन यह नहीं है कि पक्षकारों के बीच किया गया करार कपट, प्रपीड़न, अनुचित प्रभाव या दुर्व्यपदेशन के कारण किसी त्रुटि से ग्रस्त था । तथापि, जो कुछ अनुमानित है वह यह है कि 1940 के अधिनियम के निबंधनानुसार माध्यस्थम् के प्रति निर्देश एक ऐसी मूलभूत गलती है जिससे संपूर्ण माध्यस्थम् खंड अविधिमान्य हो जाएगा और इस प्रकार माध्यस्थम् के प्रति बिल्कुल भी कोई निर्देश नहीं हो सकेगा ।

9. "माध्यस्थम् करार" पद को 1996 के अधिनियम की धारा 7 में निम्नलिखित रूप में परिभाषित किया गया है :–

"7. **माध्यस्थम् करार** – (1) इस भाग में "माध्यस्थम् करार" से पक्षकारों द्वारा ऐसे सभी या कतिपय विवाद माध्यस्थम् के लिए निवेदित करने के लिए किया गया करार अभिप्रेत है जो परिनिश्चित विधिक संबंध, चाहे संविदात्मक हो या न हो, की बाबत उनके बीच उद्भूत हुए हैं या हो सकते हैं ।

(2) माध्यस्थम् करार किसी संविदा में माध्यस्थम् खंड के रूप में या किसी पृथक् करार के रूप में हो सकता है ।

(3) माध्यस्थम् करार लिखित रूप में होगा ।

(4) माध्यस्थम् करार लिखित रूप में है, यदि वह –

(क) पक्षकारों द्वारा हस्ताक्षरित किसी दस्तावेज में ;

(ख) पत्रों के आदान-प्रदान, टैलेक्स, तार या दूरसंचार के ऐसे अन्य साधन में (जिसके अंतर्गत इलैक्ट्रानिक साधनों के माध्यम से संचार भी है) जो करार के अभिलेख की व्यवस्था करते हैं; या

(ग) दावे और प्रतिरक्षा के कथनों के आदान-प्रदान में, जिनमें करार की विद्यमानता का एक पक्षकार द्वारा अभिकथन किया गया है और दूसरे पक्षकार द्वारा उससे इनकार नहीं किया गया है,

अंतर्विष्ट हैं ।

(5) माध्यस्थम् खंड वाले किसी दस्तावेज़ के प्रति किसी संविदा में निर्देश माध्यस्थम् करार का गठन करेगा यदि संविदा लिखित रूप में है और निर्देश ऐसा है जो उस माध्यस्थम् खंड को संविदा का भाग बनाता है ।"

10. इस प्रकार, किसी माध्यस्थम् खंड के लिए मूलभूत अपेक्षाएं ये हैं – (क) पक्षकारों के बीच ऐसे सभी या कतिपय विवाद माध्यस्थम् के लिए निवेदित करने के लिए किया गया करार, जो परिनिश्चित विधिक संबंध की बाबत उनके बीच उद्भूत हुए हैं या भविष्य में उद्भूत हो सकते हैं ; (ख) ऐसा करार लिखित में होगा । दूसरी अपेक्षा दस्तावेजों या संचार के आदान-प्रदान से स्पष्ट हो सकती है । धारा 7 में यथा अनुबंधित ये अपेक्षाएं

निश्चित रूप से प्रस्तुत मामले में पूरी हो गई हैं । तथापि, प्रश्न यह शेष है कि क्या करार में 1940 के अधिनियम के प्रति निर्देश का कोई प्रभाव होगा । इस प्रक्रम पर हम 1996 के अधिनियम की धारा 85 के उपबंधों पर विचार कर सकते हैं और वह धारा निम्नलिखित रूप में है :–

> "**85. निरसन और व्यावृत्ति** – (1) माध्यस्थम् (प्रोटोकोल और अभिसमय) अधिनियम, 1937 (1937 का 6), माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 (1940 का 10) और विदेशी पंचाट (मान्यता और प्रवर्तन) अधिनियम, 1961 (1961 का 45) इसके द्वारा निरसित किए जाते हैं ।
>
> (2) ऐसे निरसन के होते हुए भी, –
>
> (क) उक्त अधिनियमितियों के उपबंध, ऐसी माध्यस्थम् कार्यवाहियों के संबंध में, जो इस अधिनियम के प्रारंभ के पूर्व आरंभ हुई थीं तब तक लागू होंगे जब तक कि पक्षकार द्वारा अन्यथा करार न किया गया हो किन्तु यह अधिनियम ऐसी माध्यस्थम् कार्यवाहियों के संबंध में लागू होगा जो इस अधिनियम के प्रवृत्त होने पर या उसके पश्चात् प्रारंभ हुई हैं ;
>
> (ख) उक्त अधिनियमितियों के अधीन बनाए गए सभी नियम और प्रकाशित अधिसूचनाएं उस विस्तार तक जिस तक वे इस अधिनियम के विरुद्ध नहीं हैं, क्रमशः इस अधिनियम के अधीन की गई या जारी की गई समझी जाएंगी ।"

11. धारा 85 की उपधारा (1) द्वारा तीन अधिनियमितियों को निरसित कर दिया गया है, जिनके अंतर्गत 1940 का अधिनियम भी है । उपधारा (2) में अन्य बातों के साथ-साथ यह अनुबंधित है कि ऐसे निरसन के होते हुए भी, निरसित अधिनियमित, अर्थात् 1940 का अधिनियम, ऐसी माध्यस्थम् कार्यवाहियों के संबंध में, जो 1996 के अधिनियम के प्रवृत्त होने के पूर्व आरंभ हुई थीं तब तक लागू होगा जब तक कि पक्षकार द्वारा अन्यथा करार न किया गया हो । उक्त उपधारा (2) के प्रथम खंड के दूसरे भाग में इसके आगे यह अनुबंधित किया गया है कि ऐसे निरसन के होते हुए भी 1996 के अधिनियम के उपबंध ऐसी माध्यस्थम् कार्यवाहियों के संबंध में लागू होंगे जो 1996 के अधिनियम के प्रवृत्त होने पर या उसके पश्चात् प्रारंभ हुई हैं ।

12. **एम. एम. टी. सी. लिमिटेड** बनाम **स्टरलाइट इंडस्ट्रीज़**

(इंडिया) लिमिटेड[1] वाले मामले में माध्यस्थम् करार 1996 के अधिनियम के प्रारंभ होने से पूर्व की तारीख का था । तथापि, माध्यस्थम् कार्यवाहियां 1996 के प्रवृत्त होने के पश्चात् प्रारंभ हुई थीं और इस प्रकार इस न्यायालय द्वारा पैरा 11 में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि 1996 के अधिनियम के उपबंध लागू होंगे । इसके अलावा, माध्यस्थम् खंड में दो मध्यस्थों का नियुक्त किया जाना अनुध्यात था और यह प्रश्न भी उद्भूत हुआ कि क्या मध्यस्थों की नियुक्ति प्रश्नगत खंड के अनुरूप होनी थी या 1996 के अधिनियम के उपबंधों के निबंधनानुसार होनी थी । उक्त विनिश्चय के पैरा सं. 1, 4, 5, 8, 10, 11, 12 और 13 को सुगम निर्देश के लिए इसमें इसके नीचे उद्धृत किया जाता है :–

> "1. विनिश्चयार्थ अंतर्वलित प्रश्न यह है कि माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (जिसे संक्षेप में "नया अधिनियम" कहा गया है) का प्रस्तुत मामले में नए अधिनियम के प्रारंभ से पूर्व किए गए माध्यस्थम् करार पर क्या प्रभाव है । पक्षकारों के बीच हुए तारीख 14 दिसम्बर, 1993 को हुए करार का खंड 7 निम्नलिखित रूप में है –
>
> > "7. इस करार की संरचना, इसके अर्थान्वयन और प्रवर्तन या प्रभाव के अधीन या के कारण या के संबंध में उद्भूत होने वाला कोई प्रश्न या विवाद या इस करार के भंग की दशा में, विवादग्रस्त मामला मध्यस्थ को निर्देशित किया जाएगा । दोनों पक्षकार एक-एक मध्यस्थ नामनिर्दिष्ट करेंगे और मध्यस्थ निर्देश पर कार्यवाही करने से पूर्व एक अधिनिर्णायक नियुक्त करेंगे । मध्यस्थों का विनिश्चय या उनके सहमत न होने की दशा में, अधिनिर्णायक का विनिश्चय अंतिम और पक्षकारों पर आबद्धकर होगा । कार्यवाहियों के लिए भारतीय माध्यस्थम् अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों के उपबंध लागू होंगे । यथास्थिति, मध्यस्थ या अधिनिर्णायक, पक्षकारों की सहमति से पंचाट करने के लिए समय-समय पर समय बढ़ाने के लिए हकदार होगा । मध्यस्थ/अधिनिर्णायक एक सकारण पंचाट करेंगे । माध्यस्थम् का स्थान मुम्बई होगा ।"
>
> (जोर देने के लिए रेखांकित)

4. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् महान्यायवादी की दलील यह है

---

[1] (1996) 6 एस. सी. सी. 716.

कि ऐसा माध्यस्थम् करार, जिसमें सम संख्या में मध्यस्थों की नियुक्ति के लिए उपबंध किया गया है, नए अधिनियम की धारा 10(1) के कारण एक विधिमान्य करार नहीं है और इसलिए ऐसे मामले में एकमात्र उपचार वाद द्वारा न कि माध्यस्थम् द्वारा उपलब्ध है । इस कारण, उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि धारा 10 की उपधारा (2) लागू नहीं होती है चूंकि उपधारा (1) के अनुसार मध्यस्थों की संख्या अवधारित करने में कोई असफलता नहीं है । विद्वान् महान्यायवादी का एक अन्य तर्क यह था कि धारा 10, माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 (जिसे संक्षेप में '1940 का अधिनियम' कहा गया है) की पहली अनुसूची के पैरा 2 से विचलन है, जो कि निम्नलिखित रूप में है :–

> '2. यदि निर्देश सम संख्या वाले मध्यस्थों को किया जाता है तो मध्यस्थ अपनी-अपनी नियुक्ति की अंतिम तारीख से एक मास के अपश्चात् एक अधिनिर्णायक नियुक्त करेंगे ।'

5. प्रत्युत्तर में, प्रत्यर्थी की ओर से विद्वान् काउन्सेल श्री दवे ने यह दलील दी कि नए अधिनियम की धारा 10 और 1940 के अधिनियम के तत्स्थानी उपबंध के बीच ऐसी कोई असंगति नहीं है, दोनों उपबंध सारवान् रूप से एकसमान हैं । विद्वान् काउन्सेल ने यह दलील दी कि नए अधिनियम के उपबंधों का अर्थान्वयन अनुकल्पी विवाद समाधान की स्कीम को कार्यान्वित करने संबंधी उद्देश्य के संवर्धन के लिए किया जाना चाहिए; और नए अधिनियम का अर्थान्वयन पूर्ववर्ती माध्यस्थम् करारों के प्रवर्तन को समर्थ बनाने के लिए किया जाना चाहिए । इस बात पर जोर दिया गया था कि चूंकि प्रत्येक पक्षकार ने अपना-अपना मध्यस्थ नामनिर्देशित कर दिया था इसलिए तीसरे मध्यस्थ की नियुक्ति धारा 11(3) के अनुसार की जानी थी और ऐसा करने में असफल रहने पर नए अधिनियम के अधीन पारिणामिक परिणाम लागू होंगे । विद्वान् काउन्सेल ने यह दलील दी कि मध्यस्थों की संख्या से संबंधित उपबंध एक मशीनरी उपबंध है और इससे माध्यस्थम् करार की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है जिसका अवधारण नए अधिनियम की धारा 7 के अनुसार किया जाना है ।

8. धारा 7 की उपधारा (3) में यह अपेक्षित है कि माध्यस्थम् करार लिखित में होना चाहिए और उपधारा (4) में उस लेखन के प्रकार को वर्णित किया गया है । धारा 7 में ऐसी कोई बात नहीं है

जिससे माध्यस्थम् करार के भागस्वरूप मध्यस्थों की संख्या संबंधी अपेक्षा उपदर्शित होती हो । इस प्रकार, किसी माध्यस्थम् करार की विधिमान्यता उसमें विनिर्दिष्ट मध्यस्थों की संख्या पर निर्भर नहीं करती है । मध्यस्थों की संख्या के संबंध में धारा 10 में पृथक् रूप से उपबंध किया गया है जो कि माध्यस्थम् करार के कार्यकरण के लिए मशीनरी उपबंध का एक भाग है । अतः, यह स्पष्ट है कि ऐसा माध्यस्थम् करार, जिसमें मध्यस्थों की सम संख्या विनिर्दिष्ट की गई हो, नए अधिनियम के अधीन माध्यस्थम् करार को अविधिमान्य बनाने का कोई आधार नहीं हो सकता है, जैसी कि विद्वान् महान्यायवादी द्वारा दलील दी गई है ।

10. माध्यस्थम् खंड में यह उपबंधित है कि प्रत्येक पक्षकार एक मध्यस्थ नामनिर्देशित करेगा और दोनों मध्यस्थ इसके बाद निर्देश के संबंध में कार्यवाही करने से पूर्व एक अधिनिर्णायक नियुक्त करेंगे । धारा 11(3) में दोनों मध्यस्थों से यह अपेक्षा की गई है कि वे तीसरे मध्यस्थ या अधिनिर्णायक की नियुक्ति करें । इस संबंध में कोई संदेह नहीं हो सकता है कि प्रस्तुत मामले में माध्यस्थम् करार माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 की पहली अनुसूची के पैरा 2 में अंतर्विष्ट विवक्षित शर्त के अनुरूप है, जिसमें उन मध्यस्थों से, जिनमें से एक-एक मध्यस्थ दोनों पक्षों में से प्रत्येक द्वारा नियुक्त किया गया हो, उनकी अपनी-अपनी नियुक्तियों की अंतिम तारीख से एक मास के अपश्चात् एक अधिनिर्णायक नियुक्त करने की अपेक्षा की गई है ।

11. प्रश्न यह है कि क्या नए अधिनियम में ऐसी कोई बात है जो ऐसे करार को अप्रवर्तनीय बनाती है ? हमें नए अधिनियम में ऐसा कोई संकेत प्रतीत नहीं होता है । इस संबंध में कोई विवाद नहीं है कि प्रस्तुत मामले में माध्यस्थम् कार्यवाही नए अधिनियम के प्रवृत्त होने के पश्चात् आरंभ हुई थी और इसलिए उसे नया अधिनियम लागू होता है । माध्यस्थम् करार में इस शर्त को देखते हुए कि दोनों मध्यस्थ निर्देश के संबंध में कार्यवाही करने से पूर्व तीसरे मध्यस्थ या अधिनिर्णायक की नियुक्ति करेंगे, धारा 10 की उपधारा (1) की अपेक्षा पूरी हो जाती है और उसकी उपधारा (2) लागू नहीं होती है । जैसा कि इससे पूर्व कथन किया गया है, करार, अधिनियम की धारा 7 की अपेक्षा को पूरा करता है और इसलिए वह एक विधिमान्य माध्यस्थम् करार है । अतः, मध्यस्थों की नियुक्ति नए अधिनियम की धारा 11 द्वारा शासित होनी चाहिए ।

12. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि दोनों पक्षकारों में से प्रत्येक पक्षकार ने अपना-अपना मध्यस्थ नियुक्त किया था, अर्थात् न्यायमूर्ति एम. एन. चंदूरकर (सेवानिवृत्त) और न्यायमूर्ति एस. पी. सपरा (सेवानिवृत्त), धारा 11(3) लागू होती थी और नियुक्त किए गए दोनों मध्यस्थों से पीठासीन मध्यस्थ के रूप में कार्य करने के लिए एक तीसरे मध्यस्थ की नियुक्ति करना अपेक्षित था, जिसके न हो सकने पर उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति या उसके द्वारा पदाभिहित किसी व्यक्ति या संस्था से यह अपेक्षित होगा कि वह नए अधिनियम की धारा 11(4)(ख) की अपेक्षानुसार तीसरे मध्यस्थ की नियुक्ति करें । चूंकि धारा 11(3) में विहित प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है इसलिए धारा 11 में उपबंधित आगामी परिणाम अवश्य लागू होने चाहिएं ।

13. तद्नुसार, हम यह निदेश देते हैं कि नियुक्त किए गए दोनों मध्यस्थों के अपनी-अपनी नियुक्ति की तारीख से तीस दिन के भीतर तीसरे मध्यस्थ की नियुक्ति करने में असफल रहने के कारण उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति को नए अधिनियम की धारा 11(4)(ख) के अधीन तीसरे मध्यस्थ की नियुक्ति करनी है । उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा दिए गए निदेश को इस आशय तक प्रतिस्थापित किया जाता है ।"

13. **एम. एम. टी. सी.** (उपर्युक्त) वाले मामले में एक नियुक्ति प्रक्रिया अनुध्यात की गई थी, जो कि 1996 के अधिनियम के उपबंधों के यथार्थतः अनुरूप नहीं थी और करार यह किया गया था – "कार्यवाहियों को भारतीय माध्यस्थम् अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों के उपबंध लागू होंगे" । इस प्रकार, 1940 के अधिनियम के उपबंधों के प्रति निर्देश किया गया था । उक्त विनिश्चय का पठन करने पर यह दर्शित होता है कि जो कुछ निर्णायक था वह माध्यस्थम् कार्यवाहियों के प्रारंभ होने की तारीख थी और यदि ऐसा प्रारंभ 1996 के अधिनियम के प्रवृत्त होने के पश्चात् था तो उस स्थिति को जो उपबंध शासित करेंगे वह 1996 के अधिनियम के उपबंध होंगे । नियुक्ति प्रक्रिया के बारे में भी यह निदेश दिया गया था कि वह 1996 के अधिनियम के अनुरूप होनी चाहिए । मूलभूत प्रश्न यह पाया गया था कि क्या 1996 के अधिनियम की धारा 7 के निबंधनानुसार लिखित में कोई माध्यस्थम् करार हुआ था । पैरा 5 में किए गए निवेदन को स्वीकार करने पर यह दर्शित होगा कि 1996 के अधिनियम का अर्थान्वयन इस प्रकार किया जाना चाहिए जिससे कि पूर्ववर्ती माध्यस्थम् करार के

प्रवर्तन को समर्थ बनाया जा सके ।

तर्कसम्मत रूप से, भले ही किसी विशेष मामले में, 1996 के अधिनियम के प्रवृत्त होने से पूर्व किए गए करार में माध्यस्थम् के प्रति निर्देश 1940 के अधिनियम के निबंधनानुसार था और यदि 1996 के अधिनियम के प्रवृत्त होने से पूर्व माध्यस्थम् कार्यवाहियां प्रारंभ नहीं हुई थी, तो भी केवल 1996 के अधिनियम के उपबंध ही ऐसी स्थिति को शासित करेंगे । ऐसे मामलों में "भारतीय माध्यस्थम् अधिनियम" या "1940 के अधिनियम के अधीन माध्यस्थम्" के प्रति निर्देश करने का कोई परिणाम नहीं होगा और मामला तब भी 1996 के अधिनियम के अधीन शासित होगा । तब क्या इससे कोई अंतर पड़ेगा, यदि 1996 के अधिनियम के पश्चात् किए गए किसी करार में पक्षकारों द्वारा करार में किया गया निर्देश 1940 के अधिनियम के निबंधनानुसार माध्यस्थम् के लिए था ।

14. **थाइसेन** (उपर्युक्त) वाले मामले में तीन अपीलों पर एक-साथ विचार किया गया था । उन तीन अपीलों में से प्रथम अपील में, माध्यस्थम् कार्यवाहियां 1940 के अधिनियम के अधीन तारीख 14 सितम्बर, 1995 को प्रारंभ हुई थीं और एकमात्र मध्यस्थ द्वारा तारीख 24 सितम्बर, 1997 को पंचाट किया गया था । तारीख 13 अक्तूबर, 1997 को पंचाट को न्यायालय का आदेश बनाने के लिए 1940 के अधिनियम की धारा 14 और 17 के अधीन एक याचिका फाइल की गई थी । इन कार्यवाहियों में, यह निवेदन करते हुए एक आवेदन फाइल किया गया था कि चूंकि 1996 का अधिनियम 25 जनवरी, 1996 को प्रवर्तन में आ गया था इसलिए इस पंचाट के प्रवर्तन की बाबत वह लागू होगा । इन तथ्यों के संदर्भ में, जो प्रश्न विचारार्थ उद्भूत हुआ था वह यह था कि क्या वह पंचाट अपने प्रवर्तन के लिए 1996 के अधिनियम द्वारा शासित होगा या क्या 1940 के अधिनियम के उपबंध लागू होंगे । दूसरे मामले में, 1996 के अधिनियम के प्रवर्तन में आने से पूर्व यूनाइटेड किंगडम में माध्यस्थम् कार्यवाहियां की गई थीं और तारीख 25 फरवरी, 1996 को लन्दन में पंचाट किया गया था तथा उसमें जो प्रश्न उद्भूत हुआ था, वह यह था कि क्या वह पंचाट अपने प्रवर्तन के लिए 1996 के अधिनियम के उपबंधों द्वारा या विदेशी पंचाट अधिनियम द्वारा शासित होता है । तीसरे मामले में, एकमात्र मध्यस्थ को तारीख 4 दिसम्बर, 1993 को निर्देश किया गया था और मध्यस्थ द्वारा तारीख 23 फरवरी, 1996 को, अर्थात् 1996 के अधिनियम के प्रवृत्त होने के पश्चात् पंचाट किया गया था । तीसरे मामले में जो प्रश्न विरचित किया

गया था वह यह था कि जब कि 1996 के अधिनियम की धारा 85(2) के खंड (क) में "जब तक पक्षकारों द्वारा अन्यथा करार न किया गया हो" अभिव्यक्ति का प्रयोग किया गया है, तो क्या पक्षकार 1996 के अधिनियम के प्रवृत्त होने से पूर्व 1996 के अधिनियम के लागू होने के लिए करार कर सकते थे । अतः, इन सभी तीन मामलों में यह तथ्यात्मक स्थिति स्पष्ट थी कि माध्यस्थम् कार्यवाहियां, 1996 के अधिनियम के प्रवृत्त होने से काफी पहले प्रारंभ की गई थीं । इसलिए, 1996 के अधिनियम की धारा 85(2)(क) के बल पर यह अभिनिर्धारित किया गया था कि निरसित अधिनियमितियों के उपबंध, जिसके अंतर्गत 1940 का अधिनियम भी है, ऐसी माध्यस्थम् कार्यवाहियों के संबंध में लागू बने रहेंगे । ये निष्कर्ष उक्त विनिश्चय के पैरा 29 और पैरा 42 से स्पष्ट होते हैं ।

15. तथापि, उच्च न्यायालय ने **थाइसेन** (उपर्युक्त) वाले निर्णय के पैरा 35 में की गई कतिपय मताभिव्यक्तियों का अवलंब लिया । हमारी राय में, इन मताभिव्यक्तियों को उच्च न्यायालय द्वारा पूर्णतः संदर्भ से परे उद्धृत और अवलंबित किया गया है । पैरा 35 में इस न्यायालय ने इस संभाव्यता पर विचार किया था कि 1996 के अधिनियम की धारा 85(2)(क) के निबंधनानुसार, जब कार्यवाहियां 1940 के अधिनियम के अधीन प्रारंभ की गई हों तब पक्षकार 1996 के अधिनियम के लागू होने के संबंध में करार कर सकते थे । इसके पश्चात्, इस न्यायालय ने इस विधिक स्थिति का कथन किया कि यदि माध्यस्थम् कार्यवाहियां 1996 के अधिनियम के प्रवृत्त होने से पूर्व प्रारंभ नहीं हुई थी तो पक्षकार अपने करार द्वारा 1940 के अधिनियम के लागू होने के संबंध में सहमत नहीं हो सकते थे । इस बात पर जोर देने का आशय था कि यदि माध्यस्थम् कार्यवाहियां उस तारीख को प्रारंभ नहीं हुई थीं, जब 1996 का अधिनियम प्रवृत्त हुआ था, तो माध्यस्थम् कार्यवाहियों का कोई भी पश्चात्वर्ती प्रारंभ 1996 के अधिनियम के निबंधनानुसार होना चाहिए था । इन मताभिव्यक्तियों से किसी प्रकार से यह संकेत नहीं मिलता कि, यदि माध्यस्थम् कार्यवाहियां 1996 के अधिनियम के प्रवृत्त होने तक 1940 के अधिनियम के अधीन प्रारंभ नहीं हुई थीं तो वे इसके पश्चात् प्रारंभ नहीं की जा सकेंगी । इन मताभिव्यक्तियों से केवल यह उपदर्शित होता है कि ऐसे मामलों में, 1940 के अधिनियम को लागू नहीं किया जा सकता है और हम यह बात दोहराते हैं कि वहां कोई माध्यस्थम् नहीं हो सकता है ।

16. हमारे मतानुसार, सही दृष्टिकोण अनुकल्पी विवाद समाधान की

स्कीम को कार्यान्वित करने संबंधी उद्देश्य का संवर्धन करना होगा, जैसा **एम. एम. टी. सी.** (उपर्युक्त) वाले मामले में ठीक ही निवेदन किया गया है । इस निष्कर्ष पर पहुंचना अतिश्योक्तिपूर्ण होगा कि उसमें कोई भी माध्यस्थम् नहीं हो सकेगा । जैसा कि **एम. एम. टी. सी.** (उपर्युक्त) वाले मामले से स्पष्ट होता है, 1996 के अधिनियम के लागू होने के प्रयोजनों के लिए जो कुछ तात्विक है वह पक्षकारों के बीच विवादों को माध्यस्थम् को निर्देशित करने का करार करना है । यदि ऐसा कोई माध्यस्थम् करार होता है जो कि 1996 के अधिनियम की धारा 7 की अपेक्षाओं को पूरा करता है और यदि 1996 के अधिनियम के प्रवृत्त होने से पूर्व माध्यस्थम् कार्यवाही आरंभ हो गई है तो मामला पूर्णतः 1996 के अधिनियम के उपबंधों द्वारा शासित होगा । माध्यस्थम् करार में 1940 के अधिनियम के प्रति किसी निर्देश का कोई महत्व नहीं होगा और वह मामला पक्षकारों के मूलभूत आशय से संगत 1996 के अधिनियम के निबंधनानुसार ही माध्यस्थम् के लिए निर्देशित किया जाएगा, जैसा कि विवादों को माध्यस्थम् के लिए निर्देशित करने संबंधी किए गए माध्यस्थम् करार से प्रत्यक्ष है ।

17. इस दृष्टि से उच्च न्यायालय का यह मत व्यक्त करना सही नहीं था कि प्रस्तुत मामले में बिल्कुल भी कोई माध्यस्थम् नहीं हो सकेगा । ऐसी स्थितियों में, जहां सुसंगत खंड में "भारतीय माध्यस्थम् अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों के उपबंधों" के लागू होने के प्रति निर्देश किया गया है, जैसा कि **एम. एम. टी. सी.** (उपर्युक्त) वाले मामले में था, वहां धारा 85(2)(क) के बल पर उन माध्यस्थम् कार्यवाहियों की बाबत, जो 1996 के अधिनियम के प्रवृत्त होने से पूर्व प्रारंभ नहीं हुई हैं, शासित करने वाले उपबंध केवल 1996 के अधिनियम के उपबंध ही होंगे । इसी तर्क के आधार पर यदि किसी ऐसे माध्यस्थम् करार में, जो कि 1996 के अधिनियम के प्रवृत्त हो जाने के पश्चात् किया गया है, लागू होने वाले उपबंधों के बारे में भारतीय माध्यस्थम् अधिनियम या 1940 के अधिनियम के अधीन वाले उपबंधों के प्रति निर्देश किया गया है तो ऐसा अनुबंध निष्प्रभावी होगा और मामला 1996 के अधिनियम के उपबंधों के अधीन शासित होना चाहिए । 1940 के अधिनियम के लागू होने के बारे में किया गया गलत निर्देश या वर्णन संपूर्ण माध्यस्थम् करार को अविधिमान्य नहीं बना देगा । ऐसे अनुबंध को 1996 के अधिनियम की धारा 85 के प्रकाश में पढ़ा जाना होगा और हमारी राय में, ऐसे संबंध को शासित करने वाले सिद्धांत 1996 के अधिनियम के अधीन और उसके अनुरूप होने चाहिएं । जैसा कि पहले मत व्यक्त किया गया है, प्रस्तुत मामले में 1996 के

अधिनियम की धारा 7 में यथा-अनुबंधित "माध्यस्थम् करार" की अपेक्षाओं की पूर्णतः पूर्ति हो गई है और न ही ऐसा कोई सुझाव दिया गया है कि वह करार असम्यक् प्रभाव, कपट, प्रपीड़न या दुर्व्यपदेशन के क्षेत्र के अंतर्गत आने वाली किन्हीं परिस्थितियों के कारण दूषित हो गया है । इन परिस्थितियों में, प्रयास यह किया जाना चाहिए कि विवादों का अनुकल्पी विवाद समाधान प्रक्रिया द्वारा समाधान करने संबंधी पक्षकारों के आशय को आगे बढ़ाया जाए । अतः, उच्च न्यायालय ने पूर्णतः त्रुटि कारित की है ।

18. हमें यह भी अभिनिर्धारित करना चाहिए कि पटना उच्च न्यायालय द्वारा **राजन कुमार वर्मा** (उपर्युक्त) वाले मामले में अपनाए गए दृष्टिकोण को प्रस्तुत विनिश्चय के प्रकाश में देखे जाने की आवश्यकता है । विद्वान् एकल न्यायाधीश के उक्त निर्णय में **एम. एम. टी. सी.** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय का उल्लेख नहीं किया गया है । इस न्यायालय द्वारा तारीख 14 दिसम्बर, 2005 के आदेश द्वारा 2005 की विशेष इजाजत याचिका (सिविल) सं. 25026 का संक्षिप्त निपटारा करने का यह अभिप्राय नहीं होगा कि जहां तक विधि संबंधी घोषणा का संबंध है, उसमें विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण की पुष्टि की गई है (**कुन्हयाम्मद और अन्य** बनाम **केरल राज्य और एक अन्य**[1] तथा **इंडियन ऑयल कारपोरेशन लिमिटेड** बनाम **बिहार राज्य और अन्य**[2] वाले मामले देखिए) ।

19. अतः हम उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश को अपास्त करते हैं और अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई अपील को मंजूर करते हैं । इस मामले पर विचारण न्यायालय द्वारा 1996 के अधिनियम की धारा 8 के निबंधनानुसार कार्यवाही की जाएगी । पक्षकार, माध्यस्थम् करार को प्रभावशील बनाने के लिए तारीख 14 मई, 2018 को विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित होंगे ।

20. अपील उपर्युक्त निबंधनों में मंजूर की जाती है । खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील मंजूर की गई ।

ग्रो.

---

[1] (2000) 6 एस. सी. सी. 359.

[2] (1986) 4 एस. सी. सी. 146.

मुरुगन

बनाम

तमिलनाडु राज्य

2 मई, 2018

न्यायमूर्ति आर. के. अग्रवाल और न्यायमूर्ति अभय मनोहर सप्रे

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302, 364 और 34 – हत्या – सामान्य आशय – पारिस्थितिक साक्ष्य – हेतु – जहां साक्षियों के साक्ष्य से यह सिद्ध हो गया हो कि अभियुक्तों में से एक मृतक की पुत्री से विवाह करना चाहता था और मृतक को यह प्रस्ताव स्वीकार्य नहीं था तथा मृतक अभियुक्तों के निमंत्रण पर एक अभियुक्त के मकान पर रात्रि-भोजन के लिए गया और अंतिम बार उसे अभियुक्तों के साथ देखा गया और उसके ठीक पश्चात् मृत पाया गया, वहां अभियुक्तों द्वारा अपने विरुद्ध प्रकट होने वाली परिस्थितियों का कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया जाना ऐसी परिस्थितियां हैं जिनसे मृतक की मृत्यु कारित करने का हेतु सिद्ध होता है और अभियुक्त का सामान्य आशय होने के कारण उसकी दोषसिद्धि उचित है और उसमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है ।

इस अपील के तथ्यों के अनुसार, कुमार नामक व्यक्ति (अभियुक्त, जिसकी मृत्यु हो गई है) मृतक की पुत्री गीता से विवाह करना चाहता था । कुमार विवाहित था किंतु अपनी पत्नी से अलग रह रहा था और गीता थोड़ी-सी दूरी पर एक परिक्षेत्र में रह रही थी । मृतक मुरुगन (गीता का पिता) कुमार के गीता से विवाह करने के प्रस्ताव से सहमत नहीं था । उसका यह कहना था कि कुमार ने पहले ही अपनी पत्नी का जीवन बर्बाद कर दिया है और अब वह उसकी पुत्री का भी जीवन बर्बाद करना चाहता है । घटना की तारीख को दोपहर बाद कुमार गीता के मकान पर गया और बकरे का मांस (मटन) पकाने के लिए मिर्च की मांग की । उस समय गीता मकान में अकेली थी । गीता ने जब उसे मिर्च देने से मना कर दिया, तो कुमार मकान में घुसा और अपने आप मिर्च ले ली और यह कहते हुए मकान से चला गया कि एक दिन वह उसका अपहरण करके उसके साथ बलात्संग करेगा । कुमार उसी दिन लगभग 10.00 बजे अपराह्न में मुरुगन (अपीलार्थी), जो उसका चचेरा भाई है, के साथ गीता के मकान पर गया और मुरुगन (गीता का पिता) को अपने मकान पर शराब पीने और रात्रि में

मासांहारी भोजन के लिए निमंत्रित किया । मुरुगन (गीता का पिता) ने निमंत्रण स्वीकार किया और उन दोनों के साथ कुमार के मकान पर गया । जब मुरुगन (गीता का पिता) घर वापस नहीं आया, तो गीता (अभि. सा. 1) लगभग 11.00 बजे अपराह्न में अकेली यह पता करने के लिए कुमार के मकान पर गई कि अब तक उसका पिता वापस क्यों नहीं आया और वह इतने लंबे समय तक कुमार के मकान में क्या कर रहा है । तथापि, उसने वहां पहुंचने पर पाया कि तीनों (कुमार, मुरुगन और अपीलार्थी) कमरे में लोहे की एक चारपाई पर बैठे हुए थे और एक-साथ शराब पी रहे थे । तीनों ने गीता को कहा कि उसका पिता-मुरुगन शीघ्र ही आ जाएगा । उसके पश्चात् गीता अपने मकान पर लौट आई । चूंकि मुरुगन अगले दिन सुबह तक घर वापस नहीं आया, इसलिए गीता (अभि. सा. 1) और उसकी माता (अभि. सा. 2) भौर में यह पता करने के लिए कुमार के मकान पर गईं कि मुरुगन अभी तक अपने मकान पर क्यों वापस नहीं आया । कुमार के मकान का सामने का दरवाजा बंद था । इसलिए उन दोनों ने सामने के दरवाजे को धक्का दिया और दरवाजा खुलने पर उन्होंने पाया कि मुरुगन का शव कमरे में लोहे की चारपाई के निकट पड़ा हुआ था और उसके शरीर पर कई सारी क्षतियां थी । पुलिस थाने में घटना की रिपोर्ट दर्ज की गई, जिसे भारतीय दंड संहिता की धारा 302/364/34 के अधीन रजिस्ट्रीकृत किया गया । इसके पश्चात्, पुलिस ने अन्वेषण आरंभ किया । कुमार को गिरफ्तार किया गया और उसने अपनी दोषिता की संस्वीकृति की । तत्पश्चात्, पुलिस ने अपराध में प्रयुक्त आयुध और उसके बताने पर उसके पिता के मकान से रक्तरंजित कमीज बरामद किए । इसके पश्चात्, उसी दिन अपीलार्थी को गिरफ्तार किया गया । पुलिस ने अन्वेषण पूर्ण करने के पश्चात् कुमार और इस अपील में अपीलार्थी के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 364 और 302/34 के अधीन दंडनीय अपराध कारित करने के लिए आरोप पत्र फाइल किया । विचारण प्रारंभ होने से पूर्व ही मुख्य अभियुक्त कुमार की मृत्यु हो गई । इसलिए उसके विरुद्ध विचारण का उपशमन हो गया, जबकि सह-अभियुक्त-अपीलार्थी के विरुद्ध विचारण जारी रहा । तथापि, अपीलार्थी ने दोषिता से इनकार किया । अपर सेशन न्यायाधीश द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया कि अपीलार्थी के विरुद्ध आरोपों को साबित किया गया है और तद्नुसार उसे भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 364 और 302 के अधीन दंडनीय अपराध कारित करने के लिए दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया । अपीलार्थी अपर सेशन न्यायाधीश द्वारा अधिनिर्णीत अपनी

दोषसिद्धि और दंडादेश से व्यथित हुआ और उच्च न्यायालय में अपील फाइल की । उच्च न्यायालय ने अपील खारिज कर दी और अपर सेशन न्यायाधीश के निर्णय की पुष्टि की, जिसके परिणामस्वरूप अभियुक्त-मुरुगन ने विशेष इजाजत लेकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – साक्ष्य का परिशीलन करने के पश्चात्, इस न्यायालय ने यह पाया है कि अभियोजन पक्ष ने अपीलार्थी के विरुद्ध तात्विक परिस्थितियों और घटनाओं की शृंखला को, जिसमें अपराध कारित करने के पीछे हेतु और वह रीति जिसमें घटना घटित हुई तथा जिसके परिणामस्वरूप मुरुगन की मृत्यु हुई सम्मिलित हैं, साबित करने के लिए तीन साक्षियों (अभि. सा. 1, अभि. सा. 2 और अभि. सा. 3) की परीक्षा की थी । अभियोजन पक्ष के अनुसार, हेतु यह था कि कुमार का मृतक के प्रति वैमनस्य था क्योंकि उसे अपनी पुत्री-गीता से विवाह करने का कुमार का प्रस्ताव स्वीकार्य नहीं था । यह बात अभि. सा. 1, 2 और 3 के साक्ष्य से साबित हुई है । दोनों निचले न्यायालयों द्वारा इस साक्ष्य पर विश्वास किया गया है और, इस न्यायालय की राय में, ठीक किया गया है । अभियोजन पक्ष ने यह भी साबित किया है कि अपीलार्थी उसी रात कुमार के साथ कुमार के मकान पर मृतक को रात्रि-भोजन के लिए निमंत्रित करने हेतु उसके मकान पर गया था । मृतक ने निमंत्रण स्वीकार किया और कुमार तथा अपीलार्थी के साथ रात्रि-भोजन करने के लिए कुमार के मकान पर गया था । इसके पश्चात् यह साबित किया गया है कि गीता (अभि. सा. 1) लगभग 11.00 बजे अपराह्न में यह पता लगाने के लिए कुमार के मकान पर गई कि उसका पिता अपने मकान पर क्यों वापस नहीं आया और वहां पहुंचने पर उसने तीनों को लोहे की चारपाई पर बैठे हुए पाया और वे रात्रि-भोजन कर रहे थे । मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट के अनुसार, यह साबित हुआ है कि मुरुगन की मृत्यु उसी रात्रि में 11.00 और 12.00 बजे के बीच हुई थी । जब अपीलार्थी 11.00 बजे अपराह्न तक कुमार के साथ उसके मकान में मृतक (मुरुगन) के संग बैठा हुआ था और मुरुगन तथा कुमार के साथ रात्रि-भोजन किया था और उसके ठीक पश्चात् मुरुगन की मृत्यु हो गई तथा अपीलार्थी अभि. सा. 1, 2 और 3 की प्रतिपरीक्षा में ऐसी कोई बात प्रकट नहीं कर सका, जिससे उपर्युक्त तीनों साक्षियों के साक्ष्य को अविश्वसनीय और उसके विरुद्ध अभिसाक्ष्यित परिस्थितियों को नासाबित ठहराया जा सके । इस न्यायालय ने साक्ष्य से अपीलार्थी के विरुद्ध प्रकट होने वाली आठ परिस्थितियां पायी हैं । ये परिस्थितियां हैं

प्रथम, मृतक की पुत्री के साथ कुमार के विवाह करने के प्रस्ताव से उसके सहमत न होने के कारण हेतु उसके विरुद्ध था ; द्वितीय, अपीलार्थी और कुमार, दोनों चचेरे भाई होने के कारण, एक दूसरे को अच्छी तरह जानते थे ; तृतीय, दोनों मृतक के मकान पर उसे कुमार के घर रात्रि-भोजन के लिए निमंत्रित करने के लिए एक-साथ गए थे ; चतुर्थ, तीनों ने कुमार के घर एक-साथ रात्रि-भोजन किया था, पंचम्, मुरुगन की रात्रि-भोजन के ठीक पश्चात् मृत्यु हो गई थी ; षष्ठम्, कुमार ने अपना संस्वीकृति कथन किया था ; सप्तम्, कुमार के बताने पर आयुध और वस्त्रों की बरामदगी ; और अष्ठम, शव उस लोहे की चारपाई के निकट पड़ा हुआ पाया था जहां मुरुगन (मृतक) ने कुमार और अपीलार्थी के साथ अंतिम बार रात्रि-भोजन किया था । इस न्यायालय के मत में, पूर्वोल्लिखित आठ परिस्थितियों से अपीलार्थी के विरुद्ध घटनाओं की एक शृंखला बनती है और इनसे अपीलार्थी और कुमार के विरुद्ध मुरुगन की हत्या कारित करने का एक ठोस निष्कर्ष निकलता है । इस न्यायालय के मत में, इससे स्पष्ट रूप से यह सिद्ध होता है कि दोनों (कुमार और अपीलार्थी) का मुरुगन की हत्या करने का सामान्य आशय था । अपीलार्थी और कुमार के बजाए कोई अन्य व्यक्ति नहीं हो सकता, जिसने प्रश्नगत अपराध किया हो । पारिस्थितिक साक्ष्य का मूल्यांकन करते समय यह सिद्धांत कि "मृतक अंतिम बार अभियुक्त के साथ देखा गया था", अभियुक्त के विरुद्ध एक प्रबल परिस्थिति होती है । ऐसे मामलों में, यदि अभियुक्त अपने विरुद्ध प्रकट होने वाली तात्विक परिस्थितियों को उचित रूप से स्पष्ट करने में समर्थ नहीं होता है, तो उसे वह अपराध, जिसके लिए उसे आरोपित किया जाता है, कारित करने के लिए दोषी ठहराया जा सकता है । इस मामले में, दोनों निचले न्यायालयों द्वारा अपीलार्थी के विरुद्ध ठीक ही अभिनिर्धारित किया गया है और यह न्यायालय इस निष्कर्ष को उलटने का कोई आधार नहीं पाता है । (पैरा 23, 24, 25, 26, 28, 29, 31 और 32)

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2010 की दांडिक अपील सं. 1498.

2006 की दांडिक अपील सं. 804 में मद्रास उच्च न्यायालय के तारीख 25 अप्रैल, 2007 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध संविधान, 1950 के अनुच्छेद 136 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री चित्रांगदा राष्ट्रवर, (सुश्री) ऐश्वर्यटी, टी. गोपाल, (सुश्री) तनुजा पात्रा और ग्रुप कैप्टन करन सिंह भाटी

प्रत्यर्थी की ओर से — सर्वश्री एम. योगेश कन्ना, (सुश्री) सुजाता बागधी, (श्रीमती) महालक्ष्मी और (सुश्री) नित्या

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति अभय मनोहर सप्रे ने दिया ।

न्या. सप्रे – यह अपील 2006 की दांडिक अपील सं. 804 में मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 25 अप्रैल, 2007 को पारित उस अंतिम निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी (अभियुक्त) द्वारा फाइल की गई अपील खारिज कर दी और 2006 के सेशन मामला सं. 5 में अपर सेशन न्यायाधीश, नमक्कल (त्वरित न्यायालय) द्वारा तारीख 2 अगस्त, 2006 को पारित उस आदेश की पुष्टि की, जिसके द्वारा अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे इसमें आगे "भारतीय दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 364 और 302/34 के अधीन दोषसिद्ध करते हुए और भारतीय दंड संहिता की धारा 364 के अधीन सात वर्ष का कठोर कारावास भुगतने और 1,000/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने तथा जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम करने पर एक माह का अतिरिक्त कारावास भुगतने तथा भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन आजीवन कारावास भुगतने और 5,000/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने तथा जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम करने पर दो माह का अतिरिक्त कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया था । दंडादेश साथ-साथ चलने थे ।

2. इस मामले में उद्भूत विवाद्यकों का मूल्यांकन करने के लिए अभियोजन के पक्षकथन को विस्तार से उपवर्णित करना आवश्यक है ।

3. "कुमार" नामक एक व्यक्ति (मृतक) एक लड़की "गीता" का चाचा था । सुसंगत समय पर गीता छठी कक्षा में थी । कुमार विवाहित था किंतु अपनी पत्नी से अलग रह रहा था और गीता थोड़ी-सी दूरी पर एक परिक्षेत्र में रह रही थी । कुमार, गीता को चाहने लगा था और उससे विवाह करना चाहता था ।

4. मुरुगन (गीता का पिता) कुमार के गीता से विवाह करने के प्रस्ताव से सहमत नहीं था । मुरुगन (गीता का पिता) का यह कहना था कि कुमार ने पहले ही अपनी पत्नी का जीवन बर्बाद कर दिया है और अब वह उसकी पुत्री का भी जीवन बर्बाद करना चाहता है । दूसरी ओर, कुमार गीता को यह धमकी देता था कि एक दिन वह उसका अपहरण करके

उससे विवाह करेगा ।

5. अभियोजन का यह पक्षकथन है कि तारीख 1 दिसम्बर, 2002 को दोपहर बाद कुमार गीता के मकान पर गया और बकरे का मांस (मटन) पकाने के लिए "मिर्च" की मांग की । उस समय गीता मकान में अकेली थी । गीता ने जब उसे मिर्च देने से मना कर दिया, तो कुमार मकान में घुसा और अपने आप मिर्च ले ली और यह कहते हुए मकान से चला गया कि एक दिन वह उसका अपहरण करके उसके साथ बलात्संग करेगा ।

6. कुमार उसी दिन लगभग 10.00 बजे अपराह्न में मुरुगन (अपीलार्थी), जो उसका चचेरा भाई है (उसकी चाची का पुत्र) के साथ गीता के मकान पर गया और मुरुगन (गीता का पिता) को अपने मकान पर शराब पीने और रात्रि में मांसाहारी भोजन के लिए निमंत्रित किया । मुरुगन (गीता का पिता) ने निमंत्रण स्वीकार किया और उन दोनों के साथ कुमार के मकान पर गया ।

7. जब मुरुगन (गीता का पिता) घर वापस नहीं आया, तो गीता (अभि. सा. 1) लगभग 11.00 बजे अपराह्न में अकेली यह पता करने के लिए कुमार के मकान पर गई कि अब तक उसका पिता वापस क्यों नहीं आया और वह इतने लंबे समय तक कुमार के मकान में क्या कर रहा है । तथापि, उसने वहां पहुंचने पर पाया कि तीनों (कुमार, मुरुगन और अपीलार्थी) कमरे में लोहे की एक चारपाई पर बैठे हुए थे और एक-साथ शराब पी रहे थे । तीनों ने गीता को कहा कि उसका पिता-मुरुगन शीघ्र ही आ जाएगा । उसके पश्चात् गीता अपने मकान पर लौट आई ।

8. चूंकि मुरुगन अगले दिन सुबह तक घर वापस नहीं आया, इसलिए गीता (अभि. सा. 1) और उसकी माता सरोजा (अभि. सा. 2) भोर में यह पता करने के लिए कुमार के मकान पर गईं कि मुरुगन अभी तक अपने मकान पर क्यों वापस नहीं आया । कुमार के मकान का सामने का दरवाजा बंद था । इसलिए उन दोनों ने सामने के दरवाजे को धक्का दिया और दरवाजा खुलने पर उन्होंने पाया कि मुरुगन का शव कमरे में लोहे की चारपाई के निकट पड़ा हुआ था और उसके शरीर पर कई सारी क्षतियां थीं ।

9. यही वह घटना है जिसको लेकर गीता द्वारा (अभि. सा. 1) ने तारीख 2 दिसम्बर, 2002 को पुलिस थाना, जेदरपलायम में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट (प्रदर्श पी-18) फाइल की गई, जिसे भारतीय दंड संहिता की धारा 302/364/34 के अधीन 2002 के अपराध सं. 224 के रूप में रजिस्ट्रीकृत

किया गया । इसके पश्चात्, पुलिस ने अन्वेषण आरंभ किया, कुमार के मकान का दौरा किया, महाज़र (प्रदर्श पी-13) तैयार किया, कच्चा नक्शा (प्रदर्श पी-19) बनाया, फोटोग्राफ लिए, मृत्युसमीक्षा रिपोर्ट तैयार की, साक्षियों के कथन अभिलिखित किए, शव की मरणोत्तर परीक्षा (प्रदर्श पी-4) कराई और वस्तुएं (एम. ओ. 5 और 12) बरामद कीं ।

10. इसके पश्चात्, पुलिस ने तारीख 3 दिसम्बर, 2002 को कुमार को गिरफ्तार किया और उसने अपनी दोषिता की संस्वीकृति की । तद्नुसार, उसका संस्वीकृति कथन (प्रदर्श पी-15) अभिलिखित किया गया । तत्पश्चात्, पुलिस ने अपराध में प्रयुक्त आयुध (अरुवल-एम. ओ. 14) और उसके बताने पर उसके पिता के मकान से रक्तरंजित हरी कमीज बरामद किए । इसके पश्चात्, उसी दिन अपीलार्थी को गिरफ्तार किया गया ।

11. पुलिस ने अन्वेषण पूर्ण करने के पश्चात् कुमार और इस अपील में अपीलार्थी के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 364 और 302/34 के अधीन दंडनीय अपराध कारित करने के लिए आरोप पत्र फाइल किया । इसके पश्चात् मामले को विचारण के लिए अपर सेशन न्यायाधीश, नमक्कल (2006 का सेशन विचारण सं. 5) को सुपुर्द किया गया ।

12. विचारण प्रारंभ होने से पूर्व ही मुख्य अभियुक्त कुमार की मृत्यु हो गई । इसलिए उसके विरुद्ध विचारण का उपशमन हो गया, जबकि सह-अभियुक्त-अपीलार्थी के विरुद्ध विचारण जारी रहा । तथापि, अपीलार्थी ने दोषिता से इनकार किया ।

13. अभियोजन पक्ष ने आरोपों को साबित करने के लिए 12 साक्षियों की परीक्षा की, 20 प्रदर्श चिन्हित किए तथा 15 तात्विक वस्तुएं प्रस्तुत कीं । दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "संहिता" कहा गया है) की धारा 313 के अधीन कार्यवाहियों में अपीलार्थी से उसके विरुद्ध प्रतीत होने वाली परिस्थितियों को स्पष्ट करने के लिए कहा गया, किंतु उसने कोई स्पष्टीकरण दिए बिना परिस्थितियों सहित आरोपों से इनकार किया ।

14. अपर सेशन न्यायाधीश ने तारीख 2 अगस्त, 2006 के आदेश द्वारा यह अभिनिर्धारित किया कि अपीलार्थी के विरुद्ध आरोपों को साबित किया गया है और तद्नुसार उसे भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 364 और 302 के अधीन दंडनीय अपराध कारित करने के लिए दोषसिद्ध किया और भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन आजीवन

कारावास और धारा 364 के अधीन सात वर्ष का कारावास तथा क्रमशः 5,000/- रुपए और 1,000/- रुपए का जुर्माना अधिनिर्णीत किया ।

15. अपीलार्थी अपर सेशन न्यायाधीश द्वारा अधिनिर्णीत अपनी दोषसिद्धि और दंडादेश से व्यथित हुआ और उच्च न्यायालय में अपील फाइल की ।

16. उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय द्वारा अपील खारिज कर दी और अपर सेशन न्यायाधीश के निर्णय की पुष्टि की, जिसके परिणामस्वरूप अभियुक्त-मुरुगन ने विशेष इजाजत लेकर इस न्यायालय में यह अपील फाइल की ।

17. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल सुश्री चित्रांगदा और प्रत्यर्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री एम. योगेश कन्ना को सुना ।

18. पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउंसेलों को सुनने के पश्चात् और मामले के अभिलेख का परिशीलन करने पर हम इस अपील में कोई सार नहीं पाते हैं ।

19. हमने यह पता लगाने की दृष्टि से साक्ष्य का परिशीलन किया है कि क्या दोनों निचले न्यायालयों द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण, तर्क और निकाले गए निष्कर्ष विधिक रूप से कायम रखने योग्य हैं या नहीं ।

20. विधि का यह स्थिर सिद्धांत है कि जब निचले न्यायालयों ने अभियुक्त व्यक्ति के विरुद्ध ऐसे समवर्ती निष्कर्ष अभिलिखित किए हैं जो साक्ष्य के सम्यक् मूल्यांकन पर आधारित हैं, तो यह न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन ऐसे समवर्ती निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने में तत्परता नहीं दिखाएगा और साक्ष्य का तब तक नए सिरे से मूल्यांकन नहीं करेगा जब तक प्रथमदृष्ट्या यह दर्शित नहीं किया जाता है कि दोनों निचले न्यायालयों ने या तो सुसंगत साक्ष्य पर विचार नहीं किया है या दोनों निचले न्यायालयों आदि द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों में कोई अनुचितता या/और अर्थहीनता विद्यमान है ।

21. तथापि, हमने यह पता लगाने के लिए साक्ष्य का परिशीलन करने का प्रयास किया है कि क्या दोनों निचले न्यायालयों के समवर्ती निष्कर्षों में किसी प्रकार की कमी है या/और क्या समवर्ती निष्कर्ष विधिक और तथ्यात्मक रूप से कायम रखने योग्य हैं या इन्हें उलटे जाने की आवश्यकता है । साक्ष्य का परिशीलन करने के पश्चात् हमारा यह मत है कि ये निष्कर्ष विधिक और तथ्यात्मक रूप से कायम रखने योग्य हैं ।

22. हमारी सुविचारित राय में, दोनों निचले न्यायालयों ने यह ठीक ही अभिनिर्धारित किया है कि अपीलार्थी की दोषसिद्धि पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित है, जिसे इस मामले में अभियोजन पक्ष साक्ष्य प्रस्तुत करके साबित करने में समर्थ रहा है । दूसरे शब्दों में, हमारा भी यह निष्कर्ष है कि अभियोजन पक्ष अपीलार्थी के विरुद्ध प्रकट होने वाली परिस्थितियों/घटनाओं की शृंखला को अटूट साबित करने में समर्थ रहा है और इसलिए अपीलार्थी की दोषसिद्धि कायम रखने योग्य है ।

23. साक्ष्य का परिशीलन करने के पश्चात्, हमने यह पाया है कि अभियोजन पक्ष ने अपीलार्थी के विरुद्ध तात्विक परिस्थितियों और घटनाओं की शृंखला को, जिसमें अपराध कारित करने के पीछे हेतु और वह रीति जिसमें घटना घटित हुई तथा जिसके परिणामस्वरूप मुरुगन की मृत्यु हुई सम्मिलित हैं, साबित करने के लिए तीन साक्षियों (अभि. सा. 1, अभि. सा. 2 और अभि. सा. 3) की परीक्षा की थी ।

24. अभियोजन पक्ष के अनुसार, हेतु यह था कि कुमार का मृतक के प्रति वैमनस्य था क्योंकि उसे अपनी पुत्री गीता से विवाह करने का कुमार का प्रस्ताव स्वीकार्य नहीं था । यह बात अभि. सा. 1, 2 और 3 के साक्ष्य से साबित हुई है । दोनों निचले न्यायालयों द्वारा इस साक्ष्य पर विश्वास किया गया है और, हमारी राय में, ठीक किया गया है ।

25. अभियोजन पक्ष ने फिर यह साबित किया कि अपीलार्थी उसी रात कुमार के साथ कुमार के मकान पर मृतक को रात्रि भोजन के लिए निमंत्रित करने हेतु उसके मकान पर गया था । मृतक ने निमंत्रण स्वीकार किया और कुमार तथा अपीलार्थी के साथ रात्रि भोजन करने के लिए कुमार के मकान पर गया था ।

26. इसके पश्चात् यह साबित किया गया कि गीता (अभि. सा. 1) लगभग 11.00 बजे अपराह्न में यह पता लगाने के लिए कुमार के मकान पर गई कि उसका पिता अपने मकान पर क्यों वापस नहीं आया और वहां पहुंचने पर उसने तीनों को लोहे की चारपाई पर बैठे हुए पाया और वे रात्रि भोजन कर रहे थे । मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट के अनुसार, यह साबित हुआ है कि मुरुगन की मृत्यु उसी रात्रि में 11.00 और 12.00 बजे के बीच हुई थी ।

27. हमारी राय में, जब अपीलार्थी 11.00 बजे अपराह्न तक कुमार के साथ उसके मकान में मृतक (मुरुगन) के संग बैठा हुआ था और मुरुगन तथा कुमार के साथ रात्रि भोजन किया था और उसके ठीक

पश्चात् मुरुगन की मृत्यु हो गई तथा अपीलार्थी अभि. सा. 1, 2 और 3 की प्रतिपरीक्षा में ऐसी कोई बात प्रकट नहीं कर सका, जिससे उपर्युक्त तीनों साक्षियों के साक्ष्य को अविश्वसनीय और उसके विरुद्ध अभिसाक्षित परिस्थितियों को नासाबित ठहराया जा सके ।

28. इसके अतिरिक्त, हमारी राय में, अपीलार्थी के लिए यह आवश्यक था कि वह संहिता की धारा 313 के अधीन कार्यवाहियों में अपने विरुद्ध प्रकट होने वाली पूर्वोल्लिखित परिस्थितियों के बारे में स्पष्टीकरण देता । तथापि, अपीलार्थी किसी भी परिस्थितियों को स्पष्ट करने में असफल रहा और अपराध में अपनी अंतर्ग्रस्तता से इनकार किया ।

29. हम साक्ष्य से अपीलार्थी के विरुद्ध प्रकट होने वाली आठ परिस्थितियां पाते हैं । ये परिस्थितियां हैं – प्रथम, मृतक की पुत्री के साथ कुमार के विवाह करने के प्रस्ताव से उसके सहमत न होने के कारण हेतु उसके विरुद्ध था ; द्वितीय, अपीलार्थी और कुमार, दोनों चचेरे भाई होने के कारण, एक दूसरे को अच्छी तरह जानते थे ; तृतीय, दोनों मृतक के मकान पर उसे कुमार के घर रात्रि भोजन के लिए निमंत्रित करने के लिए एक-साथ गए थे ; चतुर्थ, तीनों ने कुमार के घर एक-साथ रात्रि भोजन किया था, पंचम्, मुरुगन की रात्रि भोजन के ठीक पश्चात् मृत्यु हो गई थी ; षष्ठम्, कुमार ने अपना संस्वीकृति कथन किया था ; सप्तम्, कुमार के बताने पर आयुध और वस्त्रों की बरामदगी ; और अष्ठम्, शव उस लोहे की चारपाई के निकट पड़ा हुआ पाया था जहां मुरुगन (मृतक) ने कुमार और अपीलार्थी के साथ अंतिम बार रात्रि भोजन किया था ।

30. हमारे मत में, पूर्वोल्लिखित आठ परिस्थितियों से अपीलार्थी के विरुद्ध घटनाओं की एक शृंखला बनती है और इनसे अपीलार्थी और कुमार के विरुद्ध मुरुगन की हत्या कारित करने का एक ठोस निष्कर्ष निकलता है ।

31. हमारे मत में, इससे स्पष्ट रूप से यह सिद्ध होता है कि दोनों (कुमार और अपीलार्थी) का मुरुगन की हत्या करने का सामान्य आशय था । हमारे मत में, अपीलार्थी और कुमार के बजाय कोई अन्य व्यक्ति नहीं हो सकता, जिसने प्रश्नगत अपराध किया हो ।

32. पारिस्थितिक साक्ष्य का मूल्यांकन करते समय यह सिद्धांत कि "मृतक अंतिम बार अभियुक्त के साथ देखा गया था", अभियुक्त के विरुद्ध एक प्रबल परिस्थिति होती है । ऐसे मामलों में, यदि अभियुक्त अपने विरुद्ध प्रकट होने वाली तात्विक परिस्थितियों को उचित रूप से स्पष्ट करने में

समर्थ नहीं होता है, तो उसे वह अपराध, जिसके लिए उसे आरोपित किया जाता है, कारित करने के लिए दोषी ठहराया जा सकता है । इस मामले में, दोनों निचले न्यायालयों द्वारा अपीलार्थी के विरुद्ध ठीक ही अभिनिर्धारित किया गया है और हम इस निष्कर्ष को उलटने का कोई आधार नहीं पाते हैं ।

33. हम अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई इस दलील से प्रभावित नहीं हैं कि कुमार (मुख्य अभियुक्त) की मृत्यु विचारण का सामना किए बिना हो गई थी, इसलिए अपीलार्थी साफ-साफ दोषमुक्ति का हकदार है क्योंकि कुमार की मृत्यु के पश्चात् अपीलार्थी के अभियोजन के लिए उसके विरुद्ध अब कुछ शेष नहीं रह जाता है । हम इस दलील से सहमत नहीं हैं ।

34. हमारे मत में, जहां तक अपीलार्थी के अभियोजन का संबंध है, इसमें कुमार की मृत्यु से कोई सरोकार नहीं है । इसका कारण यह है कि यह मुरुगन की हत्या करने के लिए दो अभियुक्त व्यक्तियों के सामान्य आशय का मामला है और अपीलार्थी अभियुक्तों में से एक अभियुक्त है जिसे अपराध कारित करने में अंत तक अन्य अभियुक्त, जिसकी मृत्यु हो गई है, के साथ सक्रिय रूप से भागीदार पाया गया है ।

35. अतः, हमारे मत में, दोनों निचले न्यायालयों ने अभियोजन साक्षी के प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य का उचित रूप से मूल्यांकन करके अपीलार्थी को, सह-अभियुक्त की मृत्यु होने पर भी, जिसका अपराध कारित करने में अपीलार्थी की अंतर्ग्रस्तता का विनिश्चय करने से कोई संबंध नहीं है, प्रश्नगत अपराध कारित करने के लिए दोषी ठहराकर ठीक किया है ।

36. अतः, हम दोनों निचले न्यायालयों द्वारा जो दृष्टिकोण अपनाया गया है उससे भिन्न दृष्टिकोण अपनाने के लिए कोई ठोस आधार नहीं पाते हैं और हम उनके तर्काधार और निष्कर्ष से, हमारे द्वारा ऊपर वर्णित अतिरिक्त तर्काधार सहित, सहमत हैं ।

37. इस प्रकार, इस अपील में कोई गुणागुण नहीं पाया गया है । यह असफल होती है और तद्नुसार खारिज की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

जस.

[2018] 4 उम. नि. प. 125

प्रमोद लक्ष्मण गुडाढे

बनाम

भारत का निर्वाचन आयोग और अन्य

9 मई, 2018

मुख्य न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा, न्यायमूर्ति ए. एम. खानविलकर और न्यायमूर्ति डी. वाई. चन्द्रचूड़

लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 (1951 का 43) – धारा 151क – लोक सभा उप-निर्वाचन – रिक्त स्थान को भरने की समय-सीमा – जब लोक सभा की किसी रिक्ति से संबंधित सदस्य की पदावधि का शेष भाग एक वर्ष से कम न हो और अभ्यर्थी के विरुद्ध कोई निर्वाचन विवाद लंबित न हो तथा निर्वाचन आयोग ने केन्द्रीय सरकार से परामर्श करके यह प्रमाणित न किया हो कि उक्त अवधि के भीतर ऐसा उप-निर्वाचन कराना कठिन है, तो उप-निर्वाचन अवश्य कराया जाना चाहिए ।

प्रस्तुत विशेष इजाजत याचिका में याची ने, जो कि भंडारा-गौंडिया संसदीय निर्वाचन-क्षेत्र का एक मतदाता है, एक विदग्ध रीति में यह प्रतिपादित करके एक चुनौती उत्पन्न की है कि उच्च न्यायालय ने अधिनियम की धारा 151क का गलततौर पर निर्वचन किया है । निर्वाचित प्रतिनिधि ने, जोकि 4 जून, 2014 को कराए गए लोक सभा के साधारण निर्वाचन में ऊपर उल्लिखित निर्वाचन-क्षेत्र से निर्वाचित हुआ था, लोक सभा प्रक्रिया और कारबार संचालन नियमों के नियम 240(1क) के साथ पठित संविधान के अनुच्छेद 101(3) के अधीन तारीख 8 दिसम्बर, 2017 को संसद् सदस्य के रूप में अपना त्यागपत्र दे दिया था और उसे 14 दिसम्बर, 2017 को स्वीकार कर लिया गया था । चूंकि स्थान रिक्त हो गया, इसलिए याची, जो कि एक लोक हित भाव युक्त व्यक्ति है, 2018 की लोक हित याचिका सं. 31 में संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय में अन्य बातों के साथ-साथ यह दलील देते हुए समावेदन किया कि यदि निर्वाचन मई, 2018 मास में हुआ तो नए पदधारी को जो प्रभावी अवधि मिलेगी वह केवल मार्च, 2019 तक होगी, अर्थात् जो कि एक वर्ष से कम होगी और इसलिए वह संपूर्ण जोश से कृत्य करने और जनता को सेवा प्रदान करने की स्थिति में नहीं होगा और इसके अलावा, निर्वाचन कराने में पर्याप्त व्यय भी होगा । उसने निर्वाचन सुधारों से संबंधित भारत

के विधि आयोग के प्रतिवेदन सं. 255 का सहारा लिया । इस आधार को सिद्ध करने के लिए अधिनियम की धारा 151 का अवलंब लिया गया था कि निर्वाचन कराना उक्त उपबंध के अधीन अनुज्ञेय नहीं था । उच्च न्यायालय ने धारा 151क में प्रयुक्त भाषा की संवीक्षा करते हुए यह राय व्यक्त की कि याची द्वारा दिए गए तर्क में कोई सार नहीं है और परिणामस्वरूप उसने रिट याचिका खारिज कर दी । इस निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में विशेष इजाजत याचिका फाइल की गई । उच्चतम न्यायालय द्वारा विशेष इजाजत याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – वर्तमान मामले में, कोई निर्वाचन अर्जी लंबित नहीं थी । निर्वाचित अभ्यर्थी ने तारीख 8 दिसम्बर, 2017 को अपना त्यागपत्र दे दिया था और उसे लोक सभा के अध्यक्ष द्वारा तारीख 14 दिसम्बर, 2017 को स्वीकार कर लिया गया था । लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 151क की आज्ञा यह है कि रिक्ति उद्भूत होने की तारीख से छह मास की अवधि के भीतर निर्वाचन कराया जाए । जैसा कि तथ्यात्मक स्थिति से प्रदर्शित होता है, रिक्ति तब उद्भूत हुई जब लोक सभा के अध्यक्ष द्वारा तारीख 14 दिसम्बर, 2017 को त्यागपत्र स्वीकार कर लिया गया था । यह निर्विवाद है कि लोक सभा के लिए अगला साधारण निर्वाचन जून, 2019 में होना है । अतः, शेष पदावधि एक वर्ष से कम नहीं है । यह बात धारा 151क के परन्तुक के खंड (ख) द्वारा शासित होगी कि निर्वाचन कराया जाए अथवा नहीं और हमारा उससे कोई सरोकार नहीं है । इस आधार में बिल्कुल भी कोई सार नहीं है कि जून, 2019 में निर्वाचन कराए जाने से पूर्व आचार संहिता लागू हो जाएगी क्योंकि अधिनियम में ऐसा अनुध्यात नहीं है । निर्वाचन अर्जी के लंबित रहने के अधीन रहते हुए, मात्र अवधि ही शासित करने वाला कारक होना चाहिए क्योंकि वह सर्वोपरि खंड द्वारा नियंत्रित नहीं है । ऐसा निर्वचन लोकतंत्र के पवित्र सिद्धांत के अनुसार है और संसद् का आशय यह है कि किसी निर्वाचन-क्षेत्र को प्रतिनिधित्व के बिना न छोड़ा जाए । राजकोष पर पड़ने वाले भार के संबंध में अभिव्यक्त की गई चिन्ता को आधार नहीं माना जा सकता है । ऐसा इसलिए है क्योंकि प्रतिनिधित्व लोकतंत्र को निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा ही अपने आप को कायम रखना है । हम यह जोड़ने की जल्दबाजी कर सकते हैं कि मामला तब भिन्न होगा जब अभ्यर्थी के विरुद्ध कोई ऐसा निर्वाचन विवाद लंबित हो, जो कि अधिनियम की धारा 84 या धारा 98(ग) या धारा 101(ख) की परिधि के भीतर आता है । चूंकि ऐसी स्थिति नहीं है इसलिए उच्च न्यायालय द्वारा अभिव्यक्त मत पूर्णतः अभेद्य है । (पैरा 16)

लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 के उपबंधों को इस प्रकार आरोपित किया गया है जिससे कि उसके अंतर्गत निर्वाचन के अनेक पहलू आ जाएं, जिसके अंतर्गत निर्वाचन कराने की रीति, पद्धति और निर्वाचन को अपास्त करने के आधार भी आते हैं । अधिनियम में सक्षम प्राधिकारी को इस बात का ध्यान रखने के लिए आबद्ध किया गया है कि कोई भी निर्वाचन-क्षेत्र एक नियत अवधि के परे प्रतिनिधित्व के बिना न रहे । ऐसा इस कारण है कि निर्वाचित प्रतिनिधि से यह प्रत्याशा की जाती है कि वह समग्र रूप से निर्वाचकगण की चिन्ताओं को प्रतिध्वनित करे । मतदाताओं को उक्त अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता यदि कानून में ऐसा संरक्षण प्रदान किया गया है । यद्यपि निर्वाचन लड़ने का अधिकार कोई मूल अधिकार नहीं है तथापि, किसी कानूनी उपबंध के संबंध में ऐसा निर्वचन नहीं किया जाना चाहिए, जिससे प्रतिनिधित्व करने का अनिवार्य प्रयोजन ही विफल हो जाएगा । (पैरा 2)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2011] (2011) 1 एस. सी. सी. 370 :
भारत का निर्वाचन आयोग बनाम **तेलंगाना राष्ट्र समिति और एक अन्य** ; 14,15

[2002] ए. आई. आर. 2002 कर्नाटक 232 :
श्री थॉमस मेट्स गुडिनहो बनाम **भारत का निर्वाचन आयोग, नई दिल्ली और अन्य** ; 15

[1967] ए. आई. आर. 1967 एस. सी. 1211 :
डी. संजीवय्या बनाम **निर्वाचन अधिकरण, आन्ध्र प्रदेश और अन्य** । 13

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2018 की विशेष इजाजत याचिका (सिविल) सं. 9968.

2018 की लोक हित याचिका सं. 31 में मुम्बई उच्च न्यायालय की नागपुर न्यायपीठ के तारीख 11 अप्रैल, 2018 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध विशेष इजाजत याचिका ।

याची की ओर से सर्वश्री विकास सिंह, ज्येष्ठ अधिवक्ता,

(सुश्री) अनंघा एस. देसाई, महमूद उमर फारूकी और सत्यजीत ए. देसाई

न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा ने दिया ।

मु. न्या. मिश्रा – किसी पवित्र लोकतांत्रिक निकाय की राज्यव्यवस्था में, प्रारंभिक अपेक्षा निष्पक्ष और समय पर निर्वाचन कराना होता है । किसी प्रकार की कट्टर विचारधारा का परित्याग करते हुए निर्वाचन की शुद्धता, लोकतंत्र की मूलभूत संकल्पना को कायम रखने के लिए एक अभिन्न तत्व है जो कि हमारे संविधान की मूलभूत विशेषता है । यदि "लोकतंत्र की विचारधारा" दूषित हो जाती है तो विधिसम्मत शासन की आधारशिला का क्षय हो जाता है । जब कोई व्यक्ति, अपनी हैसियत से वंचित, अपना मत डालने के लिए किसी निर्वाचन बूथ पर जाता है तब वह स्वयं को सशक्त और सम्मानित महसूस करता है और उसका आत्म-सम्मान प्रबलित हो जाता है क्योंकि उसकी अंतरात्मा उसे यह बताती है कि वह अपने मताधिकार का प्रयोग करके एक ऐसे प्रतिनिधि का चुनाव कर रहा है जो उसके निर्वाचन-क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करेगा । सशक्त महसूस करने की यही अनुभूति है । उसकी ऐसी भागीदारी उसे उसके राजनैतिक अधिकार और इस सामूहिक भावना का एहसास कराती है कि संविधान के अनुसार शासन होगा जिससे कि व्यक्तियों के अधिकारों को संरक्षित किया जाए और सामूहिक आकांक्षाओं को ध्यान में रखा जाए । लोकतंत्र के अनेक समर्थकों द्वारा यह कहा गया है कि सदैव ऐसा वातावरण बना रहना चाहिए जहां कि लोकतंत्र के विचार सुरक्षित रह सकें ।

2. भारत के संविधान में किसी व्यक्ति के अधिकारों को ध्यान में रखते हुए, राजनैतिक अधिकारों के अनेक पहलुओं पर बल दिया गया है । अतः, लोकतंत्र में, निर्वाचन कराना महत्वपूर्ण हो जाता है और सांविधानिक और कानूनी उपबंधों द्वारा इसे ध्यान में रखा जाता है । निर्वाचन लड़ने के लिए पात्रता संबंधी मानदंडों का उपबंध किया गया है और कभी-कभी स्थानीय स्वायत्त शासन में होने वाले निर्वाचनों की बाबत और अधिक निर्बंधन लगा दिए जाते हैं । निर्वाचन-क्षेत्रों के परिसीमन और आरक्षण की परिकल्पना की गई है और उन्हें लाभप्रद बनाया गया है जिससे कि संविधान के समावेशी स्वरूप को सुदृढ़ किया जा सके । लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 (जिसे संक्षेप में 'अधिनियम' कहा गया है) के उपबंधों को इस प्रकार आरोपित किया गया है जिससे कि उसके अंतर्गत निर्वाचन के अनेक पहलू आ जाएं, जिसके अंतर्गत निर्वाचन कराने की रीति, पद्धति

और निर्वाचन को अपास्त करने के आधार भी आते हैं । अधिनियम में सक्षम प्राधिकारी को इस बात का ध्यान रखने के लिए आबद्ध किया गया है कि कोई भी निर्वाचन-क्षेत्र एक नियत अवधि के परे प्रतिनिधित्व के बिना न रहे । ऐसा इस कारण है कि निर्वाचित प्रतिनिधि से यह प्रत्याशा की जाती है कि वह समग्र रूप से निर्वाचकगण की चिन्ताओं को प्रतिध्वनित करे । मतदाताओं को उक्त अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता यदि कानून में ऐसा संरक्षण प्रदान किया गया है । यद्यपि निर्वाचन लड़ने का अधिकार कोई मूल अधिकार नहीं है तथापि, किसी कानूनी उपबंध के संबंध में ऐसा निर्वचन नहीं किया जाना चाहिए जिससे प्रतिनिधित्व करने का अनिवार्य प्रयोजन ही विफल हो जाएगा ।

3. प्रारंभिक टिप्पण एक अधिपत्र बन गया है क्योंकि इस विशेष इजाजत याचिका में याची ने, जो कि भंडारा-गौंडिया संसदीय निर्वाचन-क्षेत्र का एक मतदाता है, एक विदग्ध रीति में यह प्रतिपादित करके एक चुनौती उत्पन्न की है कि उच्च न्यायालय ने अधिनियम की धारा 151क का गलततौर पर निर्वचन किया है ।

4. निर्वाचित प्रतिनिधि ने, जो कि 4 जून, 2014 को कराए गए लोक सभा के साधारण निर्वाचन में ऊपर उल्लिखित निर्वाचन-क्षेत्र से निर्वाचित हुआ था, लोक सभा प्रक्रिया और कारबार संचालन नियमों के नियम 240(1क) के साथ पठित संविधान के अनुच्छेद 101(3) के अधीन तारीख 8 दिसम्बर, 2017 को संसद् सदस्य के रूप में अपना त्यागपत्र दे दिया था और उसे 14 दिसम्बर, 2017 को स्वीकार कर लिया गया था ।

5. चूंकि स्थान रिक्त हो गया, इसलिए याची, जो कि एक लोक हित भाव युक्त व्यक्ति है, 2018 की लोक हित याचिका सं. 31 में संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन मुम्बई उच्च न्यायालय की नागपुर न्यायपीठ में अन्य बातों के साथ-साथ यह दलील देते हुए समावेदन किया कि यदि निर्वाचन मई, 2018 मास में हुआ तो नए पदधारी को जो प्रभावी अवधि मिलेगी वह केवल मार्च, 2019 तक होगी, अर्थात् जो कि एक वर्ष से कम होगी और इसलिए वह संपूर्ण जोश से कृत्य करने और जनता को सेवा प्रदान करने की स्थिति में नहीं होगा और इसके अलावा, निर्वाचन कराने में पर्याप्त व्यय भी होगा । उसने निर्वाचन सुधारों से संबंधित भारत के विधि आयोग के प्रतिवेदन सं. 255 का सहारा लिया । इस आधार को सिद्ध करने के लिए अधिनियम की धारा 151 का अवलंब लिया गया था कि निर्वाचन कराना उक्त उपबंध के अधीन अनुज्ञेय नहीं था ।

6. उच्च न्यायालय ने धारा 151क में प्रयुक्त भाषा की संवीक्षा करते हुए यह राय व्यक्त की कि याची द्वारा दिए गए तर्क में कोई सार नहीं है और परिणामस्वरूप उसने रिट याचिका खारिज कर दी ।

7. हमने याची की ओर से विद्वान् काउन्सेल सुश्री अनंघा एस. देसाई के साथ-साथ विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल श्री विकास सिंह को भी सुना ।

8. निर्वाचन कराने और त्यागपत्र देने से संबंधित तारीखों के संबंध में कोई विवाद नहीं किया गया है । इसके अलावा, यह कोई ऐसा मामला नहीं है जिसमें निर्वाचित अभ्यर्थी के विरुद्ध उच्च न्यायालय के समक्ष कोई निर्वाचन अर्जी लंबित हो । यह भी विवादग्रस्त नहीं है कि लोक सभा के लिए साधारण निर्वाचन जून, 2019 में कराए जाने हैं ।

9. उक्त अविवादित तथ्यात्मक स्थिति होने के कारण, हमें केवल कानूनी उपबंधों और उप-निर्वाचन कराने के न्यायौचित्य का विश्लेषण करना है । अधिनियम का भाग 9 उप-निर्वाचनों के बारे में है । धारा 147 का संबंध राज्य सभा में आकस्मिक रिक्तियों से है । धारा 149 में लोक सभा में होने वाली आकस्मिक रिक्तियों का उल्लेख है । धारा 150 में राज्य विधान सभाओं में आकस्मिक रिक्तियों के बारे में कथन है और धारा 151 राज्य विधान परिषदों में होने वाली आकस्मिक रिक्तियों के संबंध में है । चूंकि धारा 151क, जो कि लोक प्रतिनिधित्व (संशोधन) अधिनियम, 1991 (1996 का 21) द्वारा तारीख 1 अगस्त, 1996 से अंतःस्थापित की गई थी, प्रस्तुत प्रयोजन के लिए सुसंगत है, इसलिए उसे नीचे उद्धृत किया जाता है :–

> "**151क. धारा 147, धारा 149, धारा 150 और धारा 151 में निर्दिष्ट रिक्तियों को भरने के लिए समय की परिसीमा** – धारा 147, धारा 149, धारा 150 और धारा 151 में किसी बात के होते हुए भी, उक्त धाराओं में से किसी में निर्दिष्ट किसी रिक्ति को भरने के लिए उप-निर्वाचन, रिक्ति होने की तारीख से छह मास की अवधि के भीतर कराया जाएगा :
>
> परन्तु इस धारा की कोई बात उस दशा में लागू नहीं होगी, जिसमें –
>
> (क) किसी रिक्ति से संबंधित सदस्य की पदावधि का शेष भाग एक वर्ष से कम है ; या

(ख) निर्वाचन आयोग, केन्द्रीय सरकार से परामर्श करके यह प्रमाणित करता है कि उक्त अवधि के भीतर ऐसा उप-निर्वाचन कराना कठिन है ।"

10. उपर्युक्त उपबंध सर्वोपरि खंड से प्रारंभ होता है और उसमें स्पष्ट रूप से यह कहा गया है कि धारा 147, धारा 149, धारा 150 और धारा 151 में किसी बात के होते हुए भी, उक्त धाराओं में से किसी में निर्दिष्ट किसी रिक्ति को भरने के लिए उप-निर्वाचन, रिक्ति होने की तारीख से छह मास की अवधि के भीतर कराया जाएगा । निर्वाचन कराना एक शर्त द्वारा नियंत्रित है, अर्थात्, उस रिक्ति के संबंध में किसी सदस्य की शेष पदावधि एक वर्ष से कम नहीं है । इसके अलावा उसमें यह अभिधारणा की गई है कि यदि निर्वाचन आयोग, केन्द्रीय सरकार से परामर्श करके यह प्रमाणित करता है कि उक्त अवधि के भीतर उप-निर्वाचन कराना कठिन है तो धारा 151क में अंतर्विष्ट उपबंध का प्रमुख भाग लागू नहीं होगा । प्रस्तुत मामले में, हमारा संबंध दूसरी अभिधारणा से नहीं है क्योंकि जो कुछ विचारार्थ उद्भूत हुआ है उसका संबंध केवल अवधि की संकल्पना से है ।

11. याची की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल श्री विकास सिंह ने यह दलील दी है कि धारा 151क में अंतर्विष्ट प्रतिषेध प्रत्यक्षतः लागू होता है और इसलिए उच्च न्यायालय के लिए निर्वाचन आयोग को निर्वाचन न कराने के लिए अवरुद्ध करना बेहतर होता । उसके द्वारा आगे यह प्रतिपादित किया गया है कि किसी निर्वाचन को कराने में राजकोष से खर्च की जाने वाली रकम अंततः करदाताओं पर भार डालती है और इसके अलावा, निर्वाचित अभ्यर्थी की केवल कुछ औपचारिक भूमिका होगी क्योंकि वह निर्वाचकगण के सदस्यों के लिए कुछ करने की स्थिति में नहीं होगा और इसलिए, निर्वाचन का संचालन अनुज्ञात नहीं किया जाना चाहिए ।

12. प्रारंभ में, हमें एक ओर अधिनियम की धारा 147, धारा 149, धारा 150 और धारा 151 तथा दूसरी ओर धारा 151 के बीच विभेद करना चाहिए । इन उपबंधों का निर्वचन करते समय यह ध्यान में रखना होगा कि यद्यपि किसी व्यक्ति का निर्वाचन करने का अधिकार लोकतंत्र के लिए मूलभूत है तथापि, यह केवल कानूनी अधिकार है । विधि की दृष्टि से यह भी सुस्थापित है कि उक्त अधिकार को शासित करने वाले विधानों का कड़ाई से अर्थान्वयन करना होगा ।

13. अधिनियम की धारा 151क के अंतःस्थापन से पूर्व **डी. संजीवय्या**

बनाम **निर्वाचन अधिकरण, आन्ध्र प्रदेश और अन्य**[1] वाले मामले में दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने एक ऐसे संविवाद पर विचार किया जो आकस्मिक रिक्ति उत्पन्न होने से संबंधित था और उस संदर्भ में, उप-निर्वाचनों से संबंधित अध्याय की स्कीम के प्रतिनिर्देश किया और संविधान के अनुच्छेद 190(3) का विश्लेषण किया । न्यायालय ने, उक्त अनुच्छेद और कानून के विभिन्न उपबंधों के प्रतिनिर्देश करने के पश्चात् और ऐसी तथ्यात्मक स्थिति का प्राख्यान करने के पश्चात् जहां निर्वाचन को चुनौती देने वाली कोई निर्वाचन अर्जी लंबित थी, निम्न प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

> "4. हम अपीलार्थी के तर्क को सही मानकर स्वीकार करने में असमर्थ हैं । हमारी राय में, अधिनियम की धारा 150 के उपबंधों का निर्वचन धारा 84 और धारा 98(ग) तथा उसी अधिनियम के भाग 3 के सुसंगत उपबंधों के संदर्भ में किया जाना चाहिए । यदि अपीलार्थी द्वारा दावे के साथ किया गया निर्वचन सही मानते हुए स्वीकार कर लिया जाता है तो जैसे ही कोई सदस्य अपने स्थान से त्यागपत्र देता है, उसके निर्वाचन को चुनौती देने वाली कोई निर्वाचन अर्जी लंबित रहते हुए भी वह रिक्ति तुरंत भरी जानी चाहिए । यदि वह अभ्यर्थी, जिसने निर्वाचन अर्जी फाइल की थी, अंततोगत्वा यह घोषणा प्राप्त कर लेता है कि उस सदस्य का निर्वाचन शून्य है और यह कि वह स्वयं सम्यक् रूप से निर्वाचित हो गया था तो एक ही निर्वाचन-क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करने वाले एक ही समय में दो अभ्यर्थी हो जाएंगे, एक वह जिसे साधारण निर्वाचन में सम्यक् रूप से निर्वाचित घोषित किया गया है और दूसरा वह जिसे उप-निर्वाचन में निर्वाचित घोषित किया गया है और एक असंभव स्थिति उत्पन्न हो जाएगी । यह कल्पना नहीं की जा सकती कि संसद् ने अधिनियम की धारा 150 अधिनियमित करते समय ऐसी स्थिति अनुध्यात की थी । संसद् का आशय यह नहीं हो सकता था कि जैसे ही कोई सदस्य विधान-मंडल में अपने स्थान से त्यागपत्र देता है तब निर्वाचन अर्जियों से संबंधित अधिनियम के भाग 6 के उपबंध निराकृत हो जाएंगे । अर्थान्वयन का यह सुस्थापित नियम है कि किसी कानून के उपबंधों का पठन इस प्रकार किया जाना चाहिए जिससे कि उनका एक-दूसरे से सामंजस्य हो और एक धारा के उपबंधों का प्रयोग किसी अन्य धारा के उपबंधों को विफल करने के लिए तब तक नहीं किया जा सकता जब तक

---

[1] ए. आई. आर. 1967 एस. सी. 1211.

कि उनके बीच समाधान कराना असंभव न हो..... ।"

न्यायालय ने आगे यह निर्णय दिया कि जब किसी निर्वाचन अर्जी को निर्वाचन आयोग द्वारा किसी अधिकरण को निर्देशित कर दिया गया हो और मामला अधिकरण के हाथ में हो तब याचिका का निपटारा विधि के अनुसार किया जाना होगा । अधिकरण को कार्यवाही पूरी करके यह न्यायनिर्णयन करना होगा कि निर्वाचित अभ्यर्थी ने निर्वाचन में कोई भ्रष्ट आचरण किया था अथवा नहीं और द्वितीयतः, उसे यह विनिश्चित करना होगा कि उस मामले में के द्वितीय प्रत्यर्थी को सम्यक् रूप से निर्वाचित किया गया घोषित किया जाना चाहिए अथवा नहीं । कोई निर्वाचित अभ्यर्थी विधान-मंडल में अपने स्थान से त्यागपत्र देकर अपने विरुद्ध फाइल की गई किसी निर्वाचन अर्जी से छुटकारा नहीं पा सकता है, चाहे उसके द्वारा त्यागपत्र देने के लिए कोई भी कारण क्यों न हो ।

14. इस संबंध में, **भारत का निर्वाचन आयोग** बनाम **तेलंगाना राष्ट्र समिति और एक अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय के प्रतिनिर्देश करना अत्यंत उपयोगी है । उक्त मामले में, प्रत्यर्थी ने आन्ध्र प्रदेश राज्य के दो विधानसभा निर्वाचन-क्षेत्रों की बाबत उप-निर्वाचन न कराने संबंधी भारत के निर्वाचन आयोग के विनिश्चय को चुनौती दी थी जिसे उच्च न्यायालय द्वारा अपास्त कर दिया गया था । उच्च न्यायालय ने अन्य बातों के साथ-साथ यह अभिनिर्धारित करते हुए अधिनियम की धारा 151क का अवलंब लेने संबंधी कार्रवाई को अभिखंडित कर दिया था कि उक्त उपबंध आज्ञापक है विशेषकर तब जब कि विधान सभा के अध्यक्ष द्वारा, जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 190(3)(ख) के अधीन अनुध्यात है, रिक्तियों को पहले ही अधिसूचित कर दिया था । यह उल्लेखनीय है कि उच्च न्यायालय ने इस बात को अनदेखा कर दिया था कि अभ्यर्थियों के विरुद्ध निर्वाचन अर्जियां लंबित हैं और उन्होंने इस आधार पर त्यागपत्र दे दिया था कि निर्वाचन अर्जियों के अनिश्चित परिणाम अधिनियम की धारा 151क के प्रभाव को कम न कर सके । दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने अधिनियम और अनुच्छेद 190(3)(ख) के उपबंधों की संवीक्षा करते हुए, निम्नलिखित कथन किया :–

> "45. यह अधिनियम संविधान के अनुच्छेद 324 के अधीन नियुक्त भारत के निर्वाचन आयोग द्वारा निर्वाचनों के संचालन के लिए एक पूर्ण संहिता है, जिसमें संविधान के अधीन संसद्, प्रत्येक राज्य

[1] (2011) 1 एस. सी. सी. 370.

के विधान-मंडल के लिए कराए जाने वाले निर्वाचन और राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के पदों के लिए निर्वाचनों के अधीक्षण, निदेशक, नियंत्रण और संचालन का उपबंध है । अतः, संविधान के अनुच्छेद 190(3)(ख) के उपबंधों का पठन 1951 के अधिनियम के उपबंधों के साथ करना होगा । उक्त अधिनियम की धारा 84 को यह अभिनिर्धारित करते हुए निरर्थक नहीं ठहराया जा सकता है कि संविधान के उपर्युक्त उपबंध के कारण सभी रिक्तियां उप-निर्वाचन द्वारा भरे जाने के लिए तुरंत उपलब्ध हो जाती हैं । यही दलील 1951 के अधिनियम की धारा 151क और उसकी धारा 84 के पश्चात्वर्ती भाग पर पड़ने वाले उसके प्रभाव के संबंध में लागू होती है । जैसा इसमें इसके पूर्व उल्लेख किया गया है, धारा 84 के अधीन की जाने वाली कार्यवाही को विशेषकर उक्त अधिनियम की धारा 8-क के प्रयोजनों के लिए अपनी प्रक्रिया पूरी करनी होगी । अतः, उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा इस मुद्दे पर अभिव्यक्त मतों को कायम नहीं रखा जा सकता है ।"

न्यायालय ने आगे यह कहा कि धारा 151क के पुरःस्थापन से, जहां तक धारा 84 के उपबंधों और परिणामस्वरूप अधिनियम की धारा 98(ग) और धारा 101(ख) का संबंध है, स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था हालांकि हो सकता है कि अधिनियम की धारा 150 के अर्थान्तर्गत एक आकस्मिक रिक्ति उद्भूत हुई हो । न्यायालय ने दो प्रवर्गों की रिक्तियों के बीच प्रभेद किया, अर्थात्, वे रिक्तियां, जिनमें निर्वाचन अर्जियां फाइल की गईं थीं और वे लंबित हैं और दूसरी वे रिक्तियों जहां ऐसा कोई मामला फाइल नहीं किया गया था और लंबित नहीं था । न्यायालय ने यह राय व्यक्त की कि प्रथम प्रवर्ग के मामलों में, रिक्तियों के बारे में यह नहीं माना जा सकता था कि मात्र इस कारण कि राज्य के किसी विधान-मंडल के सदन के किसी सदस्य ने त्यागपत्र दे दिया था और उसे अध्यक्ष द्वारा स्वीकार कर लिया गया था, वे रिक्तियां अधिनियम की धारा 151क के अधीन विहित समय के भीतर भरे जाने के प्रयोजनों के लिए उपलब्ध हो गईं हैं । उक्त निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए अधिनियम की धारा 84 पर विशेष बल दिया गया था । दूसरे प्रवर्ग के मामलों में, न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि रिक्तियों के बारे में यह अर्थान्वयन किया जाएगा कि वे ऐसी स्पष्ट रिक्तियां हैं जिनके संबंध में अधिनियम की धारा 151क के अधीन कार्रवाई करने की आवश्यकता है ।

15. कर्नाटक उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने **श्री थॉमस मेट्स गुडिनहो** बनाम **भारत का निर्वाचन आयोग, नई दिल्ली और अन्य**[1] वाले मामले में अधिनियम की धारा 151क का निर्वचन करते हुए निम्नलिखित रूप में मत व्यक्त किया :–

> "13. ..... निस्संदेह, धारा 151क में यह सुनिश्चित करने की ईप्सा की गई है कि कोई भी निर्वाचन-क्षेत्र छह मास से अधिक के लिए प्रतिनिधित्व के बिना न रहे । किन्तु यह बिना शर्त नहीं है । यह दो अपवादों के अध्यधीन है, अर्थात्, जहां किसी रिक्ति के संबंध में किसी सदस्य की शेष पदावधि एक वर्ष से कम है या जहां निर्वाचन आयोग, केन्द्रीय सरकार से परामर्श करके यह प्रमाणित करता है कि उक्त अवधि के भीतर उप-निर्वाचन कराना कठिन है । इसके अतिरिक्त, सर्वोपरि खंड लागू किए जाने के लिए धारा 147, धारा 149, धारा 150 और धारा 151 तक सीमित है । सर्वोपरि खंड में धारा 84 या धारा 98(ग) या धारा 101 के प्रतिनिर्देश नहीं किया गया है । अतः, इसका परिणाम यह है कि धारा 151क तब लागू नहीं होगी यदि कोई ऐसी निर्वाचन अर्जी लंबित है जिसमें निर्वाचित अभ्यर्थी के निर्वाचन को मात्र चुनौती देने की प्रार्थना नहीं की गई है बल्कि इस घोषणा की भी ईप्सा की गई है कि याची या किसी अन्य व्यक्ति को अधिनियम की धारा 101 के साथ पठित धारा 84 के अधीन निर्वाचित घोषित किया जाना चाहिए ।"

यह उल्लेखनीय है कि उक्त मत का **तेलंगाना राष्ट्र समिति** (उपर्युक्त) वाले मामले में अनुमोदन किया गया है ।

16. वर्तमान मामले में, कोई निर्वाचन अर्जी लंबित नहीं थी । निर्वाचित अभ्यर्थी ने तारीख 8 दिसम्बर, 2017 को अपना त्यागपत्र दे दिया था और उसे लोक सभा के अध्यक्ष द्वारा तारीख 14 दिसम्बर, 2017 को स्वीकार कर लिया गया था । धारा 151क की आज्ञा यह है कि रिक्ति उद्भूत होने की तारीख से छह मास की अवधि के भीतर निर्वाचन कराया जाए । जैसा कि तथ्यात्मक स्थिति से प्रदर्शित होता है, रिक्ति तब उद्भूत हुई जब लोक सभा के अध्यक्ष द्वारा तारीख 14 दिसम्बर, 2017 को

---

[1] ए. आई. आर. 2002 कर्नाटक 232.

त्यागपत्र स्वीकार कर लिया गया था । यह निर्विवाद है कि लोक सभा के लिए अगला साधारण निर्वाचन जून, 2019 में होना है । अतः, शेष पदावधि एक वर्ष से कम नहीं है । यह बात धारा 151क के परन्तुक के खंड (ख) द्वारा शासित होगी कि निर्वाचन कराया जाए अथवा नहीं और हमारा उससे कोई सरोकार नहीं है । इस आधार में बिल्कुल भी कोई सार नहीं है कि जून, 2019 में निर्वाचन कराए जाने से पूर्व आचार संहिता लागू हो जाएगी क्योंकि अधिनियम में ऐसा अनुध्यात नहीं है । निर्वाचन अर्जी के लंबित रहने के अधीन रहते हुए, मात्र अवधि ही शासित करने वाला कारक होना चाहिए क्योंकि वह सर्वोपरि खंड द्वारा नियंत्रित नहीं है । ऐसा निर्वचन लोकतंत्र के पवित्र सिद्धांत के अनुसार है और संसद् का आशय यह है कि किसी निर्वाचन-क्षेत्र को प्रतिनिधित्व के बिना न छोड़ा जाए । राजकोष पर पड़ने वाले भार के संबंध में अभिव्यक्त की गई चिन्ता को आधार नहीं माना जा सकता है । ऐसा इसलिए है क्योंकि प्रतिनिधित्व लोकतंत्र को निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा ही अपने आप को कायम रखना है । हम यह जोड़ने की जल्दबाजी कर सकते हैं कि मामला तब भिन्न होगा जब अभ्यर्थी के विरुद्ध कोई ऐसा निर्वाचन विवाद लंबित हो, जो कि अधिनियम की धारा 84 या धारा 98(ग) या धारा 101(ख) की परिधि के भीतर आता है । चूंकि ऐसी स्थिति नहीं है इसलिए उच्च न्यायालय द्वारा अभिव्यक्त मत पूर्णतः अभेद्य है ।

17. परिणामस्वरूप, चूंकि विशेष इजाजत याचिका में कोई सार नहीं है इसलिए वह खारिज की जाती है । खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

विशेष इजाजत याचिका खारिज की गई ।

ग्रो.

[2018] 4 उम. नि. प. 137

खुर्शीद अहमद

बनाम

जम्मू-कश्मीर राज्य

15 मई, 2018

न्यायमूर्ति एन. वी. रमना और न्यायमूर्ति एस. अब्दुल नज़ीर

रणबीर दंड संहिता, 1989 (संवत् 1989 का 12) – धारा 302 और 341 – हत्या – हेतु – दोषसिद्धि – अभियुक्त तथा मृतक के बीच लेन-देन को लेकर घटना के दिन झगड़ा होना – अभियुक्त द्वारा बाद में मृतक के सिर पर लोहे की छड़ से प्रहार किया जाना – मृतक को पहुंची क्षतियों के कारण मृत्यु हो जाना – अभिलेख पर उपलब्ध प्रत्यक्ष मौखिक साक्ष्य के साथ-साथ चिकित्सीय साक्ष्य से अभियुक्त की दोषिता इंगित होने और प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के साक्ष्य की संपुष्टि अन्य साक्षियों के साक्ष्य से होने पर अपराध कारित करने के लिए हेतु को साबित न करने की बात महत्वहीन हो जाती है और अभियुक्त के विरुद्ध मामला युक्तियुक्त संदेह के परे साबित हो जाने पर उसकी दोषसिद्धि उचित है तथा उसमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है ।

रणबीर दंड संहिता, 1989 – धारा 302 और 341 [सपठित जम्मू और कश्मीर साक्ष्य अधिनियम, 1977 संवत् की धारा 3] – हत्या – घनिष्ठ नातेदार साक्षी का प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य – विश्वसनीयता – दोषसिद्धि – यदि किसी प्रत्यक्षदर्शी साक्षी का साक्ष्य विश्वासोत्पादक है, भले ही वह आहत का घनिष्ठ नातेदार है, तो इसकी संपुष्टि की ईप्सा किए बिना छोटी-मोटी तात्विक विशिष्टियों के साथ उसका अवलंब लिया जाना उचित होगा और उसके साक्ष्य के आधार पर अभियुक्त को दोषसिद्ध किया जा सकता है ।

जम्मू और कश्मीर दंड प्रक्रिया संहिता, 1989 संवत् (1989 का 23) – धारा 423 – दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील – उच्च न्यायालय की शक्ति – दोषमुक्ति और दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील में अपील न्यायालय की हस्तक्षेप करने की शक्ति हालांकि एक जैसी है, किंतु निर्दोषिता की उपधारणा अभियुक्त के पक्ष में होती है और जहां दो मत संभव हों, वहां अपील न्यायालय दोषमुक्ति के आदेश में हस्तक्षेप नहीं करेगा अपितु तब

हस्तक्षेप करेगा जब उसका यह विचार है कि साक्ष्य का मूल्यांकन गलत बातों पर आधारित है और विचारण न्यायालय द्वारा अवैधता बरती गई है ।

अपील के तथ्यों के अनुसार, मृतक (अरशद सजाद), जो हार्डवेयर सामग्री का एक दुकानदार था, अपने पिता सजाद अहमद भट (अभि. सा. 9) के साथ सायंकाल में लगभग 5.00 बजे दुकान बंद करने के पश्चात् अपने घर जा रहा था, जब वे रास्ते में थे तब मस्जिद के निकट अपीलार्थी-अभियुक्त ने विपरीत दिशा से आकर उनका रास्ता अवरुद्ध किया और उन्हें गालियां देने लगा । जब वे उसकी गालियों को अनदेखा करके आगे बढ़ने लगे तो अपीलार्थी ने अरशद सजाद पर पीछे से उसके सिर पर लोहे की एक छड़ से आक्रमण किया । क्षतिग्रस्त अरशद सजाद और उसका पिता इसके पश्चात् अली मोहम्मद (अभि. सा. 3) नामक व्यक्ति के क्लीनिक पर गए और उसके परामर्श पर वे पुलिस थाना, भडेरवाह गए तथा पुलिस को घटना के बारे में सूचित किया । तद्नुसार, अभियुक्त-अपीलार्थी के विरुद्ध रणबीर दंड संहिता की धारा 341/323 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत की गई । इसके पश्चात्, पुलिस ने क्षतिग्रस्त को उपचार के लिए उप जिला अस्पताल, भडेरवाह भेजा । चूंकि उसकी हालत बिगड़ती जा रही थी, इसलिए उसे बेहतर उपचार के लिए राजकीय आयुर्विज्ञान महाविद्यालय, जम्मू स्थानांतरित किया गया, किंतु क्षतियों के कारण रास्ते में उसकी मृत्यु हो गई । अभियुक्त के विरुद्ध आरोप को धारा 302/341 में तब्दील किया गया । अन्वेषक अधिकारी ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अधीन साक्षियों के कथन अभिलिखित करने के पश्चात् अन्वेषण किया, जिसमें यह प्रकट हुआ कि वास्तव में मृतक पर आक्रमण करने का अभियुक्त का हेतु दिन में पहले एक वित्तीय लेन-देन को लेकर उनके बीच मृतक की दुकान पर हुए एक झगड़े से संबंधित था । अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा दी गई गारंटी और वचन के आधार पर मृतक ने गियासुद्दीन नामक व्यक्ति को कुछ जी. आई. शीटों का प्रदाय किया था । जब अपीलार्थी मृतक की दुकान पर आया, तो उसने अपीलार्थी पर संदाय करने के लिए जोर दिया । उस बात को लेकर अपीलार्थी और मृतक के बीच हाथापाई हुई थी । अपीलार्थी ने दुकान से जाते हुए यह घोषणा की कि वह मृतक को किसी और समय देख लेगा और जब सायंकाल में मृतक और उसका पिता (अभि. सा. 9) अपने घर जा रहे थे, तब अभियुक्त रास्ते में उनसे मिला और मृतक के सिर पर आक्रमण किया । अभियुक्त के विरुद्ध आरोप पत्र प्रस्तुत किया

गया । विचारण न्यायालय पूर्णरूपेण विचारण करने के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि अभियोजन पक्ष हेतु को साबित करने में असफल रहा है और अन्य साक्षियों सहित एकमात्र प्रत्यक्षदर्शी साक्षी (मृतक का पिता) का कथन असंपुष्टिकारी रहा है और क्योंकि अभियोजन पक्ष अभियुक्त की दोषिता को युक्तियुक्त संदेह के परे सिद्ध करने में असफल रहा, इसलिए अभियुक्त को रणबीर दंड संहिता की धारा 302/341 के अधीन अभिकथित अपराधों से दोषमुक्त कर दिया । जम्मू और कश्मीर राज्य ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए दोषमुक्ति के आदेश से व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । अपील का न्यायनिर्णयन करने के उपरांत उच्च न्यायालय ने विपरीत निष्कर्ष निकाला और यह मत व्यक्त किया कि एकमात्र प्रत्यक्षदर्शी साक्षी (मृतक के पिता) के साक्ष्य की संपुष्टि मौखिक, दस्तावेजी और विशेषज्ञ साक्ष्य से सम्यक् रूप से की गई है और विचारण न्यायालय ने इसे अनुचित रूप से नामंजूर करके न्याय की गंभीर हानि कारित की है । अतः, उच्च न्यायालय ने रणबीर दंड संहिता की धारा 302/341 के अधीन आरोपों के लिए दोषमुक्ति के आदेश को दोषसिद्धि में तब्दील करते हुए दंडादिष्ट किया । अभियुक्त ने उच्च न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – इसमें कोई संदेह नहीं है कि इस मामले में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट मृतक द्वारा पुलिस थाने में की गई मौखिक शिकायत के आधार पर दर्ज की गई थी, जो कि एक विश्वसनीय दस्तावेज है और शिकायत घटना के ठीक पश्चात् की गई थी । इस न्यायालय ने अनेक बार यह स्पष्ट किया है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट विश्व शब्दकोश नहीं है । यह आवश्यक नहीं है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज करते समय इसमें अपराध से संबंधित प्रत्येक ब्यौरा अंतर्विष्ट होना चाहिए । यहां इस मामले में इत्तिलाकर्ता, जिसे सिर पर गंभीर क्षति पहुंची थी और जो अपने पिता (अभि. सा. 9) के साथ अभि. सा. 3 के क्लीनिक पर और बाद में पुलिस थाने गया था, अत्यधिक तनाव में रहा होगा । ऐसी स्थिति में उनकी मानसिक दशा को समझा जा सकता है । ऐसी मानसिक हालत में, उनके द्वारा प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में घटनाओं का संपूर्ण घटना-क्रम प्रकट करने में असफल रहना न तो अस्वाभाविक है और न ही अभियोजन पक्षकथन के लिए घातक है । विचारण न्यायालय द्वारा मृतक के दो कथनों का गलत अर्थान्वयन किया गया है जिनमें से एक घटना के ठीक पश्चात् पुलिस थाने में किया गया

था और दूसरा अस्पताल में तब किया गया था जब उसकी हालत बिगड़ती जा रही थी । इस न्यायालय का यह मत है कि मृतक के अस्पताल में किए गए पश्चात्वर्ती कथन का, जो अन्वेषक अधिकारी द्वारा अभिलिखित किया गया था, अभि. सा. 9 के साक्ष्य से सम्यक् रूप से संपुष्टि होती है तथा इसे अविश्वसनीय मानने का कतई कोई कारण नहीं है और इस बाबत दी गई दलील सारहीन है । अभिलेख से यह भी स्पष्ट होता है कि तारीख 21 मई, 2006 को पुलिस द्वारा अभियुक्त के बताने पर अपराध के आयुध के रूप में प्रयुक्त 3 फुट लंबी और 8 सेंटीमीटर परिधि की लोहे की छड़ बरामद की गई थी । मोहम्मद हफीज़ (अभि. सा. 2) और अबीद हुसैन (अभि. सा. 10) के साक्ष्य से भी अभि. सा. 9 के परिसाक्ष्य की संपुष्टि होती है और हमले की बात साबित होती है क्योंकि अभि. सा. 2 और 10 ने स्वयं मृतक से उस पर हमले होने की बात सुनी थी । अभि. सा. 10 ने स्पष्ट रूप से यह अभिसाक्ष्य दिया है कि उसने दिन के समय अभियुक्त और मृतक के बीच मृतक की दुकान पर झगड़ा होते हुए और अभियुक्त द्वारा धमकी देते हुए भी देखा था । उसने यह भी कथन किया कि मृतक को उसकी मोटर साइकिल पर अस्पताल ले जाया गया था और वह मृतक का दाह-संस्कार होने तक सारे समय उसके साथ था । अभि. सा. 2 और 10 ने यह भी कथन किया है कि उन्होंने अभियुक्त के बताने पर अपराध के आयुध (लोहे की छड़) की बरामदगी को भी देखा था, क्योंकि पुलिस द्वारा आयुध की बरामदगी उनकी मौजूदगी में की गई थी । अतः, अभि. सा. 2 और 10 की मौजूदगी में आयुध की उक्त बरामदगी से और उनके अभिसाक्ष्यों से अभियोजन का पक्षकथन संपुष्ट और मजबूत होता है । डाक्टर ने यह राय व्यक्त की कि 12 घंटे की अवधि के भीतर किसी कुंद वस्तु से सिर पर पहुंची क्षति मृत्यु का कारण थी । डाक्टर द्वारा अपने साक्ष्य में विनिर्दिष्ट रूप से यह अभिसाक्ष्य दिया गया कि मृतक के शरीर पर पाई गईं क्षतियां मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त थीं । यह भी प्रकट किया गया कि अस्पताल में आरंभिक उपचार करते समय मृतक ने उसे बताया था कि जब वह अपने घर की ओर जा रहा था तो किसी व्यक्ति ने उस पर आक्रमण किया था । डाक्टर ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह बात स्पष्ट की कि जब मृतक को पर्यवेक्षण में रखा गया था, तब वह पूरे होश में था और एक शल्यक्रिया विशेषज्ञ को भी बुलाया गया था । रोगी को बेहतर उपचार मुहैया कराने के लिए राजकीय आयुर्विज्ञान महाविद्यालय, जम्मू स्थानांतरित करने हेतु ऐंबुलेंस भी प्रदान की गई थी । वह एक्स-रे की अन-उपलब्धता के कारण आरंभ में बाएं ललाटीय पार्श्विक अस्थि के अस्थिभंग का पता

नहीं लगा सका था, किंतु यदि इसका पता भी लग जाता, तब भी यह घातक ही हो सकता था, किंतु कुछ मामलों में यदि विशेषज्ञता-प्राप्त उपचार दिया जाता है तो जीवन बचाया जा सकता है । हमारे सुविचारित मत में, मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट और डा. राज कुमार (अभि. सा. 13) के साक्ष्य से अभि. सा. 9 के साक्ष्य की पूर्ण रूप से संपुष्टि होती है । अन्य अभियोजन साक्षियों के साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात्, इस न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि फरीद इकबाल (अभि. सा. 1) ने, जो एक स्वतंत्र साक्षी है, उस झगड़े की बात को साबित किया है जो मृतक की दुकान पर हुआ था और क्रोधित अभियुक्त मृतक को यह चेतावनी और धमकी दे रहा था कि वह उसे किसी समय देख लेगा । अभि. सा. 4-नज़ीर अहमद ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि पुलिस ने मरणोत्तर परीक्षा के समय कोरे कागज़ पर उसके हस्ताक्षर करवाए थे । तथापि, उसने मृतक का शव (प्रदर्श पीडब्ल्यू-एनएच) प्राप्त करने की बात को साबित किया है । अभि. सा. 5-रियाज़ अहमद ने भी मृतक का शव प्राप्त करने की बात को साबित करते हुए यह अभिसाक्ष्य दिया कि मृतक की मृत्यु के 20-25 दिन पश्चात् पुलिस ने मृतक की दुकान से एक रजिस्टर अभिगृहीत किया था और वह उसका साक्षी था । अभि. सा. 7-मोहम्मद रमज़ान ने यह कथन किया कि जब वह वर्ष 2006 में अस्पताल गया था, तब उसकी मौजूदगी में मृतक के शरीर से वस्त्र उतारे गए थे । तद्नुसार, उसने मृतक के वस्त्रों को अभिगृहीत करते हुए देखा था और अभिग्रहण ज्ञापन (प्रदर्श पीडब्ल्यू-एमआर) पर अपने हस्ताक्षर किए थे । मोहम्मद सलीम (अभि. सा. 8) ने भी यह अभिसाक्ष्य दिया है कि पुलिस ने मृतक के वस्त्र अभिगृहीत किए थे और उसने अभिग्रहण ज्ञापन पर अपने हस्ताक्षर किए थे । अभि. सा. 11-इस्तियाक अहमद और अभि. सा. 12-अमजद हनीफ ने भी अभियोजन के पक्षकथन का पूर्णतः समर्थन किया है । उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि अभिलेख पर उपलब्ध प्रत्यक्ष मौखिक साक्ष्य के साथ-साथ चिकित्सीय साक्ष्य से अभियुक्त की दोषिता इंगित होती है और अपराध कारित करने के लिए हेतु को साबित न करने की बात इस मामले के तथ्यों में महत्वहीन हो जाती है । पूर्वगामी चर्चा को ध्यान में रखते हुए और संपूर्ण सामग्री के सिंहावलोकन से यही निष्कर्ष निकलता है कि अभियोजन पक्ष ने अपने पक्षकथन को युक्तियुक्त संदेह के परे साबित किया है और अभियुक्त द्वारा फाइल की गई अपील में कोई सार नहीं है और तद्नुसार खारिज की जाती है । (पैरा 15, 18, 19, 20, 23 और 33)

यदि किसी प्रत्यक्षदर्शी साक्षी का साक्ष्य विश्वासोत्पादक है, भले ही वह आहत का घनिष्ठ नातेदार है, तो इसकी संपुष्टि की ईप्सा किए बिना छोटी-मोटी तात्विक विशिष्टियों के साथ उसका अवश्य अवलंब लिया जाना चाहिए । निस्संदेह यह सत्य है कि न्यायालयों को हितबद्ध साक्षियों के साक्ष्य पर विचार करते समय अवश्य सचेत रहना चाहिए । जैसा कि अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किया गया है, अभि. सा. 9 द्वारा अपने साक्ष्य में किए गए घटना के वर्णन से स्पष्ट रूप से वह रीति प्रतिबिंबित होती है जिस रीति में अभियुक्त ने मृतक पर आक्रमण किया था और सिर पर घातक क्षति कारित की थी । मृतक के पिता (अभि. सा. 9) के परिसाक्ष्य का मूल्यांकन संपूर्ण मामले की पृष्ठभूमि में करना चाहिए । इस न्यायालय की राय में, अभि. सा. 9 का परिसाक्ष्य विश्वासोत्पादक है और घटनाओं की शृंखला तथा इसके पारिस्थितिक साक्ष्य से उसके कथन का पूर्ण रूप से समर्थन होता है और इसके परिणामस्वरूप अभियोजन का पक्षकथन किसी संदेह के बिना मजबूत होता है । इस न्यायालय को यह विश्वास करने में कोई संकोच नहीं है कि अभि. सा. 9 घटना का एक 'स्वाभाविक' साक्षी है । सावधानीपूर्वक संवीक्षा करने पर इस न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि उसका साक्ष्य अंतर्निहित रूप से विश्वसनीय और पूर्णतः भरोसेमंद हैं । (पैरा 27)

दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील में अपील न्यायालय की शक्ति वैसी ही है जो दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील में है । किंतु दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील में न्यायालय को यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि निर्दोषिता की उपधारणा अभियुक्त के पक्ष में होती है और यह दोषमुक्ति के आदेश द्वारा और मजबूत हो जाती है । साथ ही, अपील न्यायालय दोषमुक्ति के आदेश में मुख्य रूप से वहां हस्तक्षेप नहीं करेगा क्योंकि दो मत संभव हैं, अपितु केवल तब हस्तक्षेप करेगा जब उच्च न्यायालय यह समझता है कि साक्ष्य का मूल्यांकन गलत बातों पर आधारित है और जब विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष में स्पष्ट अवैधता हो । प्रस्तुत मामले में, विचारण न्यायालय द्वारा किए गए साक्ष्य के मूल्यांकन में स्पष्ट अनियमितता है । उच्च न्यायालय ने दांडिक विधि शास्त्र के ठोस सिद्धांतों के आधार पर विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए दोषमुक्ति के निर्णय में हस्तक्षेप किया है और अभियुक्त को दोषसिद्ध किया है क्योंकि अभियोजन पक्ष अभियुक्त की दोषिता को युक्तियुक्त संदेह के परे साबित करने में सफल रहा है । (पैरा 32)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[2005]	2005 क्रिमिनल ला जर्नल 2199 : **हरबंस कौर और एक अन्य** बनाम **हरियाणा राज्य** ;	26
[2000]	(2000) 1 एस. सी. सी. 621 : **पदम सिंह** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ;	31
[1964]	[1964] 8 एस. सी. आर. 133 : **मसाल्ती** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ;	25
[1954]	[1954] 1 एस. सी. आर. 145 : **दलीप सिंह और अन्य** बनाम **पंजाब राज्य** ।	24

निर्दिष्ट निर्णय

[2011]	(2011) 11 एस. सी. सी. 140 : **रथीनम** उर्फ **रथीनम** बनाम **तमिलनाडु राज्य और एक अन्य** ;	9
[2010]	(2010) 13 एस. सी. सी. 657 : **सुनील कुमार शंभुदयाल गुप्ता और अन्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	9
[2009]	(2009) 9 एस. सी. सी. 719 : **जरनैल सिंह और अन्य** बनाम **पंजाब राज्य** ;	11
[2008]	(2008) 16 एस. सी. सी. 73 : **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **किशनपाल और अन्य** ;	11
[2002]	(2002) 7 एस. सी. सी. 117 : **नल्लाबोथु वेंकैया** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य** ;	11
[2002]	(2002) 6 एस. सी. सी. 650 : **बिंदेश्वरी प्रसाद सिंह और अन्य** बनाम **बिहार राज्य और एक अन्य** ;	9
[1973]	[1973] 3 उम. नि. प. 1101 = (1973) 2 एस. सी. सी. 793 : **शिवाजी सहाबराव बोबडे और एक अन्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	11

[1973] ए. आई. आर. 1973 एस. सी. 55 :
शिवाजी जेनू मोहिते बनाम **महाराष्ट्र राज्य** । 16

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2015 की दांडिक अपील सं. 872.

2012 की दांडिक दोषमुक्ति अपील सं. 36 में जम्मू-कश्मीर उच्च न्यायालय, जम्मू के तारीख 11 मार्च, 2015 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से — सर्वश्री मोहम्मद असलम गनी, ज्येष्ठ अधिवक्ता, सय्यद मेहदी इमाम, अतीफ सुहरावर्दी, उमर सिद्दिकी (सुश्री) वर्नीता रस्तोगी और तबरेज़ अहमद

प्रत्यर्थी की ओर से — सुश्री फौज़िया शकील, सर्वश्री उज्ज्वल सिंह, मोजाहिद करीम खान और एम शोयब आलम

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एन. वी. रमना ने दिया ।

न्या. रमना – यह अपील 2012 की दांडिक अपील सं. 36 में जम्मू और कश्मीर उच्च न्यायालय, जम्मू द्वारा तारीख 11 मार्च, 2015 को पारित किए गए निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है । उच्च न्यायालय ने उक्त निर्णय द्वारा प्रधान सेशन न्यायाधीश, भडेरवाह द्वारा पारित किए गए अपीलार्थी की दोषमुक्ति के आदेश को उलट दिया और उसे रणबीर दंड संहिता की धारा 302/341 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया और रणबीर दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए आजीवन कारावास भुगतने और 1,000/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने तथा रणबीर दंड संहिता की धारा 341 के अधीन अपराध के लिए 500/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने का दंडादेश दिया और जुर्माने की रकम उसकी संपदा से वसूल करने का निदेश दिया ।

2. अभियोजन पक्षकथन से यथा प्रकटित संक्षिप्त तथ्य ये हैं कि तारीख 18 मई, 2006 को हार्डवेयर सामग्री का एक दुकानदार अर्थात् अरशद सजाद अपने पिता सजाद अहमद भट (अभि. सा. 9) के साथ सायंकाल में लगभग 5.00 बजे दुकान बंद करने के पश्चात् अपने घर जा रहा था, जब वे रास्ते में थे तब मस्जिद के निकट इस अपील में अपीलार्थी ने विपरीत दिशा से आकर उनका रास्ता अवरुद्ध किया और उन्हें गालियां

देने लगा । जब वे उसकी गालियों को अनदेखा करके आगे बढ़ने लगे तो अपीलार्थी ने अरशद सजाद पर पीछे से उसके सिर पर लोहे की एक छड़ से आक्रमण किया । क्षतिग्रस्त अरशद सजाद और उसका पिता इसके पश्चात् अली मोहम्मद (अभि. सा. 3) नामक व्यक्ति के क्लीनिक पर गए और उसके परामर्श पर वे पुलिस थाना, भडेरवाह गए तथा पुलिस को घटना के बारे में सूचित किया । तद्नुसार, अभियुक्त-अपीलार्थी के विरुद्ध रणबीर दंड संहिता की धारा 341/323 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए 2006 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 53 रजिस्ट्रीकृत की गई । इसके पश्चात्, पुलिस ने क्षतिग्रस्त को उपचार के लिए उप जिला अस्पताल, भडेरवाह भेजा । चूंकि उसकी हालत बिगड़ती जा रही थी, इसलिए उसे बेहतर उपचार के लिए राजकीय आयुर्विज्ञान महाविद्यालय, जम्मू स्थानांतरित किया गया, किंतु क्षतियों के कारण रास्ते में उसकी मृत्यु हो गई ।

3. पुलिस थाना, भडेरवाह के थाना अधिकारी, निसार अहमद (अभि. सा. 14) ने अन्वेषण आरंभ किया, मृतक के शव को मरणोत्तर परीक्षा के लिए भेजा, उसके वस्त्र अभिगृहीत किए, घटनास्थल का निरीक्षण किया, रक्तरंजित तथा सादा मिट्टी के नमूने एकत्रित किए और स्थल नक्शा (प्रदर्श पीडब्ल्यू-एनए) और अभिग्रहण ज्ञापन तैयार किए । तारीख 20 मई, 2006 को अभियुक्त-अपीलार्थी को गिरफ्तार किया गया और उसके बताने पर लोहे की एक छड़ जो हमला करने का आयुध था, बरामद की गई और उसे रासायनिक परीक्षण के लिए भेजा । अन्वेषक अधिकारी ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अधीन साक्षियों के कथन अभिलिखित करने के पश्चात् अन्वेषण किया, जिसमें यह प्रकट हुआ कि वास्तव में मृतक पर आक्रमण करने का अभियुक्त का हेतु दिन में पहले एक वित्तीय लेन-देन को लेकर उनके बीच मृतक की दुकान पर हुए एक झगड़े से संबंधित था । अभिकथित रूप से, अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा दी गई गारंटी और वचन के आधार पर मृतक ने गियासुद्दीन नामक व्यक्ति को कुछ जी. आई. शीटों का प्रदाय किया था । जब अपीलार्थी मृतक की दुकान पर आया, तो उसने अपीलार्थी पर संदाय करने के लिए जोर दिया । उस बात को लेकर अपीलार्थी और मृतक के बीच हाथापाई हुई थी । फरीद इकबाल (अभि. सा. 1), मृतक के पिता-सजाद अहमद (अभि. सा. 9), अबीद हुसैन (अभि. सा. 10) और अमजद हनीफ (अभि. सा. 12) सहित राहगीरों ने उन्हें अलग-अलग किया । अपीलार्थी ने दुकान से जाते हुए यह घोषणा की कि वह मृतक को किसी और समय देख लेगा और जब सायंकाल में मृतक

और उसका पिता (अभि. सा. 9) अपने घर जा रहे थे, तब अभियुक्त रास्ते में उनसे मिला और मृतक के सिर पर आक्रमण किया ।

4. चूंकि सिर की क्षति के परिणामस्वरूप अरशद सजाद की मृत्यु हो गई थी, इसलिए अभियुक्त के विरुद्ध आरोप को रणबीर दंड संहिता की धारा 302/341 में तब्दील किया गया और तद्नुसार आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया । अभियुक्त ने दोषी होने से इनकार किया और विचारण किए जाने का दावा किया ।

5. विचारण में, अभियोजन पक्ष ने अभियुक्त की दोषिता को साबित करने के लिए कुल 14 साक्षियों की परीक्षा की, जबकि अभियुक्त ने अपनी प्रतिरक्षा में एक साक्षी की परीक्षा की । विचारण न्यायालय पूर्णरूपेण विचारण करने के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि अभियोजन पक्ष हेतु को साबित करने में असफल रहा है और अन्य साक्षियों सहित एकमात्र प्रत्यक्षदर्शी साक्षी (मृतक का पिता) का कथन असंपुष्टिकारी रहा है, और क्योंकि अभियोजन पक्ष अभियुक्त की दोषिता को युक्तियुक्त संदेह के परे सिद्ध करने में असफल रहा, इसलिए अभियुक्त को रणबीर दंड संहिता की धारा 302/341 के अधीन अभिकथित अपराधों से दोषमुक्त कर दिया ।

6. जम्मू और कश्मीर राज्य ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए दोषमुक्ति के आदेश से व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । अपील का न्यायनिर्णयन करने के उपरांत उच्च न्यायालय ने विपरीत निष्कर्ष निकाला और यह मत व्यक्त किया कि एकमात्र प्रत्यक्षदर्शी साक्षी (मृतक के पिता) के साक्ष्य की संपुष्टि मौखिक, दस्तावेजी और विशेषज्ञ साक्ष्य से सम्यक् रूप से की गई है और विचारण न्यायालय ने इसे अनुचित रूप से नामंजूर करके न्याय की गंभीर हानि कारित की है । अतः, उच्च न्यायालय ने रणबीर दंड संहिता की धारा 302/341 के अधीन आरोपों के लिए दोषमुक्ति के आदेश को दोषसिद्धि में तब्दील कर दिया और अभियुक्त-अपीलार्थी को इसमें ऊपर उल्लिखित अनुसार दंडादिष्ट किया । इसीलिए अभियुक्त इस न्यायालय के समक्ष अपील में आया है ।

7. अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का विश्लेषण करने और इसके विधिक पहलुओं पर विचार करने से पूर्व, हम पहले दोनों पक्षों की ओर से दी गई दलीलों पर विचार करना उचित समझते हैं ।

8. अभियुक्त-अपीलार्थी का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल मोहम्मद असलम गनी ने यह उल्लेख करते हुए जोरदार रूप से

अपने तर्क प्रस्तुत किए कि संपूर्ण मामले में अभियोजन पक्ष की ओर से की गई ऐसी कई गलतियां हैं जिनको उच्च न्यायालय द्वारा विचारण न्यायालय के सुविचारित निर्णय को उलटते हुए अनदेखा किया गया है । विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट की उत्पत्ति को ही विवादग्रस्त करते हुए यह तर्क दिया कि अभियोजन पक्ष के अनुसार तारीख 18 मई, 2006 को मृतक द्वारा 8.30 बजे अपराह्न में पुलिस थाना, भडेरवाह में घटना के बारे में मौखिक रिपोर्ट दी गई थी, जिसके आधार पर प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत की गई थी । अन्वेषक अधिकारी-निसार अहमद (अभि. सा. 14) के अनुसार, उसने मृतक का कथन 10.00 बजे अपराह्न में अस्पताल में अभिलिखित किया था । किंतु उक्त कथन मुख्य फाइल से गायब है, जिसे सहायक उप निरीक्षक जन मोहम्मद (प्रति. सा. 1) के हस्तलेख में लिखे हुए कथन से बदला गया है और उसकी अभियोजन साक्षी के रूप में परीक्षा नहीं की गई है । अन्वेषक अधिकारी के कथन के स्थान पर सहायक उप निरीक्षक जन मोहम्मद का कथन प्रतिस्थापित करने के पीछे कारण केवल अपीलार्थी को अपराध में फंसाना है ।

9. यह भी दलील दी गई कि अपराध कारित करने के लिए अपीलार्थी के ठोस हेतु का कोई सबूत न होने और न ही घटना का कोई स्वतंत्र प्रत्यक्षदर्शी साक्षी होने तथा यह तथ्य होने के बावजूद कि मृतक को केवल एक क्षति पहुंची थी, उच्च न्यायालय को विचारण न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण से भिन्न दृष्टिकोण नहीं अपनाया जाना चाहिए था । उच्च न्यायालय को अपीलार्थी की निर्दोषिता की उपधारणा के उच्च मानक के साथ मामले पर विचार करना चाहिए था । विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने विचारण न्यायालय द्वारा किए गए विनिश्चय का समर्थन करते हुए **रथीनम** उर्फ **रथीनम** बनाम **तमिलनाडु राज्य और एक अन्य**[1], **बिंदेश्वरी प्रसाद सिंह और अन्य** बनाम **बिहार राज्य और एक अन्य**[2] तथा **सुनील कुमार शंभुदयाल गुप्ता और अन्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[3] वाले मामलों में इस न्यायालय के निर्णयों का अवंलब लिया और यह दलील दी कि इस मामले में उच्च न्यायालय द्वारा किया गया हस्तक्षेप न्यायोचित नहीं है क्योंकि विचारण न्यायालय के निर्णय में कोई स्पष्ट गलती, अनौचित्य या अवैधता नहीं है ।

---

[1] (2011) 11 एस. सी. सी. 140.

[2] (2002) 6 एस. सी. सी. 650.

[3] (2010) 13 एस. सी. सी. 657.

10. विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने इस न्यायालय को इस बात के लिए प्रभावित करने की कोशिश की कि अभि. सा. 9 अर्थात् मृतक के पिता का साक्ष्य विश्वसनीय नहीं है और वह एक हितबद्ध साक्षी है । इसके अतिरिक्त, लेखा (खाता) के पृष्ठ 64 पर, वस्तुतः, यह पाया जा सकता है कि उसमें यह सिद्ध करने के लिए ऐसा कुछ नहीं है कि जियासुद्दीन द्वारा देय राशि का संदाय करने के लिए अभियुक्त प्रत्याभूति-दाता था । अभि. सा. 9 के इस अभिसाक्ष्य का सहारा लेकर कि वर्ष 2007 में विलायत गनी नामक व्यक्ति ने जियासुद्दीन के नाम में देय रकम का उसे संदाय कर दिया था, यह तर्क दिया गया कि अभियोजन पक्ष हेतु और अभिकथित अपराध को युक्तियुक्त संदेह के परे साबित करने में असफल रहा है और इसका कारण यह है कि वह कोई और व्यक्ति था जिसने देय रकम का संदाय किया था किंतु अभियोजन पक्ष ने अभियुक्त को गलत रूप से प्रत्याभूति-दाता के रूप में प्रदर्शित किया और उसे इस मामले में अनावश्यक रूप से फंसाया गया ।

11. **शिवाजी सहाबराव बोबडे और एक अन्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1], **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **किशनपाल और अन्य**[2], **नल्लाबोथु वेंकैया** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य**[3] और **जरनैल सिंह और अन्य** बनाम **पंजाब राज्य**[4] वाले मामलों में इस न्यायालय के विनिश्चयों का भी अवलंब लेते हुए विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने यह दलील दी कि उच्च न्यायालय ने अभियुक्त को, जिसे विचारण न्यायालय द्वारा पहले ही निर्दोष घोषित किया गया था और दोषमुक्त किया गया था, रणबीर दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध करते हुए इन महत्वपूर्ण विधिक सिद्धांतों की अनदेखी की कि परिस्थितियां निश्चायक प्रकृति की होनी चाहिएं । अभियोजन पक्ष का यह कथन है कि घटना के समय असलम और जाकिर नामक व्यक्ति भी घटनास्थल पर थे, किंतु उन्हें साक्षियों के रूप में नामित नहीं किया गया और न ही उनकी परीक्षा की गई । यहां तक कि अभिकथित प्रत्यक्षदर्शी साक्षी, मृतक के पिता ने भी निश्चित तौर पर यह नहीं देखा था कि मृतक को किसके हाथों क्षति पहुंची थी । उसके अपने शब्दों से यह पाया जा सकता है कि वह मृतक से एक मीटर आगे चल रहा था और अपने पुत्र के

---

[1] [1973] 3 उम. नि. प. 1101 = (1973) 2 एस. सी. सी. 793.

[2] (2008) 16 एस. सी. सी. 73.

[3] (2002) 7 एस. सी. सी. 117.

[4] (2009) 9 एस. सी. सी. 719.

चिल्लाने की आवाज सुनकर जब वह पीछे मुड़ा, तो अपीलार्थी वहां से गायब था । ऐसी स्थिति में, एकमात्र रूप से अभि. सा. 9 के साक्ष्य पर आधारित अभियोजन के पक्षकथन पर विश्वास नहीं किया जा सकता है, क्योंकि उसका साक्ष्य धारणाओं और उपधारणाओं तथा अनुमानों और अटकलबाजियों से भरा पड़ा है ।

12. विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल की अगली दलील यह है कि जब मृतक को अस्पताल ले जाया गया था, वह पूर्ण होश में था, किंतु परिचर्या करने वाले डाक्टर ने उपचार की ऐसी उचित प्रक्रिया नहीं अपनाई ताकि मृतक के जीवन को बचाया जा सके । डाक्टर ने एक्स-रे तक कराने की भी सलाह नहीं दी । वास्तव में, मृतक की मृत्यु के लिए चिकित्सीय उपेक्षा को उत्तरदायी ठहराया जाना चाहिए ।

13. दूसरी ओर, जम्मू और कश्मीर राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने उच्च न्यायालय के निर्णय का समर्थन करते हुए यह दलील दी कि अभियुक्त की दोषिता को साबित करने के लिए अभिलेख पर पर्याप्त सामग्री है, जिसका साक्षियों के साक्ष्य से सम्यक् रूप से समर्थन होता है और चिकित्सीय साक्ष्य से संपुष्टि होती है । घटना के ठीक पश्चात् मृतक व्यक्तिगत रूप से पुलिस थाने गया था और सूचित किया था कि किन परिस्थितियों में अभियुक्त ने उस पर आक्रमण किया था । यहां तक कि घटना के पश्चात् तीन घंटे के भीतर अन्वेषक अधिकारी ने क्षतिग्रस्त आहत (मृतक) का कथन, जब उसे उपचार के लिए अस्पताल भेजा गया था, अभिलिखित किया था जहां मृतक ने अन्वेषक अधिकारी को और विस्तार से दिन में जिस वित्तीय लेन-देन के संबंध में झगड़ा हुआ था और जिसके लिए अभियुक्त प्रत्याभूति-दाता था, के बारे में बताया था । जब अभिलेख पर स्वयं मृतक के कथन के रूप में प्रत्यक्ष साक्ष्य और मृतक के पिता-सजाद अहमद (अभि. सा. 9) का प्रत्यक्षदर्शी कथन उपलब्ध है, तो अभियोजन पक्ष हेतु को साबित करने के लिए और अधिक दायित्वाधीन नहीं है । इसके साथ-साथ, उन सभी साक्षियों की परीक्षा करना भी अतात्विक है, जो क्षतिग्रस्त को अस्पताल लेकर गए थे । इसी प्रकार, हमले के बारे में पुलिस को सूचित करने की अली मोहम्मद (अभि. सा. 3) की सलाह पर जब मृतक जल्दी-से-जल्दी पुलिस थाने पहुंचा, तब उसका ध्यान पुलिस को केवल इस सीमा तक सूचित करने का रहा होगा कि वह कैसे क्षतिग्रस्त हुआ और वह तुरंत चिकित्सीय सहायता प्राप्त करे, और किसी गंभीर रूप से क्षतिग्रस्त व्यक्ति से उसी समय पर संपूर्ण घटनाक्रम का वर्णन करने की

प्रत्याशा नहीं की जा सकती है । ऐसी परिस्थितियों में, उच्च न्यायालय ने अपराध में आलिप्त करने वाले तथ्यों और परिस्थितियों का ठीक ही निर्धारण किया है और एक विवेकपूर्ण निर्णय द्वारा दोषमुक्ति के आदेश को दोषसिद्धि में तब्दील किया है, जिसके लिए अभियुक्त-अपीलार्थी दायी था क्योंकि उसने मृतक पर वह धन संदाय करने की केवल मांग करने पर अमानवीय आक्रमण किया था, जिसके लिए वह प्रत्याभूति-दाता था ।

14. दोनों पक्षों के विद्वान् काउंसेलों को सुनने और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का परिशीलन करने के पश्चात् हम दलीलों पर एक-एक करके विचार करेंगे । अभियुक्त-अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल की सर्वप्रथम दलील तारीख 18 मई, 2006 को रजिस्ट्रीकृत की गई 2006 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 53 पर टिके विश्वास के विषय में है । हम अभिलेख पर सामग्री से यह पाते हैं कि घटना के ठीक पश्चात् मृतक और उसका पिता-सजाद अहमद (अभि. सा. 9) प्राथमिक उपचार के लिए अली मोहम्मद (अभि. सा. 3) के क्लीनिक पर गए थे और फिर उसकी सलाह पर वे लगभग 8.45 बजे अपराह्न में पुलिस थाने गए और एक मौखिक शिकायत दर्ज कराई । इस मौखिक शिकायत के आधार पर 2006 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 53 रजिस्ट्रीकृत की गई और अन्वेषण का कार्य हैड कांस्टेबल, वेद राज (सं. 185) को सौंपा गया । इस तथ्य की अभिपुष्टि मृतक के पिता (अभि. सा. 9), अली मोहम्मद (अभि सा. 3) और अन्वेषक अधिकारी, निसार अहमद (अभि. सा. 14) के परिसाक्ष्यों द्वारा होती है । अभि. सा. 3 के अनुसार, घटना के दिन मृतक और उसका पिता दो-चार व्यक्तियों के साथ क्षतिग्रस्त/मृतक के उपचार के लिए उसके क्लीनिक पर आए थे, जिस पर उसने कोई उपचार किए बिना उन्हें पहले पुलिस थाने जाने की सलाह दी थी ।

15. अन्वेषक अधिकारी, निसार अहमद (अभि. सा. 14) ने यह कथन किया कि मौखिक रिपोर्ट मुंशी द्वारा लिखी गई थी और इस साक्षी ने उस पर (पर्चा-53) अपने हस्ताक्षर किए थे । यह औपचारिकता पूर्ण करने के पश्चात् उसने अन्वेषण का कार्य हवलदार वेद राज को सौंपा था । उसके पश्चात् उसने सबसे पहले क्षतिग्रस्त को अस्पताल भेजा और बाद में लगभग 11.00 बजे अपराह्न में वह अस्पताल में क्षतिग्रस्त के पास गया । उसके उपरांत, उसकी हालत गंभीर पाए जाने पर उसने अन्वेषण का कार्य संभाला और क्षतिग्रस्त का कथन अभिलिखित किया और रणबीर दंड संहिता की धारा 307 के अधीन अपराध जोड़ा गया । उसने विनिर्दिष्ट रूप

से यह उल्लेख किया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अधीन अभिलिखित कथन उसके अपने हस्तलेख में नहीं था किंतु उसने इस पर अपने हस्ताक्षर किए थे । हमारी राय में, इसमें कोई संदेह नहीं है कि इस मामले में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट मृतक द्वारा पुलिस थाने में की गई मौखिक शिकायत के आधार पर दर्ज की गई थी, जो कि एक विश्वसनीय दस्तावेज है और शिकायत घटना के ठीक पश्चात् की गई थी । इस न्यायालय ने अनेक बार यह स्पष्ट किया है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट विश्व शब्दकोश नहीं है । यह आवश्यक नहीं है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज करते समय इसमें अपराध से संबंधित प्रत्येक ब्यौरा अंतर्विष्ट होना चाहिए । यहां इस मामले में इत्तिलाकर्ता, जिसे गंभीर सिर पर क्षति पहुंची थी और जो अपने पिता (अभि. सा. 9) के साथ अभि. सा. 3 के क्लीनिक पर और बाद में पुलिस थाने गया था, अत्यधिक तनाव में रहा होगा । ऐसी स्थिति में उनकी मानसिक दशा को समझा जा सकता है । ऐसी मानसिक हालत में, उनके द्वारा प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में घटनाओं का संपूर्ण घटनाक्रम प्रकट करने में असफल रहना न तो अस्वाभाविक है और न ही अभियोजन के पक्षकथन के लिए घातक है । विचारण न्यायालय द्वारा मृतक के दो कथनों का गलत अर्थान्वयन किया गया है जिनमें से एक घटना के ठीक पश्चात् पुलिस थाने में किया गया था और दूसरा अस्पताल में तब किया गया था जब उसकी हालत बिगड़ती जा रही थी । हमारा यह मत है कि मृतक के अस्पताल में किए गए पश्चात्वर्ती कथन का, जो अन्वेषक अधिकारी द्वारा अभिलिखित किया गया था, अभि. सा. 9 के साक्ष्य से सम्यक् रूप से संपुष्टि होती है तथा इसे अविश्वसनीय मानने का कतई कोई कारण नहीं है और इस बाबत दी गई दलील सारहीन है ।

16. एक अन्य तर्क यह दिया गया है कि अपराध कारित करने का कोई हेतु नहीं था और ठोस हेतु के अभाव में अपीलार्थी को रणबीर दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषी नहीं ठहराया जा सकता है । प्रस्तुत मामले में, हेतु का पता उस पहली घटना के विषय में अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए साक्ष्य से लगाया जा सकता है, जो मृतक और अभियुक्त के बीच एक लेन-देन के सिलसिले में धन के संदाय के संबंध में घटी थी, जिसमें अभियुक्त प्रत्याभूति-दाता था । पूर्ववर्ती झगड़े के कारण ही पश्चात्वर्ती घटना घटी थी जिसमें अभियुक्त ने लोहे की एक छड़ से मृतक पर प्रहार किया था और जिसके कारण मृतक की मृत्यु हो गई थी । यह मत व्यक्त करना समुचित है कि हॉल्सबरी के लॉज ऑफ इंग्लैंड, तृतीय संस्करण में "हेतु" के विषय में यह कहा गया है कि "अभियोजन पक्ष हेतु

को साबित कर सकता है, किंतु किसी अपराध के लिए हेतु को साबित करना आबद्धकर नहीं है" । "हेतु" एक मनोवेग है जो व्यक्ति को एक विशिष्ट कृत्य करने के लिए बाध्य करता है । किंतु सभी मामलों में अभियोजन पक्ष के लिए वास्तविक हेतु को साबित करना अत्यंत कठिन होगा । हेतु एक दुधारी हथियार है, जब अभिलेख पर प्रत्यक्ष और विश्वसनीय साक्ष्य उपलब्ध है तो हेतु महत्वहीन हो जाता है । पारिस्थितिक साक्ष्य के मामले में हेतु का महत्व प्रत्यक्ष साक्ष्य के मामले के बजाय और अधिक हो जाता है । प्रत्यक्ष और अकाट्य साक्ष्य के मामले में, यदि यह धारणा भी कर ली जाए कि किसी हेतु का होना नहीं समझा जा सकता है, फिर भी अभियोजन के वृत्तांत की परीक्षा की जानी चाहिए । किसी दांडिक मामले में हेतु की विद्यमानता के महत्व के संबंध में यहां **शिवाजी जेनू मोहिते** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा अधिकथित विनिश्चयाधार पर विचार करना उपयोगी होगा ।

> "यदि अभियोजन पक्ष प्रेरित करने वाले हेतु का पता लगाने में समर्थ नहीं रहा है, तो इस बात से उस साक्षी की विश्वसनीयता पर संदेह नहीं किया जा सकता है जिसे प्रत्यक्षदर्शी साक्षी होना साबित किया गया है । निस्संदेह, हेतु के बारे में साक्ष्य उन मामलों में अत्यधिक महत्व रखेगा जो पूर्ण रूप से पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित हैं । ऐसे मामले में ऐसे साक्ष्य से परिस्थितियों की शृंखला में एक और कड़ी जुड़ जाएगी । किंतु ऐसा उन मामलों में नहीं होगा, जहां विश्वसनीय प्रत्यक्षदर्शी साक्षी हैं, यद्यपि ऐसे मामलों में भी यदि हेतु को उचित रूप से साबित किया जाता है, तो ऐसे सबूत से अभियोजन का पक्षकथन मजबूत हो जाएगा और न्यायालय द्वारा निकाले गए अंततोगत्वा निष्कर्ष को पुष्ट करेगा । किंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि यदि हेतु सिद्ध नहीं होता है तो किसी प्रत्यक्षदर्शी साक्षी का साक्ष्य अविश्वसनीय हो जाता है ।"

17. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, हमें यह परीक्षा करनी है कि क्या अभियोजन पक्ष हेतु को साबित करने में सफल रहा है और अभियुक्त के अभिकथित कृत्य को साबित करने के लिए अभिलेख पर क्या साक्ष्य उपलब्ध है । प्रस्तुत मामले में, अभि. सा. 9 के अनुसार, मृतक ने कुछ जी. आई. टीन की शीटें गियासुद्दीन नामक व्यक्ति को प्रदाय की थीं और

---

[1] ए. आई. आर. 1973 एस. सी. 55.

अभियुक्त इसके संदाय के लिए प्रत्याभूति-दाता था । घटना के दिन जब मृतक ने अभियुक्त से धन का संदाय करने की मांग की तो वह नाराज हो गया और मृतक की गर्दन पकड़ ली तथा उसकी पिटाई करने लगा, जिससे उसकी गर्दन की दाईं तरफ रगड़ के कुछ चिह्न भी पड़े हुए पाए थे । उस सुसंगत समय पर, फरीद इकबाल (अभि. सा. 1), अमजद हनीफ (अभि. सा. 12) और अबीद हुसैन (अभि. सा. 10) वहां मौजूद थे और उन्होंने उनको अलग-अलग किया था । तब अभियुक्त ने मृतक को यह धमकी दी थी कि वह किसी समय उसे देख लेगा । मृतक दुकान बंद करने के पश्चात् जब अपने पिता के साथ घर जा रहा था, तो रास्ते में अभियुक्त अपने हाथ में लोहे की एक छड़ लिए हुए विपरीत दिशा से सामने आया और उनका रास्ता अवरुद्ध किया तथा उन्हें गालियां दीं । जब वे आगे बढ़े, तो अभियुक्त ने छड़ से मृतक के सिर पर प्रहार किया, जिसके कारण वह लहुलुहान होकर नीचे गिर गया । जब अभि. सा. 9 ने अपने पुत्र के चिल्लाने पर प्रतिक्रिया की, तो अभियुक्त घटनास्थल से गायब हो गया । उसके पश्चात्, वे प्राथमिक उपचार के लिए एक स्थानीय डाक्टर (अभि. सा. 3) के पास गए और फिर पुलिस थाने में मामले की रिपोर्ट दी ।

18. अभिलेख से यह भी स्पष्ट होता है कि तारीख 21 मई, 2006 को पुलिस द्वारा अभियुक्त के बताने पर अपराध के आयुध के रूप में प्रयुक्त 3 फुट लंबी और 8 सेंटीमीटर परिधि की लोहे की छड़ प्रदर्श पीडब्ल्यू-एमएच1 द्वारा बरामद की गई थी । मोहम्मद हफीज़ (अभि. सा. 2) और अबीद हुसैन (अभि. सा. 10) के साक्ष्य से भी अभि. सा. 9 के परिसाक्ष्य की संपुष्टि होती है और हमले की बात साबित होती है क्योंकि अभि. सा. 2 और 10 ने स्वयं मृतक से उस पर हमले होने की बात सुनी थी । अभि. सा. 10 ने स्पष्ट रूप से यह अभिसाक्ष्य दिया है कि उसने दिन के समय अभियुक्त और मृतक के बीच मृतक की दुकान पर झगड़ा होते हुए और अभियुक्त द्वारा धमकी देते हुए भी देखा था । उसने यह भी कथन किया कि मृतक को उसकी मोटर साइकिल पर अस्पताल ले जाया गया था और वह मृतक का दाह-संस्कार होने तक सारे समय उसके साथ था । अभि. सा. 2 और 10 ने यह भी कथन किया है कि उन्होंने अभियुक्त के बताने पर अपराध के आयुध (लोहे की छड़) की बरामदगी को भी देखा था, क्योंकि पुलिस द्वारा आयुध की बरामदगी उनकी मौजूदगी में की गई थी । अतः, अभि. सा. 2 और 10 की मौजूदगी में आयुध की उक्त बरामदगी से और उनके अभिसाक्ष्यों से अभियोजन का पक्षकथन संपुष्ट और मजबूत

होता है ।

19. हमने डा. राज कुमार (अभि. सा. 13) के साक्ष्य पर भी अति सावधानीपूर्वक विचार किया है, जिसने तारीख 19 मई, 2006 को मृतक के शव की मरणोत्तर परीक्षा की थी । मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट (उपाबंध पी/2) से यह दर्शित होता है कि मृतक को निम्नलिखित क्षतियां पहुंची थीं :–

1. बाएं ललाटीय पार्श्विक क्षेत्र पर 1.5 सें. मी. × 0.25 सें. मी. हड्डी की गहराई तक विदीर्ण घाव (टांके लगा हुआ) ।

2. गर्दन की दाईं तरफ 1/2 सें. मी. लंबाई के तीन रेखाकार खरोंच के चिह्न ।

आंतरिक परीक्षण करने पर डाक्टर ने पाया –

1. बाईं कनपटी के ललाटीय क्षेत्र पर खरोंचें ।

2. बाएं लैमप्रे पार्श्विक क्षेत्र पर खोपड़ी के भीतर हेमाटोमा ।

3. बाएं ललाटीय खंड पर लोब टोर्न मेराजिज ।

4. अंदर स्थित बाईं ललाटीय पार्श्विक लोब विर्दीण ।

डाक्टर ने यह राय व्यक्त की कि 12 घंटे की अवधि के भीतर किसी कुंद वस्तु से सिर पर पहुंची क्षति मृत्यु का कारण थी । डाक्टर द्वारा अपने साक्ष्य में विनिर्दिष्ट रूप से यह अभिसाक्ष्य दिया गया कि मृतक के शरीर पर पाई गई क्षतियां मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त थीं । यह भी प्रकट किया गया कि अस्पताल में आरंभिक उपचार करते समय मृतक ने उसे बताया था कि जब वह अपने घर की ओर जा रहा था तो किसी व्यक्ति ने उस पर आक्रमण किया था । डाक्टर ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह बात स्पष्ट की कि जब मृतक को पर्यवेक्षण में रखा गया था, तब वह पूरे होश में था और एक शल्यक्रिया विशेषज्ञ को भी बुलाया गया था । रोगी को बेहतर उपचार मुहैया कराने के लिए राजकीय आयुर्विज्ञान महाविद्यालय, जम्मू स्थानांतरित करने हेतु ऐंबुलेंस भी प्रदान की गई थी । वह एक्स-रे की अन-उपलब्धता के कारण आंरभ में बाएं ललाटीय पार्श्विक अस्थि के अस्थिभंग का पता नहीं लगा सका था, किंतु यदि इसका पता भी लग जाता, तब भी यह घातक ही हो सकता था, किंतु कुछ मामलों में यदि विशेषज्ञता-प्राप्त उपचार दिया जाता है तो जीवन बचाया जा सकता है । हमारे सुविचारित मत में, मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट और डा. राज कुमार (अभि. सा. 13) के साक्ष्य से अभि. सा. 9 के साक्ष्य की पूर्ण रूप से संपुष्टि होती है ।

20. अन्य अभियोजन साक्षियों के साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात्, हमारा यह निष्कर्ष है कि फरीद इकबाल (अभि. सा. 1) ने, जो एक स्वतंत्र साक्षी है, उस झगड़े की बात को साबित किया है जो मृतक की दुकान पर हुआ था और क्रोधित अभियुक्त मृतक को यह चेतावनी और धमकी दे रहा था कि वह उसे किसी समय देख लेगा । अभि. सा. 4-नज़ीर अहमद ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि पुलिस ने मरणोत्तर परीक्षा के समय कोरे कागज़ पर उसके हस्ताक्षर करवाए थे । तथापि, उसने मृतक का शव (प्रदर्श पीडब्ल्यू-एनएच) प्राप्त करने की बात को साबित किया है । अभि. सा. 5-रियाज़ अहमद ने भी मृतक का शव प्राप्त करने की बात को साबित करते हुए यह अभिसाक्ष्य दिया कि मृतक की मृत्यु के 20-25 दिन पश्चात् पुलिस ने मृतक की दुकान से एक रजिस्टर अभिगृहीत किया था और वह उसका साक्षी था । अभि. सा. 7- मोहम्मद रमज़ान ने यह कथन किया कि जब वह वर्ष 2006 में अस्पताल गया था, तब उसकी मौजूदगी में मृतक के शरीर से वस्त्र उतारे गए थे । तद्नुसार, उसने मृतक के वस्त्रों को अभिगृहीत करते हुए देखा था और अभिग्रहण ज्ञापन (प्रदर्श पीडब्ल्यू-एमआर) पर अपने हस्ताक्षर किए थे । मोहम्मद सलीम (अभि. सा. 8) ने भी यह अभिसाक्ष्य दिया है कि पुलिस ने मृतक के वस्त्र अभिगृहीत किए थे और उसने अभिग्रहण ज्ञापन पर अपने हस्ताक्षर किए थे । अभि. सा. 11-इस्तियाक अहमद और अभि. सा. 12-अमजद हनीफ ने भी अभियोजन के पक्षकथन का पूर्णतः समर्थन किया है ।

21. प्रतिरक्षा साक्षी जन मोहम्मद (प्रति. सा. 1) के साक्ष्य पर विचार करने के उपरांत यह प्रतीत होता है कि सुसंगत समय पर वह सहायक उप निरीक्षक के रूप में कार्य कर रहा था, वह अच्छी तरह से उर्दू लिख और पढ़ सकता था, जबकि अन्वेषक अधिकारी (अभि. सा. 14) उर्दू नहीं लिख सकता था । इसलिए अन्वेषक अधिकारी के निदेश पर उसने प्रदर्श, जैसे कि स्थल नक्शा (प्रदर्श पीडब्ल्यू एनए), अभिग्रहण ज्ञापन (प्रदर्श पीडब्ल्यू एसएच 2), फर्द इंकशाफ (प्रदर्श पीडब्ल्यू एनएच), फर्द बरामदगी (प्रदर्श पीडब्ल्यू एनएच 1), फर्द सुपुर्दनामा (प्रदर्श पीडब्ल्यू एसएच3), फर्द जमा तलाशी (प्रदर्श पीडब्ल्यू एनएवी) और साक्षियों के कथन स्वयं अपने हस्तलेख में तैयार किए थे । उसकी प्रतिपरीक्षा में यह पता चला कि वह अभियुक्त का एक विशिष्ट संबंधी है और केवल आठवीं कक्षा तक शिक्षित है । अन्वेषण उसके द्वारा नहीं किया गया था, अपितु अन्वेषक अधिकारी के निदेशों पर उसने केवल ज्ञापनों के आलेखन का कार्य किया था, जिनमें उसकी सत्यनिष्ठा संदेहास्पद रही क्योंकि उसने अभियोजन के पक्षकथन

को तब्दील करने की कोशिश की थी । ऐसे मामले में, हम उसके अभिसाक्ष्य को कोई महत्व नहीं दे सकते हैं ।

22. यह दलील दी गई कि अभियुक्त अभिकथित लेन-देन का बिल्कुल भी प्रत्याभूति-दाता नहीं था और उसे इस मामले में अनावश्यक रूप से फंसाया गया था । हमारे मत में, इस न्यायालय को यह पता लगाने के लिए वित्तीय लेन-देन की तह में जाने की आवश्यकता नहीं है कि मृतक ने, जो हार्डवेयर की वस्तुओं का एक छोटा व्यापारी था, अपनी लेखा बहियों को उचित क्रम में रखा था या नहीं और कौन ऋणी है और कौन प्रत्याभूति-दाता है । हमारा सरोकार इस बात पर विचार करना है कि क्या अभियुक्त ने वह आरोपित कृत्य किया था जिसके कारण मृतक की मृत्यु हुई और क्या अभियुक्त विधि के अनुसार दंडित किए जाने का दायी है । यह प्रतीत होता है कि विचारण न्यायालय अभिलेख पर के साक्ष्य का मूल्यांकन करते समय गुमराह हुआ और मामले से जुड़ी सामग्री और विधिक पहलुओं की अनदेखी करके अभियुक्त को दोषमुक्त कर दिया ।

23. उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, हमारा यह सुविचारित मत है कि अभिलेख पर उपलब्ध प्रत्यक्ष मौखिक साक्ष्य के साथ-साथ चिकित्सीय साक्ष्य से अभियुक्त की दोषिता इंगित होती है और अपराध कारित करने के लिए हेतु को साबित न करने की बात इस मामले के तथ्यों में महत्वहीन हो जाती है ।

24. विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने यह दलील दी कि वर्तमान मामले में, अभियोजन पक्ष के अनुसार, मृतक का पिता, सजाद अहमद (अभि. सा. 9) अकेला व्यक्ति था जो घटना के समय घटनास्थल पर मौजूद था । अतः, संपूर्ण मामला उसके साक्ष्य की सत्यता पर निर्भर है । अभि. सा. 9 के मृतक का पिता होने के कारण, अपीलार्थी-अभियुक्त ने स्वाभाविक रूप से यह अभिकथन किया कि वह एक हितबद्ध साक्षी है और इसलिए उसका साक्ष्य विश्वसनीय नहीं है । हम ऐसी दलीलों का समर्थन नहीं कर सकते हैं । इस न्यायालय ने कई मामलों में हितबद्ध साक्षी की सत्यता के पहलू पर विचार किया है । **दलीप सिंह और अन्य** बनाम **पंजाब राज्य**[1] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया है :–

> "साधारणतया, कोई घनिष्ठ संबंधी वास्तविक अपराधी को छोड़कर किसी निर्दोष व्यक्ति को नहीं फंसाएगा । यह सही है कि

---

[1] [1954] 1 एस. सी. आर. 145.

जब भावनाएं अतिरेक पर हों और शत्रुता का व्यक्तिगत कारण हो, तब साक्षी की जिस निर्दोष व्यक्ति के प्रति दुश्मनी है, उसे भी दोषी व्यक्ति के साथ घसीटने की प्रवृत्ति रहती है, किंतु ऐसी किसी आलोचना का अवश्य आधार होना चाहिए और कोई आधार न होने के कारण नातेदारी का तथ्य प्रायः सत्यता की निश्चित गारंटी होती है ।"

25. **मसाल्ती** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है :–

" इसमें कोई संदेह नहीं है कि जब किसी दांडिक न्यायालय को ऐसे साक्षियों द्वारा दिए गए साक्ष्य का मूल्यांकन करना होता है, जो पक्षपाती या हितबद्ध हैं, तो न्यायालय को ऐसे साक्ष्य का विवेचन करने में अति सावधान रहना चाहिए । साक्ष्य में कमियां हैं या नहीं, न्यायालय को साक्ष्य असली लगता है या नहीं, साक्ष्य द्वारा प्रकटित वृत्तांत अधिसंभाव्य है या नहीं, ये सभी ऐसे विषय हैं जिन पर अवश्य विचार किया जाना चाहिए । किंतु, हमारे विचार में, यह दलील देना अयुक्तियुक्त होगा कि साक्षियों द्वारा दिया गया साक्ष्य केवल इस आधार पर त्यक्त कर दिया जाए कि यह पक्षपाती या हितबद्ध साक्षी का साक्ष्य है । प्रायः, जहां गांवों में गुटबाजी रहती है और ऐसी गुटबाजी के परिणामस्वरूप हत्याएं की जाती हैं, तो दांडिक न्यायालयों को पक्षपाती प्रकार के साक्ष्य पर विचार करना चाहिए ।

ऐसे साक्ष्य को केवल इस आधार पर यंत्रवत् नामंजूर कर देने से कि यह पक्षपाती है, निरपवाद रूप से न्याय की हानि होगी ।"

26. विधि में ऐसी कोई प्रतिपादना नहीं है कि नातेदारों को असत्य साक्षियों के रूप में समझा जाए । इसके विपरीत, जब पक्षपात का अभिवाक् किया जाता है, तो यह दर्शाने के लिए कारण दर्शित किए जाने चाहिएं कि साक्षियों के पास वास्तविक अपराधी को बचाने और अभियुक्त को मिथ्या रूप से फंसाने का कारण है (**हरबंस कौर और एक अन्य** बनाम **हरियाणा राज्य**[2]) ।

27. यदि किसी प्रत्यक्षदर्शी साक्षी का साक्ष्य विश्वासोत्पादक है, भले

---

[1] [1964] 8 एस. सी. आर. 133.

[2] 2005 क्रिमिनल ला जर्नल 2199.

ही वह आहत का घनिष्ठ नातेदार है, तो संपुष्टि की ईप्सा किए बिना छोटी-मोटी तात्विक विशिष्टियों के साथ उसका अवश्य अवलंब लिया जाना चाहिए । निस्संदेह यह सत्य है कि न्यायालयों को हितबद्ध साक्षियों के साक्ष्य पर विचार करते समय अवश्य सचेत रहना चाहिए । जैसा कि अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किया गया है, अभि. सा. 9 द्वारा अपने साक्ष्य में किए गए घटना के वर्णन से स्पष्ट रूप से वह रीति प्रतिबिंबित होती है जिस रीति में अभियुक्त ने मृतक पर आक्रमण किया था और सिर पर घातक क्षति कारित की थी । मृतक के पिता (अभि. सा. 9) के परिसाक्ष्य का मूल्यांकन संपूर्ण मामले की पृष्ठभूमि में करना चाहिए ।

28. हमारी राय में, अभि. सा. 9 का परिसाक्ष्य विश्वासोत्पादक है और घटनाओं की शृंखला तथा इसके पारिस्थितिक साक्ष्य से उसके कथन का पूर्ण रूप से समर्थन होता है और इसके परिणामस्वरूप अभियोजन का पक्षकथन किसी संदेह के बिना मजबूत होता है । हमें यह विश्वास करने में कोई संकोच नहीं है कि अभि. सा. 9 घटना का एक "स्वाभाविक" साक्षी है । सावधानीपूर्वक संवीक्षा करने पर हमारा यह निष्कर्ष है कि उसका साक्ष्य अंतर्निहित रूप से विश्वसनीय और पूर्णतः भरोसेमंद हैं ।

29. यह तर्क कि अभि. सा. 9 के साक्ष्य को महत्व नहीं दिया जा सकता है क्योंकि वह घटना के समय मृतक से एक मीटर आगे चल रहा था और वह यह नहीं कह सकता कि अभियुक्त ही वह व्यक्ति था जिसने लोहे की छड़ से मृतक पर प्रहार किया था, ठीक नहीं है और परिस्थितियों पर समग्र रूप से विचार करते हुए इस तर्क को कोई महत्व नहीं दिया जा सकता है । यह भी प्रतिवाद किया गया कि प्रत्यक्षदर्शी साक्षी को कोई क्षति नहीं पहुंची थी । यह आवश्यक नहीं है कि अपराध को साबित करने के लिए प्रत्येक प्रत्यक्षदर्शी साक्षी को भी, जिसने अभियुक्त को आहत पर प्रहार करते हुए देखा था, क्षतियां पहुचीं हों । ऐसी दलीलें सारहीन हैं और विचार करने योग्य नहीं हैं ।

30. न्यायालय को अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का विश्लेषण करते समय अति तकनीकी दृष्टिकोण नहीं अपनाना चाहिए अपितु मामले की व्यापक अधिसंभाव्यताओं पर विचार करना चाहिए । न्यायालय को छुट-पुट विरोधाभासों के आधार पर साक्ष्य को समग्रतः नामंजूर नहीं करना चाहिए । कभी-कभी, सत्यभाषी साक्षी के साक्ष्य में भी, सूक्ष्म ब्यौरों को स्मरण रखने और उद्धृत करने के उनके सामर्थ्य के आधार पर कतिपय विरोधाभास प्रकट हो सकते हैं । विशिष्ट रूप से दांडिक मामलों में, घटना की तारीख

से लेकर उनके न्यायालय में साक्ष्य देने तक वर्षों का अंतराल हो सकता है । अतः, न्यायालयों को इन सभी बातों को ध्यान में रखना चाहिए और साक्ष्य का विवेचन करना चाहिए । ऐसी विसंगतियां और विरोधाभास, जो मामले की तह तक नहीं जाते हों, उन्हें महत्व नहीं दिया जाएगा । किसी भी दशा में, न्यायालय का सर्वोपरि ध्यान सारभूत न्याय करने की ओर होना चाहिए । हमारा यह विचार है कि विचारण न्यायालय ने अति तकनीकी दृष्टिकोण अपनाया और उसके परिणामस्वरूप अभियुक्त को दोषमुक्त कर दिया गया ।

31. विद्वान् काउंसेल ने जोरदार रूप से यह दलील दी कि दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील में अपील न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप करने की गुंजाइश बहुत कम होती है और उच्च न्यायालय ने दोषमुक्ति के अति सुविचारित निर्णय में हस्तक्षेप करके गलती की है । **पदम सिंह** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले को निर्दिष्ट करना उपयुक्त होगा, जिसमें इस न्यायालय ने अपील न्यायालय के कर्तव्य को स्पष्ट करते हुए यह अभिव्यक्त किया है :–

> "अपील न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह मामले में प्रस्तुत किए गए साक्ष्य पर विचार करे और इस स्वतंत्र निष्कर्ष पर पहुंचे कि उक्त साक्ष्य का अवलंब लिया जा सकता है या नहीं और यदि उसका अवलंब लिया जा सकता है, तब क्या उक्त साक्ष्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अभियोजन पक्ष ने इसे युक्तियुक्त संदेह के परे साबित कर दिया है । अपील न्यायालय द्वारा किसी साक्षी की विश्वसनीयता का न्यायनिर्णयन साबित और स्वीकृत तथ्यों से निष्कर्ष निकालकर किया जाना चाहिए । यह स्मरणीय है कि विचारण न्यायालय की तरह अपील न्यायालय का भी सकारात्मक रूप से यह समाधान हो जाना चाहिए कि अभियोजन का पक्षकथन सारवान् रूप से सत्य है और अभियुक्त की दोषिता सभी युक्तियुक्त संदेह के परे साबित की गई है क्योंकि निर्दोषिता की उपधारणा, जिसके साथ अभियुक्त की शुरुआत होती है, तब तक जारी रहती है जब तक कि उसे अंतिम अपील न्यायालय द्वारा दोषी नहीं ठहराया जाता है और यह उपधारणा विचारण न्यायालय में उसकी दोषमुक्ति से न तो मजबूत होती है और न ही उसकी दोषसिद्धि से कमजोर होती है ।"

32. दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील में अपील न्यायालय की शक्ति वैसी

---

[1] (2000) 1 एस. सी. सी. 621.

ही है जो दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील में है । किंतु दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील में न्यायालय को यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि निर्दोषिता की उपधारणा अभियुक्त के पक्ष में होती है और यह दोषमुक्ति के आदेश द्वारा और मजबूत हो जाती है । साथ ही, अपील न्यायालय दोषमुक्ति के आदेश में मुख्य रूप से वहां हस्तक्षेप नहीं करेगा क्योंकि दो मत संभव हैं, किंतु केवल तब हस्तक्षेप करेगा जब उच्च न्यायालय यह समझता है कि साक्ष्य का मूल्यांकन गलत बातों पर आधारित है और जब विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष में स्पष्ट अवैधता हो । प्रस्तुत मामले में, विचारण न्यायालय द्वारा किए गए साक्ष्य के मूल्यांकन में स्पष्ट अनियमितता है । उच्च न्यायालय ने दांडिक विधि शास्त्र के ठोस सिद्धांतों के आधार पर विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए दोषमुक्ति के निर्णय में हस्तक्षेप किया है और अभियुक्त को दोषसिद्ध किया है क्योंकि अभियोजन पक्ष अभियुक्त की दोषिता को युक्तियुक्त संदेह के परे साबित करने में सफल रहा है ।

33. पूर्वगामी चर्चा को ध्यान में रखते हुए और संपूर्ण सामग्री के सिंहावलोकन से यही निष्कर्ष निकलता है कि अभियोजन पक्ष ने अपने पक्षकथन को युक्तियुक्त संदेह के परे साबित किया है और अभियुक्त द्वारा फाइल की गई अपील में कोई सार नहीं है और तद्नुसार खारिज की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

जस.

संसद् के अधिनियम

अखिल भारतीय सेवा अधिनियम, 1951

(1951 का अधिनियम संख्यांक 61)

[29 अक्तूबर, 1951]

संघ और राज्यों की सामान्य अखिल भारतीय सेवाओं में भर्ती को और उनमें नियुक्त व्यक्तियों की सेवा की शर्तों को विनियमित करने के लिए अधिनियम

संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :–

1. संक्षिप्त नाम – यह अधिनियम अखिल भारतीय सेवा अधिनियम, 1951 कहा जा सकेगा ।

2. परिभाषा – इस अधिनियम में "अखिल भारतीय सेवा" पद से वह सेवा, जो भारतीय प्रशासनिक सेवा या भारतीय पुलिस सेवा के नाम से ज्ञात है [1][या कोई अन्य सेवा, जो धारा 2क में विनिर्दिष्ट है,] अभिप्रेत है ।

[2][**2क. अन्य अखिल भारतीय सेवाएं** – उस तारीख से, जिसे केन्द्रीय सरकार, शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस निमित्त नियत करे, निम्नलिखित अखिल भारतीय सेवाएं गठित की जाएंगी और विभिन्न सेवाओं के लिए विभिन्न तारीखें नियत की जा सकेंगी, अर्थात् :–

1. भारतीय इंजीनियर (सिंचाई, शक्ति, निर्माण तथा मार्ग) सेवा ;

2. भारतीय वन सेवा ;

3. भारतीय चिकित्सा तथा स्वास्थ्य सेवा ।]

3. भर्ती और सेवा की शर्तों का विनियमन – (1) केन्द्रीय सरकार किसी अखिल भारतीय सेवा में भर्ती को तथा उसमें नियुक्त व्यक्तियों की सेवा की शर्तों को विनियमित करने के लिए नियम [3][सम्पृक्त राज्यों की [4][जिनके अंतर्गत जम्मू-कश्मीर राज्य आता है] [सरकारों से परामर्श करने

---

[1] 1963 के अधिनियम सं. 27 की धारा 2 द्वारा अंत:स्थापित ।

[2] 1963 के अधिनियम सं. 27 की धारा 3 द्वारा अंत:स्थापित ।

[3] 1958 के अधिनियम सं. 25 की धारा 2 द्वारा अंत:स्थापित ।

[4] 1975 के अधिनियम सं. 19 की धारा 3 द्वारा अंत:स्थापित ।

के पश्चात् [1][और राजपत्र में अधिसूचना द्वारा] बना सकेगी ।

[2][(1क) इस धारा द्वारा प्रदत्त नियम बनाने की शक्ति के अंतर्गत उन नियमों या उनमें से किसी को किसी ऐसी तारीख से, जो इस अधिनियम के प्रारम्भ की तारीख से पहले की नहीं है, भूतलक्षी प्रभाव देने की शक्ति भी होगी, किन्तु किसी नियम को ऐसे भूतलक्षी प्रभाव नहीं दिया जाएगा, जिससे किसी ऐसे व्यक्ति के, जिसे ऐसा नियम लागू हो सकता है, हितों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े ।]

[3][(2) इस धारा के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा बनाया गया प्रत्येक नियम और किसी ऐसे नियम के अधीन या अनुसरण में बनाया गया प्रत्येक विनियम ऐसे नियम या विनियम के बनाए जाने के पश्चात्, यथाशीघ्र संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह सत्र में हो, तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा । यह अवधि एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी । यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन ऐसे नियम या विनियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं, तो तत्पश्चात्, वह ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगा । यदि उक्त अवसान

---

[1] भारतीय प्रशासनिक सेवा (भर्ती) नियम, 1954 के लिए, देखिए भारत का राजपत्र (अंग्रेजी), 1954, असाधारण, भाग 1, खण्ड 1, पृ. 885.
भारतीय प्रशासनिक सेवा (परिवीक्षा) नियम, 1954 के लिए, देखिए भारत का राजपत्र (अंग्रेजी), 1954, असाधारण, भाग 1, खण्ड 1, पृ. 893.
अखिल भारतीय सेवा (आचरण) नियम, 1954 के लिए, देखिए भारत का राजपत्र (अंग्रेजी), 1954, असाधारण, भाग 1, खंड 1, पृ. 914.
भारतीय प्रशासनिक सेवा (वरिष्ठता का विनियमन) नियम, 1954 के लिए, देखिए भारत का राजपत्र (अंग्रेजी), 1954, असाधारण, भाग 1, खंड 1, पृ. 907.
भारतीय प्रशासनिक सेवा (काडर) नियम, 1954 के लिए, देखिए भारत का राजपत्र (अंग्रेजी), 1954, असाधारण, भाग 1, खंड 1, पृ. 902.
भारतीय पुलिस सेवा (परिवीक्षा) नियम, 1954 के लिए, देखिए भारत का राजपत्र (अंग्रेजी), 1954, असाधारण, भाग 1, खण्ड 1, पृ. 897.
भारतीय पुलिस सेवा (वरिष्ठता का विनियमन) नियम, 1954 के लिए, देखिए भारत का राजपत्र (अंग्रेजी), 1954, असाधारण, भाग 1, खंड 1, पृ. 911.
भारतीय पुलिस सेवा (भर्ती) नियम, 1954 के लिए, देखिए भारत का राजपत्र (अंग्रेजी), 1954, असाधारण, भाग 1, खंड 1, पृ. 887.

[2] 1975 के अधिनियम सं. 23 की धारा 2 द्वारा अंत:स्थापित ।

[3] 1975 के अधिनियम सं. 19 की धारा 3 द्वारा उपधारा (2) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि ऐसा नियम या विनियम नहीं बनाया जाना चाहिए, तो तत्पश्चात् वह निष्प्रभाव हो जाएगा किन्तु नियम या विनियम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभाव होने से उसके अधीन पहले की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

4. विद्यमान नियमों का चालू रहना – वे सभी नियम, जो इस अधिनियम के प्रारंभ के अव्यवहित पूर्व प्रवृत्त थे और किसी अखिल भारतीय सेवा को लागू थे, प्रवृत्त बने रहेंगे और इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियम समझे जाएंगे ।

संसद् के अधिनियम

पशुओं में संक्रामक और सांसर्गिक रोगों का निवारण और नियंत्रण अधिनियम, 2009

(2009 का अधिनियम संख्यांक 27)

[20 मार्च, 2009]

पशुओं को प्रभावित करने वाले संक्रामक और सांसर्गिक रोगों के निवारण, नियंत्रण और उन्मूलन के लिए, एक राज्य से दूसरे राज्य में ऐसे रोगों के प्रादुर्भाव या फैलने को रोकने और पशुओं तथा पशु उत्पादों के आयात और निर्यात को सुकर बनाने के लिए भारत की अन्तरराष्ट्रीय बाध्यताओं को पूरा करने तथा उससे संबंधित या उसके आनुषंगिक विषयों का उपबंध करने के लिए अधिनियम

पशुओं के संक्रामक और सांसर्गिक रोगों के कारण देश में बहुत आर्थिक हानि हुई है, इनमें से कुछ रोग, जनता के लिए गंभीर संकट का रूप ले रहे हैं ;

और ऐसे अनेक पशु रोगों का टीकाकरण कार्यक्रमों के न्यायवत् कार्यान्वयन द्वारा या वैज्ञानिक आधारों पर अन्य समुचित और समय पर उपाय करके बड़े पैमाने पर निवारण किया जा सकता है ;

और ऐसे उपाय, पशुओं और पशु उत्पादों के आयात और निर्यात को सुकर बनाने और उन्हें अन्तरराष्ट्रीय पद्धतियों के अनुरूप रखने के लिए आवश्यक है ;

और यह अनुभव किया गया है कि भारत से पशुओं के संक्रामक और सांसर्गिक रोगों का निवारण, नियंत्रण और उन्मूलन राष्ट्रीय स्तर पर करना होगा जिससे ऐसे रोगों से देश की अर्थव्यवस्था पर होने वाले प्रतिकूल प्रभाव से बचा जा सके और इस प्रयोजन के लिए नियंत्रण प्रक्रियाओं में सामंजस्य बिठाना होगा और पशु रोगों के अन्तरराज्यीय संचरण को रोकना होगा ;

और राष्ट्रीय स्तर पर इसकी व्यवस्था राज्य सरकारों को सक्रिय रूप से सम्मिलित करते हुए, विशिष्टतया उन एहतियाती उपायों के संबंध में जिनका कतिपय संक्रामक और सांसर्गिक रोगों की बाबत उनकी अधिकारिता के भीतर किया जाना अपेक्षित है और समय पर समुचित उपायों को अपनाते हुए उनके अपने-अपने क्षेत्रों के बाहर पशुओं के आने-जाने का विनियमन करते हुए की जानी है ;

और भारत, आफिस इन्टरनेशनल डेस एपिजूटीस, पेरिस का सदस्य देश है और उक्त संगठन की सामान्य बाध्यताओं, विनिश्चयों और सिफारिशों को लागू करना तथा उक्त संगठन द्वारा नियत की गई अन्तरराष्ट्रीय पशु स्वास्थ्य संहिता का पालन करना आवश्यक है ;

भारत गणराज्य के साठवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :–

अध्याय 1

प्रारंभिक

1. **संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारम्भ** – (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम पशुओं में संक्रामक और सांसर्गिक रोगों का निवारण और नियंत्रण अधिनियम, 2009 है ।

(2) यह उस तारीख को प्रवृत्त होगा, जो केन्द्रीय सरकार, अधिसूचना द्वारा, नियत करे ; और भिन्न-भिन्न राज्यों के लिए या उसमें के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के लिए और इस अधिनियम के भिन्न-भिन्न उपबंधों के लिए भिन्न-भिन्न तारीखें नियत की जा सकेंगी और इस अधिनियम के ऐसे किसी उपबंध में इस अधिनियम के प्रारम्भ के प्रति किसी प्रतिनिर्देश का किसी राज्य या क्षेत्र या उपबंध के संबंध में यह अर्थ लगाया जाएगा कि वह, ऐसे राज्य या क्षेत्र में, यथास्थिति, इस अधिनियम या उस उपबंध के प्रवृत्त होने के प्रतिनिर्देश है ।

2. **परिभाषाएं** – इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(क) "पशु" से अभिप्रेत है, –

(i) ढोर, भैंस, भेड़, बकरी, याक, मिथुन ;

(ii) कुत्ता, बिल्ली, सुअर, घोड़ा, ऊंट, गधा, खच्चर, कुक्कुट, मधुमक्खी ; और

(iii) ऐसा कोई अन्य पशु या पक्षी जिसे केन्द्रीय सरकार अधिसूचना द्वारा विनिर्दिष्ट करे ;

(ख) "जांच पड़ताल चौकी" से इस अधिनियम के प्रयोजन के लिए पशुओं की जांच पड़ताल करने के लिए निदेशक द्वारा उस रूप में स्थापित कोई स्थान अभिप्रेत है ;

(ग) "समक्ष अधिकारी" से धारा 17 के अधीन समक्ष अधिकारी के रूप में अधिसूचित कोई व्यक्ति या सरकार का अधिकारी अभिप्रेत है ;

(घ) "अनिवार्य टीकाकरण" से अभिप्रेत है किसी पशु को किसी ऐसे अनुसूचित रोग का कोई टीका लगाना जिसकी बाबत इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन टीका आज्ञापक बनाया गया है ;

(ङ) "नियंत्रित क्षेत्र" से ऐसा कोई स्थानीय क्षेत्र अभिप्रेत है, जिसे धारा 6 की उपधारा (1) के अधीन राज्य सरकार द्वारा उस रूप में घोषित किया गया है ;

(च) "त्रुटिपूर्ण वैक्सीन" से ऐसा कोई वैक्सीन अभिप्रेत है, जिसकी अवधि समाप्त हो गई है, सील टूटी हुई है, जो संदूषित, अनुपयुक्त रूप से भंडारित, लेबल रहित या विकृत लेबल के साथ है ;

(छ) राज्य के संबंध में "निदेशक" से पशुपालन विभाग या पशु चिकित्सा सेवा या दोनों का ऐसा भारसाधक अधिकारी अभिप्रेत है जिसे इस अधिनियम के प्रयोजन के लिए राज्य सरकार द्वारा उस रूप में अधिसूचित किया गया है ;

(ज) "मुक्त क्षेत्र" से ऐसा कोई नियंत्रित क्षेत्र अभिप्रेत है जिसे धारा 6 की उपधारा (5) के अधीन उस रूप में घोषित किया गया है ;

(झ) "संक्रामित पशु" से ऐसा पशु अभिप्रेत है जो किसी अनुसूचित रोग से संक्रामित है ;

(ञ) "संक्रामित क्षेत्र" से धारा 20 के अधीन उस रूप में घोषित क्षेत्र अभिप्रेत है ;

(ट) "अधिसूचना" से राजपत्र में प्रकाशित अधिसूचना अभिप्रेत है ;

(ठ) "विहित" से इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है ;

(ड) "प्रकाशन" के अंतर्गत मीडिया या समाचारपत्र या किसी अन्य जन संपर्क मीडिया और किसी क्षेत्र में ऊंची आवाज में तथा ढोल पीट कर की गई घोषणा जैसे स्थानीय संचार माध्यमों से सूचना का प्रचार-प्रसार है ;

(ढ) "करंतीन कैम्प" से ऐसा स्थान अभिप्रेत है जो इस अधिनियम के प्रयोजन के लिए पशुओं और पक्षियों को करंतीन करने के लिए घोषित किया गया है ;

(ण) "अनुसूचित रोग" से ऐसा कोई रोग अभिप्रेत है जो अनुसूची में सम्मिलित है ;

(त) "पशु चिकित्सक" से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जिसके पास मान्यताप्राप्त पशु चिकित्सा अर्हता है और जिसे तत्समय प्रवृत्त विधि के अधीन पशु रोगों का उपचार करने के लिए अनुज्ञात किया गया है ;

(थ) "पशु चिकित्सा अधिकारी" से कोई ऐसा अधिकारी अभिप्रेत है जिसे धारा 3 के खंड (ख) के अधीन राज्य सरकार द्वारा उस रूप में नियुक्त किया गया है ;

(द) किसी ग्राम के संबंध में "ग्राम अधिकारी" से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जिसे राज्य सरकार द्वारा विहित अर्हताओं के अनुसार उस रूप में प्राधिकृत या अभिहित किया गया है ।

अध्याय 2

अनुसूचित रोगों का नियंत्रण

3. **पशु चिकित्सा अधिकारियों की नियुक्ति** – राज्य सरकार, अधिसूचना द्वारा, –

(क) उतने व्यक्तियों को, जितने वह उचित समझे, निरीक्षण करने के लिए और उनकी अपनी-अपनी अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं को विनिर्दिष्ट करते हुए पशु चिकित्सकों के रूप में नियुक्त कर सकेगी ; और

(ख) उतने पशु चिकित्सकों को, जितने वह उचित समझे, पशु चिकित्सा अधिकारियों के रूप में नियुक्त कर सकेगी, जो अपनी अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के भीतर अपनी शक्तियों का प्रयोग और अपने ऐसे कर्तव्यों का निर्वहन करेंगे, जो उक्त अधिसूचना में विनिर्दिष्ट किए जाएं ।

4. **अनुसूचित रोगों की रिपोर्ट करने की बाध्यता** – (1) किसी ऐसे पशु का जिसके बारे में उसके पास यह विश्वास करने का कारण है कि वह किसी अनुसूचित रोग से संक्रामित है, प्रत्येक स्वामी या उस पशु का भारसाधक कोई अन्य व्यक्ति, गैर सरकारी संगठन, लोक निकाय या ग्राम पंचायत, इस तथ्य की ग्राम अधिकारी या ग्राम पंचायत प्रभारी को रिपोर्ट करेगा, जो निकटतम उपलब्ध पशु चिकित्सक को लिखित में उसकी रिपोर्ट कर सकेगा ।

(2) ग्राम अधिकारी किसी रोग के फैलने की रिपोर्ट करने के लिए अपनी अधिकारिता के भीतर आने वाले क्षेत्र का दौरा करेगा ।

(3) प्रत्येक पशु चिकित्सक, उपधारा (1) के अधीन किसी रिपोर्ट की प्राप्ति पर या अन्यथा, यदि उसके पास यह विश्वास करने का कारण है कि कोई पशु किसी अनुसूचित रोग से संक्रामित है, मामले की रिपोर्ट पशु चिकित्सा अधिकारी को करेगा ।

(4) जहां किसी राज्य में किसी पशु के संबंध में अनुसूचित रोग की कोई घटना हुई है वहां निदेशक, ऐसे राज्यों के, जो उस स्थान के ठीक पड़ोसी हैं, जहां ऐसी घटना हुई है, निदेशकों को रोग को फैलने से रोकने के लिए समुचित निवारक उपाय करने के लिए सूचना भेजेगा ।

5. **संक्रामित पशुओं को अलग रखने का कर्तव्य** – (1) किसी ऐसे पशु का प्रत्येक स्वामी या भारसाधक व्यक्ति, जिसके बारे में उसके पास यह विश्वास करने का कारण है, कि वह किसी अनुसूचित रोग से संक्रामित है, ऐसे पशु को अलग रखेगा और उसे ऐसे सभी अन्य पशुओं से, जो स्वस्थ है, दूर स्थान पर रखेगा और संक्रामित पशु को किसी अन्य पशु के संपर्क में आने से रोकने के लिए सभी संभव उपाय करेगा ।

(2) उपधारा (1) में निर्दिष्ट किसी पशु का स्वामी या भारसाधक या उस पर नियंत्रण रखने वाला अन्य व्यक्ति उस पशु को परिरुद्ध करेगा और उसे सामान्य स्थान पर चरने या किसी सामान्य स्रोत से, जिसके अन्तर्गत पात्र, तालाब, झील या नदी भी है, पानी पाने से निवारित करेगा ।

(3) नगरपालिका, पंचायत या अन्य स्थानीय प्रशासन द्वारा सभी अन्य संक्रामित पशुओं को अलग रखा जाएगा ।

6. **नियंत्रित क्षेत्रों और मुक्त क्षेत्रों की अधिसूचना** – (1) राज्य सरकार, किसी अनुसूचित रोग को निवारित, नियंत्रित या उन्मूलन करने के उद्देश्य से,

अधिसूचना द्वारा, किसी क्षेत्र को, किसी ऐसे अधिसूचित रोग की बाबत, जो पशु की किन्हीं जातियों और किन्हीं ऐसी अन्य जातियों को प्रभावित कर रहा है, जिन्हें उक्त अधिसूचना में विनिर्दिष्ट रोग होने की संभावना है, नियंत्रित क्षेत्र के रूप में घोषित कर सकेगी ।

(2) राज्य सरकार उपधारा (1) के अधीन जारी अधिसूचना का सार देशी भाषा में किसी स्थानीय समाचारपत्र में तथा उस क्षेत्र में ऊंची आवाज में और ढोल पीटकर घोषणा द्वारा प्रकाशित करवाएगी ।

(3) जहां कोई अधिसूचना उपधारा (1) के अधीन जारी की गई है वहां नियंत्रित क्षेत्र में उक्त जातियों के सभी पशुओं को, उस रोग के लिए अनिवार्य टीका लगाया जाएगा और उस रोग के लिए ऐसे अन्य उपाय ऐसी रीति में और ऐसे समय के भीतर किए जाएंगे जो राज्य सरकार लोक सूचना द्वारा निदेश दे ।

(4) राज्य सरकार आवश्यक वैक्सीन उपलब्ध कराएगी और किसी ऐसे पशु के जिसे उपधारा (3) के अधीन टीका लगाया जाना अपेक्षित है, प्रत्येक स्वामी या भारसाधक व्यक्ति के लिए, यह आबद्धकर होगा कि वह उस पशु को अनिवार्य रूप से टीका लगवाए ।

(5) जहां निदेशक से प्राप्त रिपोर्ट पर या अन्यथा, राज्य सरकार का यह सामाधान हो जाता है कि किसी नियंत्रित क्षेत्र में ऐसा कोई अनुसूचित रोग, जो पशु की किसी जाति को प्रभावित कर रहा है, अब नहीं रह गया है, वहां वह, अधिसूचना द्वारा, उस क्षेत्र को पशु की विशिष्ट जातियों के संबंध में उस रोग की बाबत मुक्त क्षेत्र के रूप में घोषित कर सकेगी ।

(6) जहां उपधारा (5) के अधीन कोई अधिसूचना जारी की गई है, वहां उन जातियों के किसी पशु या अन्य संकटग्रस्त जातियों के किसी पशु को, जिसके संबंध में वह मुक्त क्षेत्र है, तब तक मुक्त क्षेत्र में प्रवेश नहीं करने दिया जाएगा जब तक कि उस विशिष्ट रोग के लिए उसे टीके द्वारा सम्यक् रूप से असंक्रामित न कर दिया गया हो ।

7. **नियंत्रित क्षेत्र से पशुओं के आने-जाने पर प्रतिषेध** – (1) जहां धारा 6 की उपधारा (1) के अधीन किसी क्षेत्र को पशुओं की किन्हीं जातियों को प्रभावित करने वाले किसी रोग के संबंध में नियंत्रित क्षेत्र के रूप में घोषित करने वाली अधिसूचना जारी की गई है, वहां उन जातियों का कोई पशु उस स्थान से नहीं ले जाया जाएगा, जहां उसे रखा गया है ।

(2) निदेशक, किसी क्षेत्र की बाबत किसी अनुसूचित रोग के नियंत्रण, निवारण या उन्मूलन के प्रयोजन के लिए, राजपत्र में प्रकाशित आदेश द्वारा, उसमें विनिर्दिष्ट किन्हीं जातियों के सभी पशुओं के उस स्थान से, जहां उन्हें रखा गया है किसी अन्य स्थान पर आने-जाने को प्रतिषिद्ध कर सकेगा ।

(3) उपधारा (1) और उपधारा (2) की कोई बात, निम्नलिखित को प्रतिषिद्ध करने वाली नहीं समझी जाएगी –

(क) उसमें निर्दिष्ट किसी पशु का उस स्थान से, जहां उसे रखा गया है, उस निकटस्थ स्थान को ले जाना, जहां उसको टीका लगाया जा सकेगा जहां तक पशु को टीका लगाकर असंक्रमीकरण के प्रयोजन के लिए ले जाया जा रहा है; या

(ख) किसी ऐसे पशु को ले जाना जहां तक वह टीकाकरण के विधि मान्य प्रमाणपत्र के साथ है जिसमें यह उपदर्शित किया गया है कि पशु को विशिष्ट रोग से सम्यक् रूप से असंक्रामित कर दिया गया है और उस पर ऐसे टीकाकरण का उचित चिह्न लगा हुआ है ।

8. **टीकाकरण चिह्नांकन करना और टीका प्रमाणपत्र जारी किया जाना** – (1) किसी पशु को ऐसे व्यक्ति द्वारा टीका लगाया जा सकेगा, जो तत्समय प्रवृत्त विधि के अधीन टीका लगाने और टीका प्रमाणपत्र जारी करने के लिए सक्षम है ।

(2) जहां किसी पशु को उपधारा (1) के उपबंधों के अनुपालन में किसी अनुसूचित रोग के लिए टीका लगाया गया है वहां पशु को टीका लगाने वाला व्यक्ति छाप लगाकर, टेटू लगाकर या कर्ण टैगिंग द्वारा या किसी ऐसी अन्य रीति में जो निदेशक, साधारण या विशेष आदेश द्वारा, निदेश करे, चिह्न लगवाएगा और जब तक निदेशक द्वारा अन्यथा रूप में विनिर्दिष्ट न किया जाए, उसे हटाया नहीं जाएगा ।

(3) टीका प्रमाणपत्र जारी करने वाला प्राधिकारी टीका लगाने की तारीख, वैक्सीन के विनिर्माण और उसकी अवधि के अवसान की तारीख और वह तारीख, जिस तक पशु का टीका, विशिष्ट वैक्सीन के साथ मान्य होगा, विनिर्दिष्ट करेगा ।

9. **टीका प्रमाणपत्र की अंतर्वस्तु** – इस अधिनियम के अधीन जारी प्रत्येक टीक प्रमाणपत्र ऐसे प्ररूप में होगा और उसमें ऐसी विशिष्टियां

होंगी, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा विहित की जाएं ।

10. **नियंत्रित क्षेत्र और मुक्त क्षेत्र में पशुओं का प्रवेश और उससे निकासी** – (1) जहां कोई क्षेत्र, धारा 6 की उपधारा (1) के अधीन पशुओं की किन्हीं जातियों को प्रभावित करने वाले किसी रोग की बाबत नियंत्रित क्षेत्र के रूप में घोषित किया गया है, वहां उन जातियों का कोई पशु धारा 16 में यथा उपबंधित के सिवाय, उस क्षेत्र से न तो बाहर भेजा जाएगा और न ही उसमें लाया जाएगा ।

(2) निदेशक, राजपत्र में और देशी भाषा में कम से कम एक दैनिक स्थानीय समाचारपत्र में सम्यक् रूप से प्रकाशित सूचना द्वारा उपधारा (1) में अंतर्विष्ट प्रतिषेध को पशुओं की किन्हीं अन्य जातियों तक विस्तारित कर सकेगा, यदि उन जातियों के पशुओं के भी उस रोग से संक्रामित होने की संभावना है ।

(3) माल या पशुओं का कोई वाहक, धारा 16 के उपबंधों का अनुपालन किए बिना भू-मार्ग, समुद्र मार्ग या वायु मार्ग से किसी पशु को नियंत्रित क्षेत्र, मुक्त क्षेत्र या संक्रामित क्षेत्र से बाहर नहीं ले जाएगा ।

(4) उपधारा (1) से उपधारा (3) की कोई बात उन उपधाराओं में निर्दिष्ट किसी पशु के, रेल द्वारा ऐसे क्षेत्र से जिसे तत्समय नियंत्रित क्षेत्र या संक्रामित क्षेत्र के रूप में घोषित किया गया है, होकर वहन को तब तक लागू नहीं होगी जब तक पशु की उस क्षेत्र के भीतर किसी स्थान पर उतराई (चाहे वह किसी प्रयोजन या अवधि के लिए हो) न की गई हो :

परन्तु राज्य सरकार, अधिसूचना द्वारा, यह घोषणा कर सकेगी कि राज्य के भीतर किसी स्थानीय क्षेत्र में से इस प्रकार वहन किए जाने वाले पशु की कोई जातियां ऐसे अनुसूचित रोग से ऐसी रीति में और ऐसे समय के भीतर जो उक्त अधिसूचना में विनिर्दिष्ट किया जाए, सम्यक् रूप से असंक्रामित की जाएंगी और उस क्षेत्र में होकर रेल द्वारा पशुओं के परिवहन के लिए टीका प्रमाणपत्र एक पूर्वापेक्षा होगी :

परन्तु यह और कि जहां पहले परन्तुक में निर्दिष्ट कोई अधिसूचना जारी की गई है वहां राज्य सरकार का यह दायित्व होगा कि वह उस तथ्य को संबद्ध रेल प्राधिकारियों को सूचित करें, जिससे वे राज्य के उस स्थानीय क्षेत्र से होकर पशु का परिवहन करने के पूर्व उसके असंक्रामण के बारे में अपना समाधान कर सकें ।

11. **नियंत्रित क्षेत्रों के संबंध में ऐहतियाती उपाय** – कोई व्यक्ति –

(क) धारा 6 की उपधारा (1) के अधीन अधिसूचित किसी अनुसूचित रोग से संक्रामित या संक्रामित होने की युक्तियुक्त संभावना वाले किसी जीवित या मृत पशु को,

(ख) ऐसे किसी भी प्रकार के चारे, बिछौने या अन्य सामग्री को जो ऐसे रोग से संक्रामित किसी पशु के संसर्ग में रही है या किसी रीति में अधिसूचित रोग से प्रभावित हो सकती है, या

(ग) पशु शव, खाल या ऐसे पशु के किसी अन्य भाग या उत्पाद को,

नियंत्रित क्षेत्र से बाहर नहीं ले जाएगा ।

12. **नियंत्रित क्षेत्रों में बाजारों, मेलों, प्रदर्शनी आदि का प्रतिषेध** – कोई व्यक्ति, संगठन या संस्था, नियंत्रित क्षेत्र के भीतर कोई पशु बाजार, पशु मेला, पशु प्रदर्शनी नहीं लगाएगी और ऐसा कोई अन्य क्रियाकलाप नहीं करेगी जिसमें पशुओं की किन्हीं जातियों का समूह में सम्मिलित या इकट्ठा होना अंतर्वलित है :

परन्तु सक्षम अधिकारी स्वप्रेरणा से या इस निमित्त उसे किए गए आवेदन पर, ऐसे मामले में पशुओं की किन्हीं जातियों के संबंध में प्रतिषेध को शिथिल कर सकेगी, जहां उन जातियों के पशुओं को अनुसूचित रोग होने की संभावना नहीं है और उनमें उस रोग को ग्रहण करने की क्षमता नहीं है, यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि लोकहित में ऐसी शिथिलता प्रदान करना आवश्यक है ।

13. **बाजार और अन्य स्थानों में संक्रामित पशुओं को लाने का प्रतिषेध** – कोई व्यक्ति किसी ऐसे पशु को, जिसके बारे में उसका अनुसूचित रोग से संक्रामित होना ज्ञात है, बाजार, मेले, प्रदर्शनी या पशुओं के अन्य जमाव या किसी सार्वजनिक स्थान पर नहीं लाएगा या लाने का प्रयास नहीं करेगा ।

14. **जांच पड़ताल चौकी और करंतीन कैम्प** – (1) निदेशक राज्य के भीतर उतने करंतीन कैम्प और जांच पड़ताल चौकियां स्थापित कर सकेगा, जितने –

(क) ऐसे पशुओं के, निरोध के लिए जो किसी अनुसूचित रोग से ग्रस्त हैं या ऐसे पशुओं के निरोध के लिए अपेक्षित हैं, जो ऐसे किसी संक्रामित पशु के संसर्ग में आ चुके हैं या उसके सामीप्य में रखे गए हैं ;

(ख) ऐसे पशुओं की जातियों से संबंधित किसी पशु के, जिसके बारे में धारा 6 की उपधारा (1) के अधीन जारी की गई अधिसूचना या धारा 7 की उपधारा (2) के अधीन किया गया आदेश प्रवर्तन में है, किसी नियंत्रित क्षेत्र या संक्रामित क्षेत्र या मुक्त क्षेत्र में प्रवेश या उससे निकासी को रोकने को सुनिश्चित करने के लिए अपेक्षित हैं ।

(2) किसी ऐसे पशु जिसे निरुद्ध करना, जिसका निरीक्षण करना, टीका लगाना या चिह्नांकित करना अपेक्षित है, ऐसी अवधि के लिए करंतीन कैम्प में रखा जा सकेगा जो सक्षम अधिकारी निदेश दे ।

(3) प्रत्येक ऐसा पशु, जो करंतीन कैम्प में निरुद्ध है, कैम्प के भारसाधक व्यक्ति की अभिरक्षा में होगा और उसे टीका लगाया जाएगा तथा चिह्नांकित किया जाएगा ।

(4) करंतीन कैम्प का भारसाधक अधिकारी किसी पशु की केन्द्र से निर्मुक्ति के समय ऐसे प्ररूप में, जो राज्य सरकार द्वारा विहित किया जाए, पशु को भारसाधन में लेने वाले व्यक्ति को एक अनुज्ञापत्र देगा और प्रत्येक ऐसा व्यक्ति, किसी सक्षम अधिकारी द्वारा जब कभी ऐसा करने की अपेक्षा की जाए, अनुज्ञापत्र पेश करने के लिए आबद्ध होगा ।

15. **जांच पड़ताल चौकी और करंतीन कैम्पों में पशुओं का निरीक्षण और निरोध** – (1) किसी जांच पड़ताल चौकी या करंतीन कैम्प का प्रत्येक भारसाधक व्यक्ति जांच पड़ताल चौकी पर या करंतीन कैम्प में रोके गए या उसमें निरुद्ध किसी पशु का निरीक्षण करेगा ।

(2) जांच पड़ताल चौकी या करंतीन कैम्प में निरीक्षण के प्रयोजन के लिए या अनिवार्य टीकाकरण पशुओं का चिह्नांकन करने के लिए पशु के निरीक्षण की रीति और निरोध की अवधि और वह प्ररूप और रीति, जिसमें किसी पशु की बाबत प्रवेश के लिए अनुज्ञापत्र जारी किया जा सकेगा वह होगी, जो राज्य सरकार द्वारा विहित की जाए ।

16. **नियंत्रित और मुक्त क्षेत्रों में टीका लगे पशुओं का प्रवेश और उनसे उनकी निकासी** – धारा 10 में किसी बात के होते हुए भी, पशुओं की ऐसी जातियों से संबंधित किसी पशु को, जिसकी बाबत कोई क्षेत्र किसी अनुसूचित रोग के संबंध में नियंत्रित या मुक्त क्षेत्र के रूप में घोषित किया गया है, जिसे उस रोग के लिए सम्यक् रूप से टीका लगाया जा चुका है, नियंत्रित क्षेत्र या मुक्त क्षेत्र में प्रवेश करने या वहां से बाहर ले जाने के लिए या किसी अन्य स्थान से बाहर ले जाने के लिए, इस आशय

का प्रमाणपत्र पेश किए जाने पर अनुज्ञात किया जाएगा कि उस रोग के लिए टीका लगाया जा चुका है और उसके पश्चात् कम से कम इक्कीस दिन की अवधि व्यपगत हो चुकी है ।

17. **सक्षम अधिकारियों की नियुक्ति** – राज्य सरकार, इस अधिनियम के उपबंधों के उचित कार्यान्वयन के लिए, अधिसूचना द्वारा, किसी व्यक्ति को इस अधिनियम के अधीन किसी शक्ति का प्रयोग या किसी कर्तव्य का निर्वहन करने के लिए सक्षम अधिकारी के रूप में प्राधिकृत कर सकेगी जो अपनी अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के भीतर ऐसी शक्तियों का प्रयोग और ऐसे कर्तव्यों का निर्वहन करेगा, जो अधिसूचना में विनिर्दिष्ट किए जाएं ।

18. **वाहकों की सफाई और विसंक्रामण** – (1) प्रत्येक सामान्य वाहक चाहे वह जलयान है या यान, उस जलयान या यान में किसी पशु के परिवहन के ठीक पूर्व और पश्चात् और इस प्रकार किसी स्थान को भी, जहां पशु अभिवहन में रखा गया है, साफ और विसंक्रामित किया जाएगा ।

(2) जहां पशु की किन्हीं जातियों को प्रभावित करने वाले किसी ऐसे अनुसूचित रोग की बाबत किसी क्षेत्र को नियंत्रित क्षेत्र या मुक्त क्षेत्र के रूप में घोषित किया गया है वहां निदेशक, राजपत्र में और देशी भाषा में एक स्थानीय समाचारपत्र में सम्यक् रूप से प्रकाशित आदेश द्वारा ऐसे प्रत्येक यान के स्वामी को, जिसमें उन जातियों से संबंधित कोई पशु वहन किया गया, उस यान को उचित रूप में स्वच्छ और विसंक्रामित करने का निदेश दे सकेगा ।

19. **प्रवेश और निरीक्षण की शक्तियां** – कोई पशु चिकित्सा अधिकारी या अन्य सक्षम अधिकारी इस अधिनियम या तद्धीन बनाए गए नियमों या किए गए आदेशों के उपबंधों का ऐसे अनुपालन के लिए उत्तरदायी व्यक्तियों द्वारा अनुपालन सुनिश्चित करने के प्रयोजन के लिए, किसी भूमि या भवन या स्थान, जलयान या यान में प्रवेश कर सकेगा और उसका निरीक्षण कर सकेगा ।

अध्याय 3
संक्रामित क्षेत्र

20. **संक्रामित क्षेत्रों की घोषणा** – यदि पशु चिकित्सा अधिकारी का, किसी पशु चिकित्सक से रिपोर्ट की प्राप्ति पर या अन्यथा, यह समाधान हो जाता है कि उसकी अधिकारिता के भीतर आने वाले किसी स्थान या परिसर में कोई पशु किसी अनुसूचित रोग से संक्रामित हो गया है या

किसी ऐसे पशु को, जिसके बारे में उसके पास यह विश्वास करने का कारण है कि वह इस प्रकार संक्रामित है, वहां रखा गया है तो वह अधिसूचना द्वारा और देशी भाषा में कम से कम एक स्थानीय समाचारपत्र में प्रकाशन द्वारा तथा ऊंची आवाज में और ढोल पीटकर घोषणा द्वारा ऐसे क्षेत्र को, जिसे वह उचित समझे (जिसके अंतर्गत पूर्वोक्त स्थान या परिसर भी है) संक्रामित क्षेत्र घोषित कर सकेगा ।

21. **संक्रामित क्षेत्रों की घोषणा का प्रभाव** – (1) जहां किसी क्षेत्र को धारा 20 के अधीन संक्रामित क्षेत्र के रूप में घोषित किया गया है, वहां इस अधिनियम के सभी उपबंध, जो नियंत्रित क्षेत्र के संबंध में लागू होते हैं, उसके संबंध में यथा आवश्यक परिवर्तन सहित इस प्रकार लागू होंगे मानो "नियंत्रित क्षेत्र" शब्दों के स्थान पर "संक्रामित क्षेत्र" शब्द रखे गए हों ।

(2) उपधारा (1) में अंतर्विष्ट उपबंधों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना निम्नलिखित और उपबंध संक्रामित क्षेत्र के संबंध में लागू होंगे, अर्थात् :–

(क) उस क्षेत्र में प्रत्येक ऐसे पशु के संबंध में, जो किसी अनुसूचित रोग से संक्रामित है या जिसके संक्रामित होने का युक्तियुक्त विश्वास है, पशु का स्वामी या भारसाधक अन्य व्यक्ति तुरन्त पशु चिकित्सक से उसका उपचार करवाएगा ;

(ख) सभी वस्तुओं को, जिनके खंड (क) में निर्दिष्ट किसी पशु के संसर्ग में आने की संभावना है, उपचारित किया जाएगा या ऐसी रीति में व्ययनित किया जाएगा, जो पशु चिकित्सक निदेश दे ;

(ग) प्रत्येक पशु चिकित्सक को निरीक्षण के प्रयोजन के लिए किसी ऐसे स्थान या परिसर में प्रवेश करने की शक्ति होगी, जहां कोई पशु रखा गया है या उसके रखे जाने की संभावना है ;

(घ) खंड (क) मे निर्दिष्ट पशु का स्वामी या भारसाधक कोई अन्य व्यक्ति तुरंत पशु को अलग करेगा और ऐसे अन्य उपाय भी करेगा, जो रोग के निवारण, उपचार या नियंत्रण के लिए आवश्यक हो, जो पशु चिकित्सक निदेश दे ।

22. **संक्रामित क्षेत्र की अधिसूचना को वापस लेना** – यदि पशु चिकित्सा अधिकारी का, ऐसी जांच के पश्चात्, जो वह ठीक समझे, यह समाधान हो जाता है कि किसी संक्रामित क्षेत्र में अनुसूचित रोग से किसी

पशु के संक्रामित होने के बारे में अब कोई आशंका या खतरा नहीं है तो वह, अधिसूचना द्वारा, और देशी भाषा में स्थानीय समाचारपत्र में प्रकाशन द्वारा घोषित कर सकेगा कि वह क्षेत्र पूर्वोक्त के अनुसार संक्रामित क्षेत्र नहीं रह गया है, तत्पश्चात् धारा 21 में निर्दिष्ट सभी निर्बंधन लागू नहीं होंगे ।

अध्याय 4

संक्रामित पशु

23. **संक्रामित पशुओं का अलग रखा जाना, उनका परीक्षण और उपचार** – (1) जहां पशु चिकित्सक के पास, किसी रिपोर्ट की प्राप्ति पर या अन्यथा, यह विश्वास करने का कारण है कि कोई पशु अनुसूचित रोग से संक्रामित है, वहां वह लिखित में आदेश द्वारा ऐसे पशु के स्वामी या ऐसे अन्य व्यक्ति को, जिसके भारसाधक में ऐसा पशु है, –

(क) उसे अन्य स्पष्ट रूप से स्वस्थ पशुओं से अलग रखने ; या

(ख) ऐसा उपचार कराने के लिए, जो उन परिस्थितियों में अपेक्षित हो,

निदेश दे सकेगा ।

(2) जहां उपधारा (1) के अनुसरण में ऐसी कोई कार्रवाई की गई है, वहां पशु चिकित्सक, तुरंत ऐसे रोग की घटना की विस्तृत रिपोर्ट पशु चिकित्सा अधिकारी को देगा ।

(3) पशु चिकित्सा अधिकारी, पशु चिकित्सक से ऐसी रिपोर्ट प्राप्त होने पर, यथासंभव शीघ्र, उस पशु की तथा साथ ही किसी ऐसे अन्य पशु की, जो उसके सम्पर्क में आया हो, जांच करेगा और उस प्रयोजन के लिए, उस पशु को ऐसी जांच और चिकित्सीय परीक्षा के लिए भेजेगा, जो उन परिस्थितियों के अधीन अपेक्षित हो ।

(4) यदि ऐसी जांच और परीक्षण के पश्चात्, पशु चिकित्सा अधिकारी की यह राय हो कि ऐसा पशु किसी अनुसूचित रोग से संक्रामित नहीं है, तो वह लिखित में एक प्रमाणपत्र जारी करेगा कि पशु किसी ऐसे रोग से संक्रामित नहीं है ।

24. **पशुओं से नमूनों का लिया जाना** – (1) जहां पशु चिकित्सा अधिकारी यह अभिनिश्चित करने के प्रयोजन के लिए कि वह पशु, जिसके किसी अनुसूचित रोग से संक्रामित होने का संदेह है या ऐसे संक्रामण का

खतरा है, वास्तव में संक्रामित है या उस अनुसूचित रोग की, जिससे पशु संक्रामित है, प्रकृति अभिनिश्चित करने के प्रयोजन के लिए आवश्यक समझता है, वहां वह ऐसे अन्वेषण करने के प्रयोजन के लिए, जिन्हें वह उन परिस्थितियों के अधीन आवश्यक समझे, पशु से ऐसे नमूने ले सकेगा, जो अपेक्षित हों ।

(2) पशु चिकित्सा अधिकारी या कोई अन्य सक्षम अधिकारी ऐसे पशु से यह अभिनिश्चित करने के प्रयोजन से कि क्या पशु को किसी रोग का टीका लगाया गया है या क्या पशु को टीका लगाया जाना उसे असंक्रामित करने में प्रभावी हो गया है, नमूने ले सकेगा और ऐसे नमूनों की ऐसी रीति में परीक्षा करेगा, जो वह आवश्यक समझे ।

25. **संक्रामित पशु के लिए सहज मृत्यु का आश्रय लेना** – यदि पशु चिकित्सा अधिकारी यह आवश्यक समझता है कि किसी पशु की, जो अनुसूचित रोग से संक्रामित है, क्षेत्र के अन्य पशुओं में रोग को फैलाने से रोकने के लिए या यदि रोग पशु संबंधी महत्व का है तो लोक स्वास्थ्य की संरक्षा करने के लिए सहज मृत्यु का आश्रय लेना आवश्यक होगा, तो वह तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, लिखित में आदेश द्वारा, पशु की सहज मृत्यु के लिए और अपने समाधानप्रद रूप में तत्काल उसके शव की अंत्येष्टि करने का निदेश दे सकेगा ।

26. **शव का निपटारा** – प्रत्येक व्यक्ति, जिसके कब्जे में किसी पशु का शव (या उसका कोई भाग) है, जो उसकी मृत्यु के समय किसी अनुसूचति रोग से संक्रामित था या उसके संक्रामित होने का संदेह था, ऐसी रीति से, जो विहित की जाए, उसका निपटारा करेगा ।

27. **पशु चिकित्सा अधिकारी और पशु चिकित्सक की शव परीक्षा करने की शक्तियां** – (1) जहां पशु चिकित्सा अधिकारी या किसी पशु चिकित्सक के पास यह विश्वास करने का कारण है कि किसी पशु की मृत्यु किसी अनुसूचित रोग के संक्रामण द्वारा हुई है, वहां वह पशु की शव परीक्षा करेगा या कराएगा और उस प्रयोजन के लिए वह जहां अपेक्षित हो, किसी ऐसे पशु के शव को खोदकर भूमि से बाहर निकलवाएगा, तत्पश्चात् शव की आवश्यक परीक्षा और शव परीक्षण के पश्चात् समुचित अंत्येष्टि कराएगा ।

(2) उपधारा (1) में निर्दिष्ट प्रत्येक परीक्षा और शव परीक्षा ऐसी रीति से की जाएगी और शव परीक्षण की रिपोर्ट ऐसे प्ररूप में होगी, जो विहित की जाए ।

28. **कतिपय पशुओं का अभिग्रहण और उनको हटाना** – जहां ऐसा कोई पशु, जो संक्रामित है या जिसके संक्रामित होने का संदेह है जिसका कोई भी व्यक्ति स्वामी होने का दावा नहीं करता है, या जहां ऐसे पशु के संबंध में दिए गए किसी विधिमान्य आदेश या निदेश का, स्वामी या अन्य व्यक्ति द्वारा, जिसके नियंत्रण में ऐसा कोई पशु है, तत्परता से अनुपालन नहीं किया जाता है, वहां पशु चिकित्सा अधिकारी या किसी अन्य सक्षम अधिकारी को, ऐसे पशु को अभिग्रहण करने, और उसे एकांत या अलग स्थान पर हटाने का, जो वह उचित समझे, विकल्प होगा ।

अध्याय 5

प्रवर्तन और शास्तियां

29. **आदेशों का प्रवर्तन और खर्चों की वसूली** – (1) जहां इस अधिनियम के अधीन बनाए गए किसी नियम, अधिसूचना, सूचना, अध्यपेक्षा, आदेश या निदेश द्वारा किसी व्यक्ति से, –

(क) किसी पशु, किसी पशु के शव या ऐसी अन्य वस्तु के संबंध में, जो उसकी अभिरक्षा या भारसाधन में है, कोई उपाय या किसी बात को करने की अपेक्षा की जाती है तो उस व्यक्ति द्वारा तत्परता से कार्रवाई की जाएगी ;

(ख) कोई ऐसा पशु जो भटका हुआ है या जिसका कोई स्वामी नहीं है, ऐसे पशु शव या उसके भाग की दशा में, कोई उपाय या किसी बात को करने की अपेक्षा की जाती है, यथास्थिति, नगरपालिका या पंचायत द्वारा अपने खर्चे पर तत्परता से कार्रवाई की जाएगी ।

(2) यदि उपधारा (1) में यथानिर्दिष्ट उपाय ऐसे समय के भीतर नहीं किए जाते हैं, जो इस प्रयोजन के लिए अनुज्ञात किया जाए, तो सूचना, अध्यपेक्षा, आदेश या निदेश जारी करने वाला प्राधिकारी, यथास्थिति, ऐसे व्यक्ति या नगरपालिका या पंचायत के खर्चे पर, जिससे या जिनसे ऐसे उपाय करने की अपेक्षा थी, उपायों को करवाएगा ।

(3) उपधारा (2) के अधीन किए गए किन्हीं उपायों के खर्चे, यथास्थिति, संबद्ध व्यक्ति या नगरपालिका या पंचायत से किसी न्यायालय द्वारा अधिरोपित जुर्माने की वसूली के लिए दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) द्वारा उपबंधित रीति में इस प्रकार वसूलनीय होंगे, मानो ऐसे खर्चे किसी न्यायालय द्वारा अधिरोपित जुर्माने हों ।

30. **ग्राम अधिकारी, आदि द्वारा सहायता करना** – सभी नगरपालिका, पंचायत या ग्राम अधिकारी और राज्य सरकार के ग्रामीण और डेयरी विकास, राजस्व, कृषि, पशुपालन और पशु चिकित्सा विभागों के सभी अधिकारी –

(क) ऐसे पशु चिकित्सा अधिकारी और ऐसे पशु चिकित्सक को, जिसकी अधिकारिता उस क्षेत्र में है, उक्त क्षेत्र में, किसी पशु या पशुओं की किसी जाति में किसी अनुसूचित रोग के होने की तत्काल सूचना देने ;

(ख) किसी अनुसूचित रोग के होने या फैलने को रोकने के लिए सभी आवश्यक उपाय करने ; और

(ग) पशु चिकित्सा अधिकारी और पशु चिकित्सक को इस अधिनियम के अधीन उनके कर्तव्यों के निर्वहन में या उनकी शक्तियों के प्रयोग में सहायता करने, के लिए आबद्ध होंगे ।

31. **प्राधिकार के बिना टीका प्रमाणपत्र जारी करने या त्रुटिपूर्ण टीका लगाने के लिए शास्ति** – यदि कोई व्यक्ति –

(क) उस निमित्त किसी प्राधिकार या सक्षमता के बिना, या

(ख) ऐसा टीका लगाने के पश्चात् जिसका किसी रीति में दोषपूर्ण होना ज्ञात है,

कोई टीका प्रमाणपत्र जारी करता है, तो वह ऐसे अपराध का दोषी होगा, जो पांच हजार रुपए के जुर्माने से या जुर्माने का संदाय न किए जाने की दशा में, कारावास से, जिसकी अवधि एक मास तक की हो सकेगी, और किसी पश्चात्वर्ती अपराध की दशा में, दस हजार रुपए के जुर्माने से या ऐसे कारावास से, जिसकी अवधि तीन मास तक की हो सकेगी, दंडनीय होगा ।

32. **शास्तियां** – कोई व्यक्ति, जो इस अधिनियम के उपबंधों का उल्लंघन करता है या सक्षम अधिकारी को उसके कर्तव्यों के निर्वहन में बाधा पहुंचाता है ऐसे किसी अपराध का दोषी होगा, जो जुर्माने से, जो एक हजार रुपए तक का हो सकेगा और शास्ति का संदाय करने में असफल रहने की दशा में, कारावास से, जिसकी अवधि एक मास तक की हो सकेगी ; और किसी पश्चात्वर्ती अपराध की दशा में (चाहे वह उसी उपबंध या इस अधिनियम के किन्हीं अन्य उपबंधों के अधीन है, धारा 31 और धारा

33 के मामले के सिवाय) दो हजार रुपए के जुर्माने से या शास्ति का संदाय न किए जाने की दशा में, कारावास से, जिसकी अवधि दो मास तक की हो सकेगी, दंडनीय होगा ।

33. **संक्रामित पशु या शव को नदी, आदि में फेंकने के लिए शास्ति** – जो कोई, किसी पशु शव या शव के किसी भाग को, जिसका मृत्यु के समय उसे संक्रामित होना ज्ञात था, किसी नदी, झील, नहर या किसी अन्य जलाशय में डालता है, डलवाता है या डलवाने को अनुज्ञात करता है तो वह ऐसे किसी अपराध का दोषी होगा और दोषसिद्धि पर, पहले अपराध की दशा में, दो हजार रुपए के जुर्माने से या जुर्माने का संदाय न करने की दशा में, एक मास के कारावास से और पश्चात्वर्ती दोषसिद्धि की दशा में पांच हजार रुपए के जुर्माने से या कारावास से, जिसकी अवधि तीन मास तक की हो सकेगी, या दोनों से, दंडनीय होगा ।

34. **कम्पनियों द्वारा अपराध** – (1) जहां इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध, किसी कम्पनी द्वारा किया गया है, वहां ऐसा प्रत्येक व्यक्ति, जो उस अपराध के किए जाने के समय उस कम्पनी के कारबार के संचालन के लिए उस कम्पनी का भारसाधक और उसके प्रति उत्तरदायी था और साथ ही वह कम्पनी भी, ऐसे अपराध के दोषी समझे जाएंगे और तद्नुसार अपने विरुद्ध कार्यवाही किए जाने और दंडित किए जाने के भागी होंगे :

परन्तु इस उपधारा की कोई बात किसी ऐसे व्यक्ति को इस अधिनियम में उपबंधित किसी दंड का भागी नहीं बनाएगी, यदि वह यह साबित कर देता है कि अपराध उसकी जानकारी के बिना किया गया था या उसने ऐसे अपराध के किए जाने का निवारण करने के लिए सब सम्यक् तत्परता बरती थी ।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, जहां इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध किसी कम्पनी द्वारा किया गया है और यह साबित हो जाता है कि वह अपराध कम्पनी के किसी निदेशक, प्रबन्धक, सचिव या अन्य अधिकारी की सहमति या मौनानुकूलता से किया गया है या उस अपराध का किया जाना उसकी किसी उपेक्षा के कारण माना जा सकता है, वहां ऐसा निदेशक, प्रबन्धक, सचिव या अन्य अधिकारी भी उस अपराध का दोषी समझा जाएगा और तद्नुसार अपने विरुद्ध कार्यवाही किए जाने और दंडित किए जाने का भागी होगा ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए, –

(क) "कम्पनी" से कोई निगमित निकाय अभिप्रेत है और इसके अन्तर्गत तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन रजिस्ट्रीकृत या रजिस्ट्रीकृत समझी गई कोई सहकारी सोसाइटी, फर्म या व्यष्टियों का अन्य संगम भी है ; और

(ख) फर्म के संबंध में, "निदेशक" से उस फर्म का भागीदार अभिप्रेत है ।

अध्याय 6

रोगकारक जीव, आदि के संबंध में एहतियाती उपाय

35. **रोगकारक जीव के बच निकलने का निवारण** – (1) ऐसी प्रत्येक संस्था, प्रयोगशाला या क्लीनिक में, जो वैक्सीन, सीरा, निदान या रसोचिकित्सा ओषधियों से संबंधित विनिर्माण, परीक्षण या अनुसंधान में लगे हैं और जिनका उद्देश्य किसी अनुसूचित रोग का निवारण या उपचार करना है, निम्नलिखित के लिए पर्याप्त एहतियाती उपाय किए जाएंगे –

(क) यह सुनिश्चित करना कि किसी अनुसूचित रोग के रोगकारक जीव बच निकल न पाएं या अन्यथा निर्मुक्त न हो पाएं ;

(ख) किसी ऐसे बच निकलने या निर्मुक्त होने से संरक्षा करना ; और

(ग) ऐसे बच निकलने की दशा में प्रत्येक संबद्ध व्यक्ति को चेतावनी देना और उसे सुरक्षित करना ।

(2) तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, ऐसे प्रत्येक पशु की –

(क) जिसका उपधारा (1) में यथानिर्दिष्ट विनिर्माण, परीक्षण या अनुसंधान के लिए उपयोग किया गया है ; या

(ख) जिससे किसी अनुसूचित रोग के होने या उसके संचरित होने की संभावना है,

तुरन्त सहज मृत्यु कारित की जाएगी और उसे उस उपधारा में निर्दिष्ट, यथास्थिति, संस्था, प्रयोगशाला या क्लीनिक के भारसाधक या उन पर नियंत्रण रखने वाले व्यक्ति द्वारा व्ययन किया जाएगा ।

(3) ऐसा प्रत्येक व्यक्ति, जो उपधारा (1) में निर्दिष्ट किसी संस्था, प्रयोगशाला या क्लीनिक का भारसाधक है या उन पर नियंत्रण रखता है, उपधारा (1) और उपधारा (2) के उपबंधों का अनुपालन करेगा ; और अननुपालन की दशा में, वह ऐसे अपराध का दोषी होगा, जो जुर्माने से, जो बीस हजार रुपए तक का हो सकेगा या कारावास से जिसकी अवधि छह मास तक की हो सकेगी या दोनों से, दंडनीय होगा और यदि स्थापन टीका या ओषधि का वाणिज्यिक रूप से विनिर्माण कर रहा है तो एक वर्ष की अवधि तक अनुज्ञप्ति के अस्थायी निलम्बन की शास्ति भी अधिरोपित की जा सकेगी ।

अध्याय 7

प्रकीर्ण

36. **प्रत्यायोजन की शक्ति** – राज्य सरकार, अधिसूचना द्वारा, अपने अधीनस्थ किसी अधिकारी या प्राधिकारी को, धारा 42 की उपधारा (2) के अधीन नियम बनाने की शक्तियों के सिवाय, इस अधिनियम द्वारा या तद्धीन उसे प्रदत्त सभी या किन्हीं शक्तियों को, प्रत्यायोजित कर सकेगी ।

37. **अधिकारियों और प्राधिकारियों का सरकार के नियंत्रण के अधीन कृत्य करना** – इस अधिनियम के अधीन सभी अधिकारी और प्राधिकारी अपनी ऐसी शक्तियों का प्रयोग और ऐसे कृत्यों का निर्वहन, जो इस अधिनियम द्वारा या तद्धीन उनको प्रदत्त या उन पर अधिरोपित किए गए हैं ऐसे आदेशों के अनुसार करेंगे, जो इस अधिनियम के उपबंधों से असंगत न हों और जो, समय-समय पर केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार द्वारा किए जाएं ।

38. **अनुसूची का संशोधन करने की शक्ति** – (1) केन्द्रीय सरकार, अधिसूचना द्वारा, अनुसूची में किसी पशु रोग को जोड़ सकेगी या उसमें से उसका लोप कर सकेगी और उक्त रोग को अधिसूचना की तारीख से, अनुसूची में जोड़ा गया या उससे लोप किया गया समझा जाएगा ।

(2) उपधारा (1) के अधीन जारी की गई प्रत्येक अधिसूचना, जारी किए जाने के पश्चात्, यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखी जाएगी ।

39. **निदेश जारी करने की शक्ति** – केन्द्रीय सरकार, पशुओं के किसी संक्रामक या सांसर्गिक रोग के निवारण, नियंत्रण और उन्मूलन के

उद्देश्य से, राज्य सरकार या इस अधिनियम के अधीन अन्य प्राधिकारियों को, समय-समय पर, ऐसे निदेश जारी कर सकेगी, जिनके अंतर्गत अनुसूचित रोगों और टीकाकरण के संबंध में ऐसी विवरणी और आंकड़े प्रस्तुत करने के लिए निदेश भी हैं, जो वह ठीक समझे और प्रत्येक ऐसे निदेश का अनुपालन किया जाएगा ।

40. **कतिपय व्यक्तियों का लोक सेवक होना** – प्रत्येक सक्षम अधिकारी, निदेशक और पशु चिकित्सा अधिकारी को, जब वे इस अधिनियम के अधीन किसी शक्ति का प्रयोग या किसी कर्तव्य का निर्वहन कर रहे हों, भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 21 के अर्थान्तर्गत लोक सेवक समझा जाएगा ।

41. **कठिनाइयों को दूर करने की शक्ति** – (1) यदि इस अधिनियम के उपबंधों को प्रभावी करने में कोई कठिनाई उत्पन्न होती है तो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में प्रकाशित आदेश द्वारा, ऐसे उपबंध कर सकेगी, जो इस अधिनियम के उपबंधों से असंगत न हों, और जो उसे उक्त कठिनाई को दूर करने के लिए आवश्यक या समीचीन प्रतीत हों :

परन्तु ऐसा कोई आदेश इस अधिनियम के प्रारम्भ की तारीख से दो वर्ष की अवधि की समाप्ति के पश्चात् नहीं किया जाएगा ।

(2) इस धारा के अधीन किया गया प्रत्येक आदेश इसके किए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखा जाएगा ।

42. **नियम बनाने की केन्द्रीय सरकार की शक्ति** – (1) केन्द्रीय सरकार, इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए पूर्व प्रकाशन की शर्त के अधीन रहते हुए, नियम अधिसूचना द्वारा, बना सकेगी ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियम निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध कर सकेंगे, अर्थात् :–

(क) धारा 9 के अधीन टीका प्रमाणपत्र का प्ररूप और वे विशिष्टियां, जो ऐसे प्रमाणपत्र में अंतर्विष्ट होंगी ;

(ख) धारा 26 के अधीन शवों के निपटान की रीति ;

(ग) धारा 27 की उपधारा (1) के अधीन परीक्षा और शव परीक्षा करने की रीति तथा उपधारा (2) के अधीन शव परीक्षा की रिपोर्ट का

प्ररूप ;

(घ) ऐसा कोई अन्य विषय, जो विहित किया जाए या जिसकी बाबत केन्द्रीय सरकार द्वारा नियम बनाना अपेक्षित हो ।

43. **नियम बनाने की राज्य सरकार की शक्ति** – (1) राज्य सरकार, इस अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए केन्द्रीय सरकार के पूर्वानुमोदन से, नियम अधिसूचना द्वारा, बना सकेगी ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियम निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध कर सकेंगे, अर्थात् :–

(क) धारा 14 की उपधारा (4) के अधीन किसी करंतीन कैंप के भारसाधक अधिकारी द्वारा अनुदत्त किए जाने वाले अनुज्ञापत्र का प्ररूप ;

(ख) किसी जांच पड़ताल चौकी या किसी करंतीन कैंप में अनिवार्य टीका लगाने और पशुओं का चिह्नांकन करने के लिए किसी पशु के निरीक्षण की रीति तथा निरोध की अवधि और धारा 15 की उपधारा (2) के अधीन प्रवेश अनुज्ञापत्र का प्ररूप और उसके जारी करने की रीति ;

(ग) कोई अन्य विषय, जिसकी बाबत राज्य सरकार द्वारा नियम बनाए जाने हैं या बनाए जाएं ।

44. **नियमों का सदनों के समक्ष रखा जाना** – (1) इस अधिनियम के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा बनाया गया प्रत्येक नियम, बनाए जाने के पश्चात्, यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह सत्र में हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा । यह अवधि एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी और यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस नियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं जो तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगा । यदि उक्त अवसान के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि वह नियम नहीं बनाया जाना चाहिए तो तत्पश्चात् वह निष्प्रभाव हो जाएगा । किन्तु नियम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभावी होने से उसके अधीन पहले की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

(2) इस अधिनियम के अधीन राज्य सरकार द्वारा बनाया गया प्रत्येक नियम बनाए जाने के पश्चात्, यथाशीघ्र, राज्य विधान-मंडल के समक्ष रखा जाएगा ।

45. **निरसन और व्यावृत्ति** – इस अधिनियम के प्रारम्भ पर, –

(i) ग्लैण्डर और फार्सी अधिनियम, 1899 (1899 का 13) ;

(ii) डूरीन अधिनियम, 1910 (1910 का 5) ; और

(iii) किसी राज्य की कोई अन्य तत्स्थानी विधि, जहां तक वह इस अधिनियम के उपबंधों से असंगत है,

निरसित हो जाएगी :

परन्तु इस धारा की कोई बात –

(क) विधि के किसी ऐसे उपबंध के पहले से प्रवर्तन या तद्धीन सम्यक् रूप से की गई या सहन की गई किसी बात पर प्रभाव नहीं डालेगी ;

(ख) विधि के किसी ऐसे उपबंध के अधीन अर्जित, प्रोद्भूत या उपगत किसी अधिकार, विशेषाधिकार, बाध्यता या दायित्व पर प्रभाव नहीं डालेगी ;

(ग) विधि के किसी ऐसे उपबंध के विरुद्ध किए गए किसी अपराध के संबंध में उपगत किसी शास्ति, समपहरण या दंड पर प्रभाव नहीं डालेगी ; या

(घ) यथापूर्वोक्त किसी ऐसे अधिकार, विशेषाधिकार, बाध्यता, दायित्व, शास्ति, समपहरण या दंड के संबंध में किसी अन्वेषण, विधिक कार्यवाही या उपचार पर प्रभाव नहीं डालेगी ; और प्रत्येक ऐसा अन्वेषण, विधिक कार्यवाही या उपचार जारी रह सकेंगे, संस्थित या प्रवृत्त रह सकेंगे और कोई ऐसी शास्ति, समपहरण और दंड इस प्रकार अधिरोपित किए जा सकेंगे मानो विधि के पूर्वोक्त उपबंध जारी रहे थे :

परन्तु यह और कि विधि के किसी ऐसे उपबंध के अधीन की गई कोई बात या कोई कार्रवाई, जिसके अंतर्गत निकाली गई कोई अधिसूचना, किया गया आदेश, जारी की गई सूचना या रसीद या की गई घोषणा भी है, जहां तक वह इस अधिनियम के उपबंधों से असंगत नहीं है, इस

अधिनियम के तत्स्थानी उपबंधों के अधीन की गई, किया गया, निकाली गई, किया गया, जारी की गई या की गई समझी जाएगी और तद्नुसार तब तक प्रवृत्त रहेगी जब तक कि इस अधिनियम के अधीन की गई किसी बात या की गई किसी कार्रवाई द्वारा उसे अधिक्रान्त न कर दिया गया हो ।

अनुसूची

[धारा 2(ण) और धारा 38 देखिए]

(क) बहु जातीय रोग

1. एंथ्रेक्स ।
2. ओजेस्की रोग ।
3. ब्लूटंग ।
4. ब्रसेलोसिस ।
5. क्राइमीन कांगो हैमरेज ज्वर ।
6. एकीनोकोकोसिस/हाईडेटिडोसिस ।
7. खुरपका और मुंहपका रोग ।
8. हर्टवाटर ।
9. जापानी एनसीफैलीटिस ।
10. लैप्टोस्पाइरोसिस ।
11. नई वर्ल्ड स्क्रूवर्म (कोचलियोंमाईया होमिनीवोरेक्स) ।
12. पुरानी वर्ल्ड स्क्रूवर्म (चैरीसोमिया बैजीआना) ।
13. पैराट्यूबरक्यूलोसिस ।
14. क्यू फीवर ।
15. रैबीज ।
16. रिफ्ट वैली ज्वर ।
17. पशुप्लेग ।
18. ट्राइकीनैलोसिस ।
19. टुलारेमिया ।
20. वैसीकुलर स्टोमैटीटिस ।
21. वेस्ट नाईल ज्वर ।

(ख) **पशु रोग**

1. बोवाईन अनाप्लास्मोसिस ।
2. बोवाईन बेबीसिओसिस ।

3. बोवाईन जैनीटल कैम्पीलोबैक्टीरियोसिस ।
4. बोवाईन स्पोंगिफार्म एनसीफालोपैथी ।
5. बोवाईन ट्यूबरक्यूलोसिस ।
6. बोवाईन वायरल डायरिया ।
7. संसर्गजन्य बोवाईन फ्लूरोन्यूमोनिया ।
8. एनजूटिक बोवाईन ल्यूकोसिस ।
9. हीमोरैजिक सैस्टीसीमिया ।
10. संक्रामक बोवाईन राइनोट्रेचिटिस/संक्रामक पस्टूलर वलवोवेजीनिटिस ।
11. लम्पी स्किन रोग ।
12. मालीगनेंट कैटराहल ज्वर ।
13. थाईलीरिओसिस ।
14. ट्राइकोमोनोसिस ।
15. ट्रायपानोसीमोसिस ।

(ग) **भेड़ और बकरी रोग**

1. कैपरीन आर्थराईटिस/एनसीफेलिटिस ।
2. संसर्गजन्य अगलाकटिया ।
3. संसर्गजन्य कैपरीन प्लूरोनिमोनिया ।
4. एनजूटिक अबार्शन आफ ऐवीस (ओवाईन क्लामाईडियोसिस) ।
5. मैदी-विसना ।
6. नाईरोबी भेड़ रोग ।
7. ओवाईन एपीडीडायमिटिस (ब्रूसेला ओवीस) ।
8. पेस्टे डेस पेटीट्स रूमिनेंट्स ।
9. सालमोनेलोसिस (एस. एबोर्टयूसोविस) ।
10. स्क्रेपी ।
11. भेड़ पाक्स और बकरी पाक्स ।

(घ) **अश्व रोग**

1. अफ्रीकन मेट्रीटिस बीमारी ।
2. संसर्गजन्य मेट्रीटिस मैटरीटिस ।
3. डूरीन ।
4. अश्व एनसीफालोमाईलिटिस (पूर्वी) ।
5. अश्व एनसीफालोमाईलिटिस (पश्चिमी) ।
6. अश्व संक्रामक एनीमिया ।
7. अश्व इंफ्लूएंजा ।
8. अश्व पाइरोप्लासमोसिस ।
9. अश्व रायनोन्यूमोनिटिस ।
10. अश्व वायरल आरटेरिटस ।
11. ग्लैंडर्स ।
12. सूरा (ट्राइपानोसोमा ईवानसी) ।
13. वेनीजूएलन अश्व एनसीफालोमाईलिटिस ।

(ङ) **स्वाइन रोग**

1. अफ्रीकन स्वाईन ज्वर ।
2. क्लासीकल स्वाईन ज्वर ।
3. निपाह वायरस एनसीफालीटिस ।
4. पोरसिन सिसटीसरकोसिस ।
5. पोरसिन रिपरोडक्टिव और रेस्पिरेटरी सिंड्रोम ।
6. स्वाइन वेसीकुलर रोग ।
7. ट्रांसमिसिबल गैस्ट्राइनटेरीटिस ।

(च) **एवियन रोग**

1. एवीयन क्लेमाइडियोसिस ।
2. एवीयन संक्रामक ब्रोंकाइटिस ।
3. एवीयन संक्रामक लैरिंगोट्राचीटिस ।
4. एवीयन माईकोप्लासमोसिस (एम. गालीसेप्टीकम) ।

5. एवीयन माईकोप्लासमोसिस (एम. सायनोवि) ।
6. डक वायरस हैपेटाइटिस ।
7. फाउल कोलेरा ।
8. फाउल टाइफाइड ।
9. उच्च पैथोंजनिक एवियन इंफ्लूएंजा और कुक्कुट में निम्न पैथोजनिक एवियन इंफ्लूएंजा ।
10. संक्रामक सर्ल रोग (गंबोरो रोग) ।
11. मारेक रोग ।
12. न्यूकैसल रोग ।
13. पुलोरम रोग ।
14. टर्की रिनोट्राचीटिस ।

(छ) **लैगोमोर्फ रोग**

1. मायोक्सोमाटोसिस ।
2. रैबीट हेमरेजिक रोग ।

(ज) **मधुमक्खी रोग**

1. मधुमक्खी की अकारापीसोसिस ।
2. मधुमक्खी का अमेरिकन फाउलब्रूड ।
3. मधुमक्खी का यूरोपियन फाउलब्रूड ।
4. स्माल हाइव बीटल इनफेस्टेशन (एथीना ट्यूमीडा) ।
5. मधुमक्खी का ट्रोपिलाएलप्स इनफैस्टेशन ।
6. मधुमक्खी का वारूसिस ।

(झ) **मछली रोग**

1. एपीजूटिक हैमाटोपोयटिक नैकरोसिस ।
2. संक्रामक हैमाटोपोयटिक नैकरोसिस ।
3. स्प्रिंग वायमिया आफ कार्प ।
4. वायरल हैमोरहैजिक सैप्टीसीमिया ।

5. संक्रामक पैनाक्रिएटिक नैकरोसिस ।
6. संक्रामक सालमन एनीमिया ।
7. एपीजूटिक अल्सरएटिव सिंड्रोम ।
8. बैक्टीरियल किडनी रोग (रैनीबैक्टीरियम सालमोनीनरम) ।
9. गायरोडेक्टाईलोसिस (गायरोडेक्टाइलोसिस सालारिस) ।
10. रैड सी ब्रीम इरीडोवायरल रोग ।

(ञ) **मौलक्स रोग**

1. बोनामिया ओस्ट्रिया से संक्रमण ।
2. बोनामिया एक्सीटिओसा से संक्रमण ।
3. मार्टेलिया रेफ्रीनजैंस से संक्रमण ।
4. माइक्रोसायटोस मैकीनी से संक्रमण ।
5. पर्किनसस मैरीनस से संक्रमण ।
6. पर्किनसस आलसेनी से संक्रमण ।
7. एक्सनोहालीयोटिस कालीफोर्निनसिस से संक्रमण ।

(ट) **क्रसटेशियन रोग**

1. तौरा सिंड्रोम ।
2. व्हाईट स्पॉट रोग ।
3. येलोहेड रोग ।
4. टेट्राहीड्रल बाक्यूलोवायरोसिस (बाकलोवायरस पीनियल) ।
5. स्फैरीकल बाक्यूलोवायरोसिस (पैनासिस मोनोडोन-टाइप बाक्लोवायरस) ।
6. संक्रामक हाइपोडर्मल और हाइमैटोपायोटिक नैक्रोसिस ।
7. क्रायफिश प्लेग (एपहैनोमायसिस एसटासी) ।

(ठ) **अन्य रोग**

1. कैमलपाक्स ।
2. लैशमानियोसिस ।

प्रिवी कौंसिल

प्रिवी कौंसिल

निर्णय सूची

पृष्ठ संख्या

अतिसुख लाल भाई दास और अन्य **बनाम** नटवर लाल इच्छा राम देसाई 14

एस. आर. एम. एस. चिदाम्बरम चेट्टियार **बनाम** लू थोन पू 46

केवलापति और अन्य **बनाम** राजा अमर कृष्ण नारायण सिंह और अन्य 1

चन्दन मल इन्द्र कुमार और अन्य **बनाम** चिमन लाल गिरधर लाल पारीख और अन्य 42

प्रबोध कुमार दास और अन्य **बनाम** दन्तमारा टी कं. लि. और अन्य 37

बाबू भगवानदीन और अन्य **बनाम** गिर हर स्वरूप और अन्य 24

केवलापति और अन्य ..... अपीलार्थी

बनाम

राजा अमर कृष्ण नारायण सिंह और अन्य ..... प्रत्यर्थी

11.7.1939

न्यायमूर्ति लार्ड मेकमिलन, न्यायमूर्ति सर जार्ज रैंकिन और न्यायमूर्ति एम. आर. जयाकर

साक्ष्य विधि – प्रश्न कि क्या दिवंगत ताल्लुकेदार अपनी मृत्यु के लगभग 45 वर्ष पूर्व हिन्दू से मुसलमान हो गया था – यह सुसंगत है कि सरकारी अधिकारी तथा उसकी पत्नी आदि क्या धर्म-परिवर्तन के कथित तथ्य से अवगत थे और वे किस प्रकार व्यवहार करते थे ।

साक्ष्य विधि – मृतक अपील मृत्यु के अनेक वर्षों पूर्व से मंदबुद्धि था – उसकी मृत्यु के बाद पेश किए गए उसके हस्ताक्षरयुक्त दस्तावेज निश्चायक नहीं ।

भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 – धारा 35 व 32(2) – यह प्रश्न उठने पर कि क्या दिवंगत ताल्लुकेदार अपनी मृत्यु के 45 वर्ष पूर्व हिन्दू से मुसलमान हो गया था – उपायुक्त द्वारा आयुक्त को लिखा गया यह पत्र सुसंगत है कि ताल्लुकेदार एक बड़े राजपूत वंश का प्रमुख है – वह इस अधिनियम की धारा 35 में न आकर धारा 32(2) के अंतर्गत आएगा ।

मुस्लिम विधि – शिया विधि – उत्तराधिकार – पुत्री अपनी मां की वारिस तभी हो सकती है जब वह धर्मज हो, अर्थात् वह यथाविधि विवाहित पति से उत्पन्न हुई हो ।

प्रक्रिया – प्रिवी कौंसिल – प्रश्न कि क्या दिवंगत ताल्लुकेदार मुसलमान हो गया था – भारत के दोनों न्यायालयों का समान निष्कर्ष कि वह मुसलमान नहीं हुआ था – इस प्रश्न पर भारतीय न्यायाधीशों का निष्कर्ष महत्वपूर्ण – विशिष्टतः जब कि दो न्यायाधीश स्वयं मुसलमान थे – वैसे भी प्रिवी कौंसिल तथ्यविषयक सामान्य निष्कर्ष में सामान्यतः हस्तक्षेप नहीं करती ।

प्रक्रिया – साक्ष्य की ग्राह्यता विषयक आपत्ति – जब कुछ साक्ष्य की ग्राह्यता के विषय में निचले न्यायालयों में आपत्ति नहीं की गई और अपील की इजाजत के लिए आवेदन में भी वह प्रश्न नहीं उठाया गया तथा निचले न्यायालयों के अभिलेख के अनुसार वह साक्ष्य पक्षकारों की सम्मति से

ग्रहण किया गया तो फिर उस विषय में आपत्ति प्रिवी कौंसिल द्वारा ग्राह्य नहीं ।

इस अपील में पक्षकारों के बीच विवादित प्रश्न सीधे तौर पर दो बताए जा सकते है, जिन पर विचार किया जाना है । प्रथम, क्या वह दस्तावेज जिस पर 1.7.1898 की तारीख पड़ी है और जो राजा सर्वजीत सिंह द्वारा वादी की माता कादिर जहां बेगम के पक्ष में वसीयत के रूप में है, विधिमान्य वसीयत लिखत है ? दूसरे, क्या वादी, जिसके पिता राजा सर्वजीत सिंह थे, अपनी मां कादिर जहां बेगम की (जिनकी मृत्यु 1909 में हुई) धर्मज पुत्री और वारिस ? अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – इन निष्कर्षों पर पहुंचने के पूर्व भारत के दोनों न्यायालयों ने राजा सर्वजीत सिंह के वैयक्तिक इतिहास से संबंधित वृहत् एवं परस्पर विरोधी साक्ष्य की परिश्रमपूर्वक समीक्षा की, जो हमारे विचार से सूक्ष्म और सही थी । यह सही है कि अनेक साक्षी ऐसे थे जिन्हें विद्वान् मुख्य न्यायाधीश ने नहीं देखा था । किंतु मामले के मूल में प्रश्न यह है कि यह राजपूत सरदार, जो एक स्त्री जाति का प्रधान, अवध का ताल्लुकेदार और एक बड़ी संपदा का स्वामी था, 1864 या उसके लगभग से (1899 में) अपनी मृत्यु तक मुसलमान था या हिन्दू । इस्लाम धर्म का खुल्लमखुल्ला ग्रहण और उसके बाद मुस्लिम महिला से विवाह करके उसकी प्रत्यक्ष घोषणा एवं अनुसरण के प्रति अपनाए गए दृष्टिकोण पर बहुत कुछ निर्भर करेगा । वह व्यापाक लोक रुचि का मामला रहा होगा जो प्राधिकारियों की दृष्टि में विशेष महत्वपूर्ण और व्यापक प्रसिद्धि वाला रहा होगा । प्रांत के विद्वान् न्यायाधीशों के ऐसे विषय में राय की हल्के से उपेक्षा नहीं की जा सकती, विशेष तौर पर जब कि उनमें से दो स्वयं मुसलमान थे । विद्वान् न्यायाधीश यह जानने की विशेष तौर पर अनुकूल स्थिति में थे कि यदि राजा मुसलमान होता तो क्या उसने 1874 में हिन्दू धर्म पद्धति के संकल्प के साथ महंत को अनुदान दिया होता, या 1888 में महंत को उस प्रकार लिखा होता जैसे उसने लिखा, या प्रतिपाल्य अधिकरण को वैसे पत्र लिखे होते जैसे उसने 1891 और 1893 में लिखे ; क्या 1898 में साक्षी के रूप में उपस्थित होने पर उसने अपने को क्षत्री बताया होता ; क्या उसने कादिर जहां को 22.10.1884 के विलेख की भाषा में अपनी विधिपूर्ण पत्नी बताया होता ; क्या ईदगाह के एक शिलालेख की भाषा कल्पनाश्रित प्रशंसा की है या उसे कुछ सीमा तक तथ्यों का गंभीर कथन माना जाना चाहिए ; क्या 1872 के कथित विलेख में मेहर की शर्त (मेहर मुवज्जल 75,000/- रु. तथा मेहर

मुवज्जल रामनगर धमेरी संपदा का आधा भाग) इन परिस्थितियों में विश्वसनीय है । इस मामले में इस बात के लिए प्रबल कारण हैं कि हम अपनी इस पद्धति से विचलन करने में संकोच करें (यद्यपि वह पद्धति न विधि का नियम है, न अनम्य नियम किंतु जो परमाधिकार के प्रयोग में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है) कि तथ्य-विषयक समान निष्कर्षों में हस्तक्षेप न किया जाए । पहला प्रश्न यह है कि क्या उन वादों में दिया गया साक्ष्य प्रस्तुत मामले में ग्राह्य भी था । हमारी राय में वादी के मुख्य अभिवक्ता श्री हसन हमाम द्वारा हस्ताक्षरित 13.2.1932 का बयान, जो उभयपक्ष के अधिवक्ताओं ने माना और न्यायालय ने 17.10.1932 के आदेश द्वारा अंगीकृत किया गया, इस करार को निर्विवाद बना देता है कि वाद सं. 72 सन् 1901 का साक्ष्य प्रस्तुत मामले में मूल साक्ष्य के रूप में पढ़ा जाना चाहिए । वाद सं. 58 सन् 1906 के साक्ष्य के विषय में करार उसी सावधानी से लेखबद्ध नहीं किया गया है किंतु मुख्य न्यायाधीश ने अपने निर्णय में लिखा है कि वही करार उसे भी लागू होता है । वे ऐसी स्थिति में नहीं थे कि कहते कि न्यायमूर्ति नानावती के समक्ष सुनवाई के पूर्ववर्ती प्रक्रम पर क्या घटित हुआ, किंतु उन्होंने विचारण के अंत में बहस सुनी और वे इस प्रश्न पर भूल नहीं कर सकते थे कि वाद सं. 58 की समाग्री पर आपत्ति की गई अथवा वह परस्पर के ठहराव के आधार पर आपत्ति-रहित ढंग से उपयोग में लाई गई । किसी भी दृष्टि से देखें, जब विचारण न्यायाधीश ने उस सामग्री का उपयोग किया और वह यह कह कर कि वह इस वाद में साक्ष्य है तथा अपीली न्यायपीठ को अपील के ज्ञाप में इस विषय में कोई आपत्ति नहीं है और विद्वान् न्यायाधीश अपील में कहते हैं "नामांतरण के मामले तथा वादी के वाद सं. 58 सन् 1906 के वाद में पेश किया गया कुछ साक्ष्य इस वाद में भी साक्ष्य के रूप में पेश किया गया" । तो उन्हें यह ज्ञात होगा कि जिस सामग्री का वे हवाला दे रहे हैं वह आपत्ति के बिना प्रयोग में लाई गई है क्योंकि वह सामग्री बहस के समय उनके समक्ष थी । मामला सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 109 और 110 के अधीन हिज मैजेस्टी को अपील में ले जाए जाने के लिए उपयुक्त होने के प्रमाणपत्र की अर्जी में भी कोई आपत्ति नहीं की गई और उस आवेदन की सुनवाई के समय यह आपत्ति कि साक्ष्य अग्राह्य है अभिव्यक्त रूप से अन्य आधारों पर थी । इन कारणों से हम अब यह आपत्ति नहीं मान सकते और हमारा विचार है कि दोनों पूर्ववर्ती वादों का साक्ष्य पक्षकारों के बीच किए गए ठहराव के आधार पर उपलब्ध है । यह सही है कि जिस कार्य की सिफारिश की गई थी वह 1938 के पूर्व नहीं किया गया । हम

सहमत हैं कि यह साक्ष्य अधिनियम की धारा 35 में निर्दिष्ट प्रकार की प्रविष्टि नहीं है । किंतु धर्म-परिवर्तन के प्रश्न पर इस दस्तावेज को धारा 32 की उपधारा (2) के अधीन अग्राह्य करना इस मामले की समग्र परिस्थितियों को देखते हुए कठिन होगा । वैसे हमारे विचार से इस पात्र की अग्राह्य करने का परिणाम अन्य साक्ष्य को देखते हुए नगण्य है । इसी प्रकार 1906 के वाद में दिया गया न्यायमूर्ति टडबाल का बयान हमारे विचार से, जैसा कि पहले बताया गया, ग्राह्य है । वे 1892 में बाराबंकी के उपायुक्त थे और उनके बयान में वही आधार पूर्णतः आ जाता है और वह उसी आशय का है । प्रदर्श ए-49 उपायुक्त द्वारा आयुक्त को लिखा गया दूसरा पत्र है । वह 1883 का है और लेखक मेजर नोबिल हैं । इसमें राजा की अंधता और ऋणिता का उल्लेख है और उन्हें बिगड़े बच्चे की भांति दुर्बल और सनकी कहा गया तथा उनके उदित नारायण को नकारने का भी उल्लेख है । यह प्रदर्श ए-47 से कम महत्व का है । उसे ग्रहण किया जाए या नहीं, इससे समान निष्कर्षों के प्रश्न पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता । प्रदर्श ए-265 20.10.1893 का है । यह उपायुक्त द्वारा आयुक्त को भेजी गई एक रिपोर्ट है जो राजस्व बोर्ड ने राजा के उसकी संपदा छोड़ने के लिए 5.5.1893 की अर्जी के संबंध में मांगी थी । यह आपत्ति की गई कि मूल प्रति पेश न करके छपी प्रति पेश की गई । किंतु वादी ने इस रिपोर्ट के तारतम्य में लिखी गई 25.10.1893 की रिपोर्ट (प्रदर्श 43) पेश की और हमारे विचार से उससे उक्त दस्तावेज की ग्राह्यता की सभी कठिनाई समाप्त हो जाती है । हमारी राय में भारतीय न्यायालयों के समान निष्कर्षो में हस्तक्षेप इस आधार पर नहीं किया जा सकता कि वह अग्राह्य साक्ष्य पर आधारित है । (पैरा 8, 10 और 12)

अपीली सिविल अधिकारिता : 1938 की अपील सं. 77.

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री डी. एन. प्रिट, सर सुलतान अहमद और एल. एस. मिश्रा

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री सर थामस स्ट्रांगमैन, डब्ल्यू वालच, प्यारे लाल बनर्जी और सिराज हुसैन

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति सर जार्ज रैंकिन ने दिया ।

न्या. रैंकिन – हम अपनी यह राय व्यक्त कर चुके हैं कि इस अपील में विनिश्चयार्थ प्रश्नों का अंतिम रूप से निर्णय भारत के न्यायालयों के

तथ्यविषयक समान निष्कर्षों से हो चुका है । तद्नुसार हमने सपरिषद् हिज मैजेस्टी को सलाह दी है कि अपील खारिज की जानी चाहिए और हमने अपीलार्थियों को निदेश दिया है कि प्रत्यर्थियों का अपील का खर्चा अदा करें । उस सलाह के कारण बताना शेष है । दावा अवध प्रांत के बाराबंकी जिले में रामनगर ताल्लुकेदारी संपदा तथा कुछ अन्य जंगम और स्थावर संपत्ति का है । यह संपत्ति राजा सर्वजीत सिंह ने छोड़ी, जिनका देहावसान 20.12.1899 को हुआ । दावेदार खुर्शीद जहाँ बेगम है जिसे यहां आगे वादी कहा जाएगा, यद्यपि उसने अपने वित्तपोषक को भी सहवादी बना लिया है । उसने यह दावा अवध मुख्य न्यायालय में 7.2.1931 को किया । विचारण न्यायाधीश ने वह खारिज कर दिया और उस डिक्री की पुष्टि अपील न्यायपीठ ने कर दी । अतः वह अब अपील करती है । प्रतिवादी (जो इस बोर्ड के समक्ष प्रत्यर्थी हैं) संक्षेप में उदित नारायण सिंह के प्रतिनिधि कहे जा सकते हैं । राजा सर्वजीत सिंह की मृत्यु होने पर उनके एकमात्र पुत्र होने के नाते उदित नारायण सिंह ने, जिनकी मृत्यु 1927 में हुई, वादगत संपत्तियों का कब्जा प्राप्त कर लिया था ।

2. इन पक्षकारों के बीच विवादित प्रश्न सीधे तौर पर दो बताए जा सकते हैं । प्रथम क्या वह दस्तावेज जिस पर 1.7.1898 की तारीख पड़ी है और जो राजा सर्वजीत सिंह द्वारा वादी की माता कादिर जहां बेगम के पक्ष में वसीयत के रूप में है, विधिमान्य वसीयती लिखत है ? दूसरे, क्या वादी, जिसके पिता राजा सर्वजीत सिंह थे, अपील मां कादिर जहां की (जिनकी मृत्यु 1909 में हुई) धर्मज पुत्री और वारिस है ? एक तीसरा तर्क भी अवध के न्यायालयों में तथा हमारे समक्ष किया गया । वह 7.11.1902 के एक विक्रय विलेख के पैरा 10 पर आधारित है । वह विलेख कादिर जहां ने निष्पादित किया था, जिसका प्रभाव यह बताया गया कि वह वादी के हक में ताल्लुकेदारी संपदा की वसीयत है । भारत के न्यायालयों ने यह तर्क अमान्य किया है । हमने सुनवाई के समय ही सूचित कर दिया था कि वह नहीं माना जा सकता और उस पर और ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है । वादी की माता की उसके पक्ष में वादगत संपत्ति की कोई अन्य वसीयत नहीं है और यह किसी का कहना नहीं है कि वादी (जब तक वह धर्मज न हो) मुस्लिम विधि की शिया शाखा के अनुसार अपनी मां की वारिस हो सकती है । वादिनी के पक्ष के लिए यह आवश्यक है कि अपनी माता-पिता का विवाह सिद्ध करे ।

3. वादी द्वारा प्रस्तुत पक्षकथन यह है कि राजा सर्वजीत सिंह ने अवध के अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित किए जाने के पूर्व 1852-54 में इस्लाम धर्म

ग्रहण कर लिया था और उन्होंने कादिर जहां नामक एक मुस्लिम महिला से 25.11.1872 को विवाह कर लिया । विवाह के सबूत के तौर पर वादिनी का आशय उस तारीख के एक विलेख (निकाहनामा) पर है । वह फारसी भाषा में है तथा उसमें अरबी के उद्धरण हैं । उसमें मेहर मुवज्जल (तात्कालिक) 75,000/- रु. बताया गया है और मेहर मुवज्जल (आस्थगित) रामनगर धमेरी संपदा का आधा भाग बताया गया है । उस पर दो मोहरें लगी हैं, जो उन दो मौलवियों की होनी तात्पर्यित हैं जो एक-एक पक्षकार की ओर से कार्य कर रहे थे । उस पर राजा के हिन्दी में हस्ताक्षर तथा अन्य चार साक्षियों के हस्ताक्षर भी प्रकटतः हैं ।

4. इस विलेख की वास्तविकता प्रस्तुत मामले के लिए मर्मभूत मानी जा सकती है । ऐसे विलेख का उल्लेख उस नामान्तरण कार्यवाही में किया गया था जो राजा की मृत्यु होने पर 1900 में की गई थी । वह विलेख कादिर जहां ने अपने द्वारा किए गए वाद सं. 72 सन् 1901 में (जिसका आगे उल्लेख है) पेश किया था और तब बताया गया था कि वह 1894 या उसके लगभग तक उसकी मां की अभिरक्षा में रहा और कादिर जहां को मां की मृत्यु के कुछ समय पूर्व ही लौटाया गया । राजपूत और स्त्री होने के नाते सर्वजीत सिंह का विवाह मुस्लिम महिला से विधितः नहीं हो सकता था । अतः यदि वादिनी यह साबित कर दे कि निकाहनामा असली दस्तावेज है तो उससे राजा का इस्लाम धर्म ग्रहण बहुत कुछ सिद्ध हो जाएगा । दूसरी ओर कथित धर्म-परिवर्तन नासाबित होने से निकाहनामा ही अमान्य हो जाएगा । वादिनी के अनुसार निकाहनामा कोई गुप्त या अंतरंग बात नहीं था । अतः पिछली शताब्दी के छठे और दसवें दशक के बीच की लंबी अवधि के विषय में यह आशा की जा सकती है कि उसमें एक या दूसरे पक्ष में विश्वसनीय साक्ष्य मिलेगा । मामले का यह पक्ष इस बात से बहुत प्रभावित हो जाता है कि 1888 में राजा की संपदा 1876 के अधिनियम सं. 17 की धारा 162 के खंड (ङ) के अधीन प्रतिपाल्य अधिकरण ने संभाल ली थी, और वह इस आधार पर कि तुल्य आयुक्त की राय में वह अपनी शारीरिक कमियों या शैथिल्य के कारण अपनी संपदा का प्रबंध करने के अयोग्य हो गया था । वह संपदा राजा के जीवनकाल में कभी नहीं छोड़ी गई । और भारत के न्यायालयों के समक्ष उसकी मानसिक एवं शारीरिक दुर्बलता का विभिन्न तारीखों का बहुत-सा साक्ष्य था । वस्तुतः प्रत्यक्ष साक्ष्य है जो विश्वास किए जाने पर सिद्ध करेगा कि अपनी मृत्यु के कुछ समय पूर्व उनकी स्थिति मंदबुद्धि (inbecile) की हो गई थी । इन परिस्थितियों में उनकी मृत्यु के बाद ऐसी दस्तावेजें पेश करना, जिन पर उनके हस्ताक्षर हैं,

हैं, स्वयं में निश्चायक नहीं है । किंतु वादिनी का ऐसी दस्तावेज के रूप में, जिस पर राजा के हस्ताक्षर हैं, आश्रय केवल निकाहनामा पर नहीं है । विशिष्टतः 1896 की एक वसीयत के कादिर जहां को उनकी विवादित पत्नी कहा गया है और 1898 की एक वसीयत में कहा गया है कि उदित नारायण उनका पुत्र नहीं है तथा राजा अंग्रेजी कब्जे के पूर्व ही मुसलमान हो गए थे और उन्होंने कादिर जहां से विवाह कर लिया था ।

5. राजा सर्वजीत सिंह का जन्म 1829 में हुआ था और उनका विवाह देहावसान 70 वर्ष की आयु में 1899 में हुआ । वह राजा गुरु बख्श सिंह के पुत्र थे, जो राजपूतों की रैकवार शाखा के प्रमुख थे तथा रामनगर और बिटोली के ताल्लुकेदार थे । 1844 में सर्वजीत सिंह को अपने पिता के जीवनकाल में ही रामनगर का उत्तराधिकारी बना दिया गया और अवध के अंग्रेजी शासन में आने पर उन्हें ज्येष्ठाधिकार की सनद मिल गई और उनका नाम 1869 के अधिनियम सं. 1 की धारा 8 के अधीन सूची 1 व 2 में दर्ज कर लिया गया । 1844 के लगभग उन्होंने रानी राज कुंवर से विवाह किया । उनके कोई संतान नहीं हुई, किंतु रानी उत्तरजीवी हुई और उनकी मृत्यु लगभग 1900 में हुई । 1852 में राजा ने एक दूसरी पत्नी रानी गुलाब कुंवर से विवाह किया, जिनकी मृत्यु राजा के जीवनकाल में 1893 में हो गई । जैसा कि निचले न्यायालयों का निष्कर्ष है, उनसे 1861 में राजा के एक पुत्र हुआ जो उदित नारायण सिंह कहलाया । वादी का कहना है कि उदित नारायण सिंह एक नीची जाति (अहीर) का लड़का था जिसका पालन-पोषण दृश्यतः तभी से जब कि वह कुछ मास का था और गुलाब कुंवर ने उसे गोद लेने की दृष्टि से किया था । किंतु उसे गोद कभी नहीं लिया गया । यदि राजा 32 वर्षीय मुसलमान था तो वह इस प्रकार कार्य क्यों करता और उसकी हिन्दू पत्नी उदित नारायण को अपना पुत्र क्यों बताती, ये ऐसी बातें हैं जो हमें पूर्णतः स्पष्ट नहीं की गई हैं । किंतु जो भी हो, अपने पिता की मृत्यु पर उदित नारायण सिंह राम नगर ताल्लुका का उत्तराधिकारी हुआ और 1927 तक जीवित रहा । उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र राजा हरनाम सिंह हुआ । 1931 के प्रस्तुत वाद में वही मूल प्रतिवादी सं. 1 था ; किंतु वाद चलते उसका देहावसान हो गया और अब उसके प्रतिनिधि उसका भतीजा राजा अमर कृष्ण नारायण सिंह है । इसमें संदेह के लिए कोई अवसर नहीं प्रतीत होता कि उदित नारायण सिंह और उनकी संतान का स्वागत सम्मानित राजपूत कुटुंबों में होता था और उन्हीं में उनका विवाह हुआ । अधिसंभाव्यतः आठवें दशक में किसी समय कादिर जहां बेगम, चाहे पत्नी के रूप में चाहे उप-पत्नी के रूप में, राजा

सर्वजीव सिंह के साथ उनके सूरतगंज स्थित मुख्यालय में रहने लगी और 1877 में उनके वादी खुर्शीद जहां बेगम का जन्म हुआ । उसका विवाह मीर वाजिद अली नामक एक मुसलमान से हुआ और उनके 1895 में एक पुत्र हुआ । उनका यह पुत्र उस कथित वसीयत के अधीन फायदाग्राही है जो राजा सर्वजीत सिंह द्वारा 14.5.1896 को लिखी गई तात्पर्यित है । किंतु उसी वर्ष बाद में उस बालक की मृत्यु हो गई ।

6. राजा सर्वजीत सिंह की मृत्यु (20.12.1899) पर होने वाली नामातंरण कार्यवाही में ताल्लुका पर दावा कादिर जहां, उदित नारायण, राजकुंवर (विधवा) तथा अन्य ने किया । सफलता उदित नारायण को मिली और 1901 में संपदा प्रतिपाल्य अधिकरण ने उसके हक में छोड़ दी । जब 30.8.1901 को कादिर जहां ने बारबंकी के अधीनस्थ न्यायाधीश के समक्ष वाद सं. 72 सन् 1901 दाखिल किया जिसमें उसने उदित नारायण के मुकाबले उस संपदा का दावा किया । उसने राजा सर्वजीत सिंह के इस्लाम धर्म ग्रहण कर लेने और उससे विवाह करने का कथन किया । उसने इस बात से इनकार किया कि उदित नारायण राजा का पुत्र है तथा उसने स्वयं अपने पक्ष में 1.7.1898 की एक वसीयत राजा की अंतिम वसीयत के रूप में पेश की । उसके वाद का विचारण अगस्त, 1903 में प्रारंभ हुआ । वादी के साक्षियों की ओर प्रतिवादी उदित नारायण के कुछ साक्षियों की परीक्षा हो जाने के बाद 7.12.1904 को वाद में इन शर्तों पर समझौता हो गया कि उदित नारायण कादिर जहां को 10,000/- रु. तथा 1,200/- रु. का मासिक भत्ता दे तथा वर्तमान वादिनी खुर्शीद जहां को भी 300 रु. का मासिक भत्ता दे । भारत के दोनों न्यायालयों को समाधान प्रदान करने वाले रूप में यह साबित कर दिया गया है कि यह वाद और उसमें समझौता उदित नारायण ने कपट करके कराया और कादिर जहां का मुख्तारेआम उससे वेतन पाता था और उदित नारायण ने वादी के कुछ साक्षियों में हस्तक्षेप किया और समझौता उसने वादिनी को इस निराधार भय से भी कराया कि उसे गिरफ्तार करके उस पर मुकदमा चलाया जाएगा । 1906 में वर्तमान वादी खुर्शीद जहां ने उदित नारायण के विरुद्ध वाद सं. 58 सन् 1906 किया जिसमें उसने अधिनियम सं. 1 सन् 1869 की धारा 22 (खंड 11) के अधीन दावा किया कि राजा सर्वजीत सिंह की पुत्री होने के नाते वह अपनी माता कादिर जहां की अपेक्षा संपदा के विषय में अधिमान की अधिकारिणी है । 1909 में कादिर जहां की मृत्यु हो गई और खुर्शीद ने वाद सं. 58 सन् 1906 में संशोधन करने का प्रयत्न किया जिससे उसका अपनी माता के माध्यम से और 1898 की वसीयत के अधीन दावा शामिल

हो जाए । यह आवेदन अस्वीकार हो जाने पर उसने अपना वाद वापस ले लिया जो संपत्ति के आधार पर 4.8.1909 को खारिज हो गया । भारत के न्यायालयों का निर्णय है कि यह दावा कराना और वापस लेना भी उदित नारायण ने कपट करके कराया क्योंकि जिन व्यक्तियों को खुर्शीद ने अपना मुख्तारेआम बनाकर काम सौंपा वे उदित नारायण का कपट खुर्शीद जहां को 1928 में ज्ञात होने पर उसने 1931 में मुख्य न्यायालय की आरंभिक अधिकारिता में प्रस्तुत वाद दाखिल किया ।

7. इस वाद का विचारण न्यायमूर्ति नानावती के समक्ष मई, 1931 में प्रारंभ हुआ । वाद सं. 72 सन् 1901 की पूरी फाइल छापकर प्रस्तुत वाद में साक्ष्य के रूप में पढ़ी गई और इसी प्रकार का उपयोग वाद सं. 58 सन् 1906 की फाइल की सामग्री का किया गया । इस पर इस बोर्ड के समक्ष कुछ आपत्ति की गई है । जब वादी के (कुल 71) साक्षी और प्रतिवादी के 18 साक्षी हो गए तो विद्वान् मुख्य न्यायमूर्ति सर वजीर हसन ने 7.11.1932 को प्रशासनिक कारणों से (जिनका हमें ज्ञान नहीं है) निदेश दिया कि इस मामले की आगे सुनवाई उनके समक्ष हो । तत्पश्चात् प्रतिवादी के 16 और साक्षियों के बयान कराए गए और विद्वान् मुख्य न्यायाधीश ने अपना निर्णय 15.2.1933 को दिया । उन्होंने पूर्ववर्ती वाद सं. 72 सन् 1901 और वाद सं. 58 सन् 1906 के संबंध में उदित नारायण का कपट पाया । किंतु उनका निष्कर्ष था कि उदित नारायण राजा सर्वजीत सिंह का पुत्र था तथा राजा ने न इस्लाम धर्म ग्रहण किया था और न कादिर जहां से विवाह किया था और 1898 की वसीयत विधिमान्य नहीं है क्योंकि राजा का मस्तिष्क स्वस्थ व्ययन-सामर्थ्यवान नहीं था और वह कादिर जहां के असर में था । अपीली न्यायपीठ (मुख्य न्यायमूर्ति किंग तथा न्यायमूर्ति जियाउल हसन) ने इन निष्कर्षों की पुष्टि की (18.3.1936) ।

8. इन निष्कर्षों पर पहुंचने के पूर्व भारत के दोनों न्यायालयों ने राजा सर्वजीत सिंह के वैयक्तिक इतिहास से संबंधित वृहत् एवं परस्पर विरोधी साक्ष्य की परिश्रमपूर्वक समीक्षा की, जो हमारे विचार से सूक्ष्म और सही थी । यह सही है कि अनेक साक्षी ऐसे थे जिन्हें विद्वान् मुख्य न्यायाधीश ने नहीं देखा था । किंतु मामले के मूल में प्रश्न यह है कि यह राजपूत सरदार, जो एक स्त्री जाति का प्रधान, अवध का ताल्लुकेदार और एक बड़ी संपदा का स्वामी था, 1864 या उसके लगभग से (1899 में) अपनी मृत्यु तक मुसलमान था या हिन्दू । इस्लाम धर्म का खुल्लमखुल्ला ग्रहण और उसके बाद मुस्लिम महिला से विवाह करके उसकी प्रत्यक्ष घोषणा एवं अनुसरण के प्रति अपनाए गए दृष्टिकोण पर बहुत कुछ निर्भर करेगा । वह व्यापाक

लोक रुचि का मामला रहा होगा जो प्राधिकारियों की दृष्टि में विशेष महत्वपूर्ण और व्यापक प्रसिद्धि वाला रहा होगा । प्रांत के विद्वान् न्यायाधीशों के ऐसे विषय में राय की हल्के से उपेक्षा नहीं की जा सकती, विशेष तौर पर जब कि उनमें से दो स्वयं मुसलमान थे । विद्वान् न्यायाधीश यह जानने की विशेष तौर पर अनुकूल स्थिति में थे कि यदि राजा मुसलमान होता तो क्या उसने 1874 में हिन्दू धर्म पद्धति के संकल्प के साथ महंत को अनुदान दिया होता, या 1888 में महंत को उस प्रकार लिखा होता जैसे उसने लिखा, या प्रतिपाल्य अधिकरण को वैसे पत्र लिखे होते जैसे उसने 1891 और 1893 में लिखे ; क्या 1898 में साक्षी के रूप में उपस्थित होने पर उसने अपने को क्षत्री बताया होता ; क्या उसने कादिर जहां को 22.10.1884 के विलेख की भाषा में अपनी विधिपूर्ण पत्नी बताया होता ; क्या ईदगाह के एक शिलालेख की भाषा कल्पनाश्रित प्रशंसा की है या उसे कुछ सीमा तक तथ्यों का गंभीर कथन माना जाना चाहिए ; क्या 1872 के कथित विलेख में मेहर की शर्त (मेहर मुवज्जल 75,000/- रु. तथा मेहर मुवज्जल रामनगर धमेरी संपदा का आधा भाग) इन परिस्थितियों में विश्वसनीय है । इस मामले में इस बात के लिए प्रबल कारण हैं कि हम अपनी इस पद्धति से विचलन करने में संकोच करें (यद्यपि वह पद्धति न विधि का नियम है, न अनम्य नियम किंतु जो परमाधिकार के प्रयोग में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है) कि तथ्य-विषयक समान निष्कर्षों में हस्तक्षेप न किया जाए ।

9. वादी की ओर से श्री प्रिट का तर्क है कि प्रस्तुत मामले में उक्त नियम को मार्ग में नहीं आने देना चाहिए, तथा उन्होंने इस दृष्टि से अभिलेख की सावधानी से समीक्षा की है कि उससे सिद्ध होता है कि भारत के न्यायालयों ने अग्राह्य साक्ष्य पर कार्य किया तथा 1901 और 1906 के पूर्ववर्ती वादों में पेश किए गए साक्ष्य के प्रति उन्होंने गलत दृष्टिकोण अपनाया ।

10. पहला प्रश्न यह है कि क्या उन वादों में दिया गया साक्ष्य प्रस्तुत मामले में ग्राह्य भी था । हमारी राय में वादी के मुख्य अभिवक्ता श्री हसन हमाम द्वारा हस्ताक्षरित 13.2.1932 का बयान, जो उभयपक्ष के अधिवक्ताओं ने माना और न्यायालय ने 17.10.1932 के आदेश द्वारा अंगीकृत किया गया, इस करार को निर्विवाद बना देता है कि वाद सं. 72 सन् 1901 का साक्ष्य प्रस्तुत मामले में मूल साक्ष्य के रूप में पढ़ा जाना चाहिए । वाद सं. 58 सन् 1906 के साक्ष्य के विषय में करार उसी सावधानी से लेखबद्ध नहीं किया गया है किंतु मुख्य न्यायाधीश ने अपने

निर्णय में लिखा है कि वही करार उसे भी लागू होता है । वे ऐसी स्थिति में नहीं थे कि कहते कि न्यायमूर्ति नानावती के समक्ष सुनवाई के पूर्ववर्ती प्रक्रम पर क्या घटित हुआ, किंतु उन्होंने विचारण के अंत में बहस सुनी और वे इस प्रश्न पर भूल नहीं कर सकते थे कि वाद सं. 58 की समाग्री पर आपत्ति की गई अथवा वह परस्पर के ठहराव के आधार पर आपत्ति-रहित ढंग से उपयोग में लाई गई । किसी भी दृष्टि से देखें, जब विचारण न्यायाधीश ने उस सामग्री का उपयोग किया और वह यह कह कर कि वह इस वाद में साक्ष्य है तथा अपीली न्यायपीठ को अपील के ज्ञाप में इस विषय में कोई आपत्ति नहीं है और विद्वान् न्यायाधीश अपील में कहते हैं "नामांतरण के मामले तथा वादी के वाद सं. 58 सन् 1906 के वाद में पेश किया गया कुछ साक्ष्य इस वाद में भी साक्ष्य के रूप में पेश किया गया" । तो उन्हें यह ज्ञात होगा कि जिस सामग्री का वे हवाला दे रहे हैं वह आपत्ति के बिना प्रयोग में लाई गई है क्योंकि वह सामग्री बहस के समय उनके समक्ष थी । मामला सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 109 और 110 के अधीन हिज मैजेस्टी को अपील में ले जाए जाने के लिए उपयुक्त होने के प्रमाणपत्र की अर्जी में भी कोई आपत्ति नहीं की गई और उस आवेदन की सुनवाई के समय यह आपत्ति कि साक्ष्य अग्राह्य है अभिव्यक्त रूप से अन्य आधारों पर थी । इन कारणों से हम अब यह आपत्ति नहीं मान सकते और हमारा विचार है कि दोनों पूर्ववर्ती वादों का साक्ष्य पक्षकारों के बीच किए गए ठहराव के आधार पर उपलब्ध है ।

11. कुछ विशिष्ट दस्तावेजों की ग्राह्यता भी इस अपील में प्रश्नगत की गई है । मुख्य तर्क यह है कि भारत के न्यायालयों को चाहिए था कि पदाधिकारियों की कुछ रिपोर्टों और पत्राचार को न ग्रहण करते और न उसका आश्रय लेते क्योंकि ये दस्तावेजें साक्ष्य अधिनियम की धारा 35 में नहीं आती । इस प्रश्न पर कि ताल्लुकेदार ने इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया था या वह राजपूतों की एक जाति का सरकार था, हमारी स्पष्ट राय है कि यह साबित करना अनुमत और महत्वपूर्ण था कि इस धर्म-परिवर्तन की बात जिले के और स्थानीय अधिकारियों को अज्ञात थी और सरकारी प्रकाशनों में किसी बात से उसका संकेत नहीं मिलता । हम इसे अत्यधिक सुसंगत और महत्व का मानते हैं कि उसकी हिन्दू पत्नी रानी गुलाब कुंवर के आचरण और उक्तियों से यह ज्ञात किया जाए कि वह अपने को एक राजपूत सरदार की पत्नी मानती थीं या एक मुसलमान की । यह अवश्य है कि ये बातें साक्ष्य अधिनियम द्वारा अनुमत ढंग से साबित की जानी चाहिए और विद्वान् अभिवक्ता ने तीन प्रदर्शों की ग्राह्यता के विषय में विनिर्दिष्ट

तौर पर आपत्ति की है । वे हैं प्रदर्श ए-47, ए-49 और ए-265 । यदि यह सही भी माना जाए तो भी हम प्रस्तुत मामले में तथ्य विषयक समान निष्कर्षों को मानने से इनकार करने के लिए इसे पर्याप्त आधार नहीं समझते । निष्कर्षों के विषय में मामले का किसी भी उचित तौर पर पुनर्विलोकन पर यह नहीं समझा जा सकता कि वे इन दस्तावेजों पर आधारित या निर्भर हैं । ए-47, 8.7.1882 का एक पत्र है । यह प्रस्तुत वाद के विचारण के लगभग 50 वर्ष पहले का है । यह बाराबंकी के उपायुक्त के रूप में उस समय कार्य कर रहे मेजर हेस्टिंग्स ने लखनऊ के स्थानापन्न आयुक्त मेजर फोर्ब्स को लिखा था । उसका प्रयोजन यह कहने का था कि सर्वजीत सिंह की संपदा प्रतिपाल्य अधिकरण के नियंत्रण में ले ली जानी चाहिए तथा यह अनुरोध करने का था कि इस विषय में ले. गवर्नर और मुख्य आयुक्त के आदेश 1876 के अधिनियम सं. 17 की धारा 162 के खंड(ङ) के अधीन प्राप्त कर लिए जाएं । इस सिफारिश के कारणों के रूप में उसमें कहा गया है कि राजा मानसिक और शारीरिक दृष्टि से दुर्बल और लगभग अंध है और उस पर 7-8 लाख का ऋण है । उसमें आगे कहा गया है :–

> "यदि वह बरसाती ताल्लुकेदार होता तो मैं उसके विनाश पर कोई विशेष ध्यान नहीं देता, किंतु वह रैंकवार जाति का प्रमुख है और इस राज का अपना इतिहास है ।"

12. यह सही है कि जिस कार्य की सिफारिश की गई थी वह 1938 के पूर्व नहीं किया गया । हम सहमत हैं कि यह साक्ष्य अधिनियम की धारा 35 में निर्दिष्ट प्रकार की प्रविष्टि नहीं है । किंतु धर्म-परिवर्तन के प्रश्न पर इस दस्तावेज को धारा 32 की उपधारा (2) के अधीन अग्राह्य करना इस मामले की समग्र परिस्थितियों को देखते हुए कठिन होगा । वैसे हमारे विचार से इस पात्र की अग्राह्य करने का परिणाम अन्य साक्ष्य को देखते हुए नगण्य है । इसी प्रकार 1906 के वाद में दिया गया न्यायमूर्ति टडबाल का बयान हमारे विचार से, जैसा कि पहले बताया गया, ग्राह्य है । वे 1892 में बाराबंकी के उपायुक्त थे और उनके बयान में वही आधार पूर्णतः आ जाता है और वह उसी आशय का है । प्रदर्श ए-49 उपायुक्त द्वारा आयुक्त को लिखा गया दूसरा पत्र है । वह 1883 का है और लेखक मेजर नोबिल हैं । इसमें राजा की अंधता और ऋणिता का उल्लेख है और उन्हें बिगड़े बच्चे की भांति दुर्बल और सनकी कहा गया तथा उनके उदित नारायण को नकारने का भी उल्लेख है । यह प्रदर्श ए-47 से कम महत्व का है । उसे ग्रहण किया जाए या नहीं, इससे समान निष्कर्षों के प्रश्न पर

कोई प्रभाव नहीं पड़ता । प्रदर्श ए-265, 20.10.1893 का है । यह उपायुक्त द्वारा आयुक्त को भेजी गई एक रिपोर्ट है जो राजस्व बोर्ड ने राजा के उसकी संपदा छोड़ने के लिए 5.5.1893 की अर्जी के संबंध में मांगी थी । यह आपत्ति की गई कि मूल प्रति पेश न करके छपी प्रति पेश की गई । किंतु वादी ने इस रिपोर्ट के तारतम्य में लिखी गई 25.10.1893 की रिपोर्ट (प्रदर्श 43) पेश की और हमारे विचार से उससे उक्त दस्तावेज की ग्राह्यता की सभी कठिनाई समाप्त हो जाती है । हमारी राय में भारतीय न्यायालयों के समान निष्कर्षो में हस्तक्षेप इस आधार पर नहीं किया जा सकता कि वह अग्राह्य साक्ष्य पर आधारित है ।

13. न हमारा इस विषय में समाधान हुआ कि भारत के दो न्यायालयों में से किसी ने पूर्व वादों में पेश किए गए साक्ष्य के संबंध में कार्य करने में ढंग और सिद्धांत की कोई गलती की है । अपीलार्थियों के पक्षकथन में तथा विद्वान् अभिवक्ता द्वारा कहा गया कि इस साक्ष्य का आश्रय वादिनी तो ले सकती है किंतु प्रतिवादी नहीं ले सकते, क्योंकि यह सब उदित नारायण के कपटपूर्ण षड्यंत्र की उपज माना जाना चाहिए । हम इस तर्क को अमान्य करने में किसी कठिनाई का अनुभव नहीं करते । पूर्ववर्ती वादों में असंदिग्ध हैसियत और सम्मान वाले व्यक्ति साक्षियों के रूप में पेश हुए थे और यह साबित नहीं किया गया है कि वादी की ओर से वृत्तिक रूप से लगे सभी व्यक्ति (केदार और खुर्शीद) कपटपूर्वक आचरण कर रहे थे । निःसंदेह यदि प्रस्तुत मामले में न्यायालय ने अपने समक्ष पेश की गई दस्तावेजों और अन्य साक्ष्य को केवल इस आधार पर अग्राह्य कर दिया होता कि वे पूर्व वादों में पेश नहीं किए गए और किसी परिस्थिति पर आगे विचार नहीं किया होता तो उनका इस पर आधारित विनिश्चय आलोचना का विषय होता । किंतु हमारी राय में उनके निर्णय ऐसे किसी आरोप के लिए उचित तौर पर उच्छन्न नहीं हैं और हम उनके दृष्टिकोण से असंतुष्ट होने का कोई कारण नहीं पाते । हमारी राय में मुख्य न्यायालय ने एक कठिन और कुछ बातों में शोचनीय मामले पर विचार औचित्य और गंभीरता के साथ बड़े योग्यतापूर्ण निर्णयों में किया है और हमें उनके समान निष्कर्षों से विचलन के लिए कोई कारण नहीं मिला है ।

अपील खारिज की गई ।

अतिसुख लाल भाई दास और अन्य ..... अपीलार्थी

बनाम

नटवर लाल इच्छा राम देसाई ..... प्रत्यर्थी

20.7.1939

न्यायमूर्ति लार्ड रोमर, न्यायमूर्ति सर जार्ज रैंकिन और न्यायमूर्ति एम. आर. जयाकर

भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 – धारा 115 – जब प्रतिवादी वसीयत के अधीन या अन्यथा नियुक्त निष्पादक नहीं था तो उसके भ्रांतिवश अपने को एक-दो जगह निष्पादक लिख देने से वह निष्पादक नहीं हो जाएगा और न उस बात से इनकार करने से वह विबंधित होगा ।

प्रक्रिया – प्रिवी कौंसिल – प्रिवी कौंसिल निचले न्यायालय द्वारा सावधानी से परीक्षित हिसाब के विवरण में नहीं जाती, सिवाय उस दश के जब कि प्रकट किया जाए कि हिसाब के किसी मान्यताप्राप्त सिद्धांत की या विधि के नियम की उपेक्षा की गई है ।

जो प्रश्न निचले न्यायालय में नहीं उठाया गया वह पहली बार प्रिवी कौंसिल में सामान्यतः अनुमत नहीं होगा ।

वसीयत – निष्पादक – जो व्यक्ति निष्पादक के रूप में कभी नियुक्त नहीं किया गया किंतु केवल निष्पादक के मार्गदर्शन में कार्य करता रहा वह उस राशि के अतिरिक्त किसी राशि के हिसाब का देनदार नहीं होगा जो उसने वस्तुतः प्राप्त की – उसके द्वारा निष्पादक को की गई अदायगी यथाविधि मानी जाएगी ।

सूरत का एक बनिया अपनी मृत्यु की तारीख 25.3.1908 तक बंबई में रहता था । उसकी एक पत्नी और एक पुत्री थी । उसने एक वसीयत लिखी जिसके द्वारा उसने अपनी पत्नी और अपने दो मित्रों को निष्पादक नियुक्त किए ।अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – 24.5.1923 को प्रतिवादी ने उक्त जाति के प्रतिनिधियों से पत्र व्यवहार प्रारंभ किया जिसमें उसने एक समय पर इस बात की रजामंदी व्यक्त की कि वह वसीयत वाले 1,000/- रु. उसे दे देगा । किंतु अंत में उसने वैसा नहीं किया । तब जाति ने सूरत में 19.4.1926 को एक प्रतिनिधि वाद प्रतिवादी के विरुद्ध दाखिल किया कि उक्त वसीयत के दावे

का प्रवर्तन कराया जाए । उक्त पत्र व्यवहार और कार्यवाही का आश्रय उक्त वाद में अपीलार्थी ने निचले न्यायालयों में विबंध के रूप में लिया, जो कि प्रतिवादी को इस बात से इनकार करने से रोकता था कि वह प्रस्तुत वाद के प्रयोजनार्थ लाल भाई की वसीयत का निष्पादक था । समर्थन में यह परिस्थिति बताई गई । (1) उस पत्र व्यवहार के भागभूत एक पत्र में उसने अपने को ऐसा निष्पादक बताया था और जाति के एक संकल्प पर भी उसी वर्णन के साथ हस्ताक्षर किए थे तथा (2) उक्त वाद के अपने लिखित कथन में उसने निष्पादक होने से इनकार नहीं किया था यद्यपि वादपत्र में उसे निष्पादक कहा गया था । किंतु विबंध के इस तर्क पर हमारे समक्ष जोर नहीं दिया गया और उक्त पत्र व्यवहार और कार्यवाही के अधिक विस्तार में जाने की आवश्यकता नहीं है । प्रतिवादी का अपने को निष्पादक बताना प्रत्यक्षतः एक गलत वर्णन था, जैसा कि प्रस्तुत वाद में अपने बयान में उसने स्पष्ट किया है कि वह अपनी विधिक स्थिति विषयक भ्रांति के कारण उत्पन्न हुआ और जो उसने बाद में समझा । लाल भाई ने उसे अपनी वसीयत में अभिव्यक्त या विवक्षित रूप से निष्पादक नियुक्त नहीं किया था और अपनी स्थिति का प्रतिवादी द्वारा गलत वर्णन उसे न निष्पादक बना देगा और न उसके विरुद्ध विबंध लागू करेगा । 1,000/- रु. की वसीयत का वाद अंत में प्रतिवादी के विरुद्ध ब्याज और खर्चे सहित डिक्री हो गया । हमारा ध्यान उन मदों की सूची की ओर आकर्षित किया गया जो कमिश्नर ने अनुमत कीं और कहा यह गया कि अधीनस्थ न्यायाधीश और उच्च न्यायालय ने उन्हें गलत तौर पर नामंजूर कर दिया । यह इस बोर्ड की पद्धति नहीं है कि उस हिसाब के विवरणों की सूक्ष्म परीक्षा करें जिसकी निचले न्यायालय ने सावधानी से परीक्षा कर ली है, सिवाय उस दशा के जब कि हिसाब को कोई मान्यताप्राप्त सिद्धांत या विधि के किसी नियम का उल्लंघन किया गया हो । उच्च न्यायालय ने इस मामले में विभिन्न मदों की परीक्षा सावधानी से की है और उनसे मतभेद के लिए हम कोई कारण नहीं पाते । (पैरा 3 और 13)

अपीली सिविल अधिकारिता : 1938 की अपील सं. 59.

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री सर थामस स्ट्रांगमैन और टी. बी. डब्ल्यू. रामसेद

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री डब्ल्यू वालच

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एम. आर. जयाकर ने दिया ।

न्या. जयाकर – यह अपील बंबई उच्च न्यायालय की अपीली

अधिकारिता में दिए गए 27.9.1935 के एक निर्णय और डिक्री के विरुद्ध है । उन्होंने सूरत के संयुक्त प्रथम वर्ग अधीनस्थ न्यायाधीश की 1.7.1929 की डिक्री उलट दी है । जिस वाद से यह अपील उत्पन्न हुई तत्संबंधी तथ्य इस प्रकार है : लाल भाई गुलाब दास सूरत का विस मोध गोबुज बनिया जाति का था, जो 25.3.1908 को अपनी मृत्यु पर्यन्त बंबई में रहा । उसने एक विधवा गंगाबाई और एक पुत्री चन्द्रभागा छोड़ी । उसने 19.3.1908 की एक वसीयत भी छोड़ी जिसके द्वारा उसने गंगाबाई तथा अपने दो मित्रों मगनलाल मोदी तथा इच्छा राम देसाई (जो प्रतिवादी का पिता था) को निष्पादक नियुक्त किया । कुछ अन्य वसीयतों की व्यवस्था करने के बाद शेष के संबंध में उसमें यह व्यवस्था थी :–

> "शेष बचने वाली राशि हमारे निष्पादक हमारी पत्नी के जीवनकाल के लिए सारवान् प्रतिभूतियों में विनियोजित कर देंगे और उससे मिलने वाले ब्याज से तथा उसे पेंशन से जिसका मैंने अपनी पत्नी के लिए इंतजाम किया है मेरी पत्नी बंबई में रहती हुई अपना सम्मानजनक ढंग से भरणपोषण करेगी ।"

2. तत्पश्चात् कुछ व्यवस्थाएं उसके जीवनकाल में तथा उसकी मृत्यु के संबंध में खर्चे के विषय में थी । उक्त मृत्यु के बाद के अतिशेष में से अनेक वसीयतें की गई थीं जिनमें कि 1,000/- रु. की वसीयत सूरत की अपनी उक्त जाति के लिए थी कि वे उसके नाम से उत्सव मनाएं । अंतिम अतिशेष भी उक्त जाति को दिया गया जिसे वे सूरत में उस जाति के बालकों की शिक्षा के प्रोत्साहनार्थ न्यास के रूप में रखें । लाल भाई ने जो संपत्ति छोड़ी उसमें आभूषण और शेयर भी थे और कुछ राशियां थीं जो उसकी मृत्यु के समय बंबई के गुजराती प्रिंटिंग प्रेस नामक एक छापाखाने में जमा थीं । उस प्रेस का स्वामी इच्छा राम था । लाल भाई की मृत्यु के बाद ये राशियां उक्त छापाखाने में जमा रहीं । 5.12.1912 को इच्छा राम की मृत्यु हो गई । उसने चार पुत्र छोड़े जिनमें एक प्रतिवादी है । वे ही छापाखाने के स्वामी हुए । 1924 में ज्येष्ठ पुत्र कारबार से निवृत्त हो गया जो तत्पश्चात् उसके तीन भाइयों ने चलाया । 31.3.1921 को गंगाबाई की मृत्यु हो गई ।

3. 24.5.1923 को प्रतिवादी ने उक्त जाति के प्रतिनिधियों से पत्र व्यवहार प्रारंभ किया जिसमें उसने एक समय पर इस बात की रजामंदी व्यक्त की कि वह वसीयत वाले 1,000/- रु. उसे दे देगा । किंतु अंत में उसने वैसा नहीं किया । तब जाति ने सूरत में 19.4.1926 को एक

प्रतिनिधि वाद प्रतिवादी के विरुद्ध दाखिल किया कि उक्त वसीयत के दावे का प्रवर्तन कराया जाए । उक्त पत्र व्यवहार और कार्यवाही का आश्रय उक्त वाद में अपीलार्थी ने निचले न्यायालयों में विबंध के रूप में लिया, जो कि प्रतिवादी को इस बात से इनकार करने से रोकता था कि वह प्रस्तुत वाद के प्रयोजनार्थ लाल भाई की वसीयत का निष्पादक था । समर्थन में यह परिस्थिति बताई गई । (1) उस पत्र व्यवहार के भागभूत एक पत्र में उसने अपने को ऐसा निष्पादक बताया था और जाति के एक संकल्प पर भी उसी वर्णन के साथ हस्ताक्षर किए थे तथा (2) उक्त वाद के अपने लिखित कथन में उसने निष्पादक होने से इनकार नहीं किया था यद्यपि वादपत्र में उसे निष्पादक कहा गया था । किंतु विबंध के इस तर्क पर हमारे समक्ष जोर नहीं दिया गया और उक्त पत्र व्यवहार और कार्यवाही के अधिक विस्तार में जाने की आवश्यकता नहीं है । प्रतिवादी का अपने को निष्पादक बताना प्रत्यक्षतः एक गलत वर्णन था, जैसा कि प्रस्तुत वाद में अपने बयान में उसने स्पष्ट किया है कि वह अपनी विधिक स्थिति विषयक भ्रांति के कारण उत्पन्न हुआ और जो उसने बाद में समझा । लाल भाई ने उसे अपनी वसीयत में अभिव्यक्त या विवक्षित रूप से निष्पादक नियुक्त नहीं किया था और अपनी स्थिति का प्रतिवादी द्वारा गलत वर्णन उसे न निष्पादक बना देगा और न उसके विरुद्ध विबंध लागू करेगा । 1,000/- रु. की वसीयत का वाद अंत में प्रतिवादी के विरुद्ध ब्याज और खर्चे सहित डिक्री हो गया ।

4. लाल भाई की वसीयत के उत्तरजीवी निष्पादक मगनलाल मोदी का देहावसान 13.8.1926 को हो गया । 20.9.1926 को जाति ने प्रतिवादी नोटिस देकर उससे लाल भाई का निष्पादक होने के नाते दावा किया कि वसीयत का अंतिम अतिशेष उन्हें दे और उन्होंने हिसाब के निरीक्षण और लाल भाई की संपदा के प्रशासन की भी मांग की । प्रतिवादी के वह मांग पूरी न करने पर तथा निष्पादक के रूप में अपने दायित्व से इनकार करने पर जाति ने अपने प्रतिनिधि के माध्यम से यह वाद 19.10.1926 को दाखिल किया । वादपत्र का पैरा इस प्रकार था :–

> "मूल वसीयत को देखने पर प्रकट होता है कि प्रतिवादी वसीयत के अधीन नियुक्त निष्पादक नहीं है यद्यपि उसका पिता निष्पादकों में से एक था ; किंतु प्रतिवादी ने निष्पादक के रूप में कार्य किया है और यह स्वीकार किया है कि हिसाब उसके पास है और उसने संपदा में अंतःक्षेप किया और उसके विषय में कार्य किया । उसने उस रूप में कार्य भी किया । अतः अब वह अपने उस दायित्व से

इनकार करने से विबंधित है और अपने कार्यों द्वारा उस पर दायित्व है कि वह दिवंगत लाल भाई की संपदाओं का हिसाब दे ।"

5. अपने लिखित कथन में प्रतिवादी ने निष्पादक के रूप में हिसाब देने के दायित्व से इनकार किया और कहा कि मगनलाल की मृत्यु के पूर्व उसने कार्य उसके निदेशानुसार किया था और उसका मात्र अभिकर्ता था और अधिक से अधिक वह अपकृत्येन निष्पादक (executor des on tort) था और उस नाते वह केवल उन आस्तियों की मात्रा तक दायित्वाधीन था जो उसके हाथों में आई, न कि पूरा हिसाब देने का, और न जानबूझकर अपनी किसी चूक के आधार पर ; उसने मगनलाल के साथ में लाल भाई की न्यास संपदा का अंतिम हिसाब तैयार किया था और उस हिसाब के अंत में उस संपदा से प्रतिवादी को 962/- रु. 10 आ. 5 पा. देय थे तथा वादियों को उनके अवशिष्टीय वसीयतदार होने के नाते कुछ भी देय नहीं है । वे राशियां प्रकट करने वाली विशिष्टियां जो उसके हाथों में आई थीं और उनका किस प्रकार विवरण किया गया, जिससे कि 962/- रु. 10 आ. 5 पा. उसे देय बचे, यह उस विवरण में दिया हुआ था जो प्रतिवादी ने उपर्युक्त नोटिस के उत्तर में प्लीडर के माध्यम से भेजा था । वाद में दो विवाद्यक बनाए गए :–

(1) क्या लाल भाई की संपदा के हिसाब के अंत में कोई राशि अवशिष्टीय वसीयतदारों के रूप में वादियों को देय बची और यदि बची तो कितनी ?

(2) क्या डिक्री पारित की जानी चाहिए ?

6. कुछ प्रारंभिक कार्यवाही हो जाने के बाद अधीनस्थ न्यायाधीश ने 17.1.1928 को एक प्रारंभिक डिक्री पारित करके निम्नलिखित हिसाब दिए जाने का निदेश दिया :–

"(1) दिवंगत लाल भाई की उस संपत्ति का हिसाब जो निष्पादकों के हाथों में आई ; (2) निष्पादकों द्वारा प्राप्त आय का हिसाब ; (3) उन राशियों का हिसाब जिनके विषय में वह विवाद है कि वे उचित तौर पर खर्च नहीं की गईं ; (4) उक्त लाल भाई की संपत्ति और आय में से प्रतिवादी के पास जो बचा या जो बचना चाहिए था, उसका हिसाब ।"

7. अधीनस्थ न्यायाधीश ने उक्त हिसाब लेने के लिए एक कमिश्नर भी नियुक्त किया । यह ध्यान देने योग्य है कि प्रतिवादी ने इस डिक्री के

विरुद्ध अपील नहीं की । कमिश्नर ने हिसाब लेने की कार्रवाई की । प्रतिवादी संपदा के हिसाब के रूप में एक बही (प्रदर्श 11/7) लाया, जिसके बारे में उसने कहा कि वह उसे मगनलाल से उसकी मृत्यु के एक मास पूर्व मिली थी । इस बही में लाल भाई की संपदा और गुजराती छापाखाना के बीच वर्ष 1908-26 के व्यवहार का विवरण था, और उसमें प्रतिवादी के पक्ष में 962/- रु. 10 आ. 5 पा. का अतिशेष दिखाया गया है । वादियों ने इस हिसाब पर आपत्तियां दाखिल कीं, जिनमें कुछ अधिक खर्चे की थीं । वादियों ने उसका स्पष्टीकरण दाखिल किया । साक्ष्य लिखने के बाद कमिश्नर ने निष्कर्ष निकाला कि मामले के तथ्यों से प्रतिवादी लाल भाई की वसीयत का निष्पादक ठहराया जाना चाहिए और उस आधार पर कमिश्नर ने पाया कि ब्याज छोड़कर 13,492/- रु. 8 पा. की राशि प्रतिवादी द्वारा वादियों को देय है । प्रत्येक पक्ष ने इस रिपोर्ट पर आपत्ति दाखिल की और अंत में अधीनस्थ न्यायाधीश ने 23.3.1928 को अंतिम सुनवाई के बाद निर्णय किया कि क्योंकि प्रतिवादी ने प्रारंभिक डिक्री के विरुद्ध अपील नहीं की है, अतः केवल यह देखना शेष रहा कि क्या कमिश्नर द्वारा तैयार किया गया हिसाब उक्त डिक्री के निदेशों के अनुसार है । जहां तक प्रतिवादी के निष्पादक के रूप में हिसाब देने का दायित्व है उनके निर्णय से यह स्पष्ट नहीं है कि वह प्रतिवादी को वसीयत के आशय के अनुसार निष्पादक ठहराते हैं या अपकृत्येन निष्पादक । आपत्तिकृत अनेक मदों की परीक्षा करने के बाद न्यायाधीश ने प्रतिवादी को आदेश दिया कि वादियों को 9,124/- रु. 11 आ. 3 पा., वाद का खर्चा तथा वाद की तारीख से 5,349/- रु. 14 आ. 3 पा. पर 6 प्रतिशत की दर से ब्याज अदा करे ।

8. प्रतिवादी ने उच्च नयायालय में अपील की और वादियों ने प्रत्यापत्ति दाखिल की । 27.9.1935 को न्यायमूर्ति बार्ली ने यह निर्णय किया कि यह अधिसंभाव्य है कि गंगाबाई की मृत्यु के बाद संपदा का प्रबंध इच्छा राम और उसके घर वाले करते थे, किंतु इच्छा राम की मृत्यु के बाद कुटुंब द्वारा प्रबंध प्रतिवादियों द्वारा निष्पादक की हैसियत से प्रबंध न था और न समझा जा सकता था, बल्कि वह छापाखाने के प्रबंधक की हैसियत से था ; प्रतिवादी का अपना वर्णन निष्पादक के रूप में करने से विबंध लागू नहीं होता और उसने अपने को निष्पादक के रूप में करने से विबंध लागू नहीं होता और उसने अपने को निष्पादक कहने का स्पष्टीकरण यह दिया कि वह वास्तव में निष्पादक के रूप में कार्य कर रहा था, और यदि अधीनस्थ न्यायाधीश का यह निष्कर्ष निकालने का आशय था कि प्रतिवादी

वसीयत के आशय के अनुसार निष्पादक था तो वह निष्कर्ष गलत था ; प्रारंभिक डिक्री में इस प्रश्न का सीधा विनिश्चय नहीं किया गया ; पहले तीन निदेश निष्पादक से हिसाब लेने के लिए उपयुक्त थे और उनसे यह संकेत मिल सकता है कि अधीनस्थ न्यायाधीश की राय में प्रतिवादी निष्पादक के रूप में हिसाब का देनदार है, किंतु उस प्रश्न का विनिश्चय नहीं किया गया और यदि विनिश्चय किया गया तो वह दूसरी दिशा में था ; इस प्रश्न पर कोई विवाद्यक नहीं था ; एकमात्र विवाद्यक यह था कि लाल भाई की संपदा के हिसाब के अंत में क्या कोई अतिशेष वादियों को अवशिष्टीय वसीयतदार के रूप में देय बचा और यदि बचा तो कितना । उन्होंने यह भी निर्णय किया कि यदि अधीनस्थ न्यायाधीश का आशय प्रतिवादी को अपकृत्येन निष्पादक के रूप में दायित्वाधीन ठहराने का था तो प्रतिवादी को अपकृत्येन निष्पादक के रूप में दायित्वाधीन ठहराने का था तो प्रतिवादी के विरुद्ध डिक्रीत राशि की उनकी डिक्री गलत थी । अपकृत्येन निष्पादक उन्हीं राशियों का देनदार होता है जो उसने प्राप्त कीं और जिनका उसने हिसाब नहीं दिया (धारा 304, उत्तराधिकार अधिनियम) ; प्रतिवादी गंगाबाई को, जो साधिकार निष्पादक थी, की गई सभी अदायगियां मुजरा कराने का हकदार था । वह उन राशियों का देनदार नहीं है जो गंगाबाई ने ब्याज से अधिक प्राप्त की या अपने उपयोग में लीं । वादियों द्वारा अतिरिक्त बताई गई राशियों के विषय में विद्वान् न्यायाधीश का निष्कर्ष था कि यह साबित नहीं किया गया है कि प्रतिवादी ने वादियों द्वारा बताई गई 6,000/- रु. और 2,000/- रु. की राशियां प्राप्त कीं ; प्रतिवादी की ओर से कोई बेईमानी नहीं थी और उस पर वाद करना सही नहीं था, जो लाल भाई की मृत्यु के समय केवल एक बालक था और जिसका संपदा से संबंध छापाखाने के आंशिक स्वामी के रूप में था ।

9. इन आधारों पर उच्च न्यायालय ने निर्णय किया कि प्रारंभिक डिक्री के खंड 4 के निदेशानुसार हिसाब लेने पर वादियों को प्रतिवादी द्वारा कुछ भी देय नहीं है । उन्होंने अपील मंजूर करके वाद पूरी कार्यवाही के खर्चे सहित खारिज कर दिया । इसी के विरुद्ध अपील सपरिषद् हिज मैजेस्टी को की गई है । प्रतिवादी की इस विषय में आस्थिति कि वह वसीयत के आशय के अनुसार निष्पादक था या अपकृत्येन निष्पादक था, हमें महत्वपूर्ण नहीं लगता । यह इस बात को देखते हुए है कि प्रारंभिक डिक्री के खंड 4 ने कुछ हिसाब लिए जाने का निदेश दिया गया और प्रतिवादी के उसके विरुद्ध अपील न करने के कारण वह निदेश उस पर आबद्धकर है और हिसाब उस में दिए गए निदेशों के अनुसार लिया जाना है ।

इस दृष्टि से उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 303 और 304 के उपबंधों के संदर्भ में, प्रतिवादी की आस्थिति के प्रश्न का विनिश्चय आवश्यक नहीं है । हम प्रारंभिक डिक्री तथा उसके अधीन प्रतिवादी के दायित्व के विषय में उच्च न्यायालय के दृष्टिकोण से सहमत हैं । डिक्री के खंड 1 से 3 तक हमें यह निदेश देने के लिए आशयित प्रतीत नहीं होते कि प्रतिवादी वसीयत के निष्पादक के रूप में हिसाब का देनदार है । ये खंड दृश्यतः अधीनस्थ न्यायाधीश द्वारा बनाए गए विवाद्यक सं. 1 के निष्कर्षों के रूप में हैं और उनका संबंध प्रतिवादी या उसकी हिसाब की देनदारी से नहीं है । डिक्री का यह भाग हमें दुर्बोध लगता है । यदि वह उन व्यक्तियों के लिए निदेश के रूप में आशयित था जो वसीयत के निष्पादक थे और जिन्होंने उस रूप में कार्य किया तो यह दृष्टव्य है कि अधीनस्थ न्यायाधीश के समक्ष उनका प्रतिनिधित्व नहीं था । इसी प्रकार से उस न्यायालय के समक्ष कोई हिसाब नहीं था जो यह प्रकट करता कि प्रतिवादी ने लाल भाई की संपदा से क्या राशियां प्राप्त और वितरित कीं । जो बही कमिश्नर से समक्ष थी वह लाल भाई की संपदा और गुजराती छापाखाने के बीच व्यवहारों के संबंध में थी । उक्त छापाखाने ने बराबर उसके बैंककार के रूप में कार्य किया प्रतीत होता है । इस बही में न तो वह तारीख बताई गई है जब से प्रतिवादी ने प्रबंध करना प्रारंभ किया और न वह राशि बताई गई जो उसके प्रबंध के प्रारंभ में उसके हाथ में आई ।

10. अधीनस्थ न्यायाधीश के निर्णय के कुछ अंशों से प्रकट होता है कि उनका निष्कर्ष यह था कि प्रतिवादी द्वारा देय राशि वस्तुतः छापाखाना द्वारा देय थी और प्रतिवादी ने जो वितरण किया वह छापाखाने के प्रबंधक और लाल भाई की संपदा के बैंककार के रूप में किया । मामले को इस दृष्टि से देखने पर यह निष्कर्ष निकालना कठिन है कि प्रेस के भागीदार या प्रबंधक की हैसियत से उसके द्वारा की गई अप्राधिकृत अदायगी उसे अपकृत्येन निष्पादक के रूप में देनदार बना देगी । अपनी मुख्य परीक्षा में प्रतिवादी ने जो बयान दिया वह हमें इसका स्पष्ट और बोधगम्य विवरण लगता है कि लाल भाई की मृत्यु के बाद उसकी संपदा का प्रबंध किस प्रकार किया गया । उसने कहा :–

> "इन तीनों व्यक्तियों (निष्पादकों) ने 1912 तक संयुक्त रूप से प्रबंध किया । उस वर्ष 5 दिसंबर को इच्छा राम की मृत्यु हो गई । तत्पश्चात् प्रबंध निष्पादकगण गंगाबाई और मगनलाल मोदी चलाते रहे । उन्होंने प्रबंध 30.3.1921 तक किया । फिर गंगाबाई की मृत्यु के बाद अकेले मगनलाल प्रबंध करते रहे । मरने वाले निष्पादकों के स्थान पर

दूसरे निष्पादकों की नियुक्ति नहीं की गई । मगनलाल मोदी की मृत्यु 13.7.1926 को हो गई । उस तारीख तक उन्होंने निष्पादक के रूप में कार्य किया । मगनलाल अपने अंतिम 2 या 3 वर्षो में बीमार रहे और मृत्यु के एक वर्ष पहले से वह गंभीर रूप से बीमार थे । इस दौरान मैं मगनलाल के आदेश के अनुसार वसीयत के निष्पादक के रूप में कार्य करता था । मैं मगनलाल के अभिकर्ता के रूप में कार्य करता था । उनकी मृत्यु के बाद मैं बचा हुआ काम मगनलाल द्वारा मुझे दिए गए अनुदेशों के अनुसार पूरा करता रहा । जो अदायगियां मैंने कीं और जो प्रबंध मैंने किया वह मैंने उनके कहे अनुसार किया । मुझे यह बही (प्रदर्श 11/7) मगनलाल की मृत्यु के एक मास पूर्व मिली । यह बही मुझे मगनलाल ने दी थी ।"

11. इस साक्षी की जिरह में ऐसा कुछ नहीं है जो उसके प्रबंध विषयक वर्णन को संदिग्ध करे और न वादी द्वारा बुलाए गए दोनों साक्षियों उच्छव लाल और मगनलाल के ही बयानों का वैसा प्रभाव है । एकमात्र लेखा जो हमारे समक्ष है और जिसके विषय में कहा जा सकता है कि वह प्रतिवादी के दावे के विषय में महत्वपूर्ण है, वह है जो प्रतिवादी ने अपने प्लीडर के माध्यम से 22.10.1926 को भेजा और उसमें उसने अपने को 962/- रु. 10 आ. 5 पा. देय दिखाए । उसका शीर्षक है "प्रतिवादी नटवर लाल के हाथों खर्च की गई राशियों का विवरण" । जमा खाते में कुल प्राप्तियां हैं जिनमें 3 राशियां हैं 500/- रु., 4,600/- रु. और 19 रु. 10 आ. 4 पा. जो प्रतिवादी ने दिसंबर, 1923 में विभिन्न तारीखों को प्राप्त कीं और जिनका योग उस वर्ष के अंत में 5,119/- रु. 10 आ. 4 पा. होता है ।

12. इन मदों की संपुष्टि छापाखाने के हिसाब (प्रदर्श 11/7) की प्रविष्टियों से होती है जिसमें वे प्रेस द्वारा प्रतिवादी को उन तारीखों को की गई अदायगियों के रूप में दिखाई गई हैं । ये प्रतिवादी के हिसाब से मेल खाती हैं । प्रतिवादी इन राशियों की प्राप्ति स्वीकार करता है । वर्ष 1924-25-26 में ब्याज की राशियां जमा की गई हैं और 1926 के अंत तक उसके द्वारा प्राप्त कुल राशि 5,884/- रु. 10 आ. 4 पा. थी । इस हिसाब के नामे खाते में वे राशियां दिखाई गई हैं जो प्रतिवादी ने व्यय की और जिनका योग 6,847/- रु. 4 आ. 5 पा. होता है और इस प्रकार प्रतिवादी को 962/- रु. 10 आ. 5 पा. देय बचते हैं । उच्च न्यायालय ने प्रतिवादी का हिसाब माना है । उसका निष्कर्ष है कि प्रतिवादी का कथानक सारतः सत्य है और उसकी ओर से कोई बेईमानी नहीं है । हम उच्च न्यायालय के मत से असहमत होने के लिए कोई कारण नहीं पाते ।

13. हमारा ध्यान उन मदों की सूची की ओर आकर्षित किया गया जो कमिश्नर ने अनुमत कीं और कहा यह गया कि अधीनस्थ न्यायाधीश और उच्च न्यायालय ने उन्हें गलत तौर पर नामंजूर कर दिया । यह इस बोर्ड की पद्धति नहीं है कि उस हिसाब के विवरणों की सूक्ष्म परीक्षा करें जिसकी निचले न्यायालय ने सावधानी से परीक्षा कर ली है, सिवाय उस दशा के जब कि हिसाब को कोई मान्यताप्राप्त सिद्धांत या विधि के किसी नियम का उल्लंघन किया गया हो । उच्च न्यायालय ने इस मामले में विभिन्न मदों की परीक्षा सावधानी से की है और उनसे मतभेद के लिए हम कोई कारण नहीं पाते ।

14. हमारे समक्ष अपीलार्थी के अभिवक्ता ने विभिन्न मदों के गुणागुण पर सावधानी से और विस्तृत बहस की । किंतु उनमें से हमें बहुत-सी ऐसी लगती हैं कि उनके बारे में प्रतिवादी को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है । उनमें से कुछ अदायगियां गंगाबाई को या उसके जीवनकाल में की गई । वह वसीयत की निष्पादक थी, हिसाब देखा करती थी, और 12.7.1919 को उसने उनका सही होना स्वीकार किया । अन्य मदें उत्तरजीवी निष्पादक मगनलाल के जीवनकाल में की गई अदायगियां हैं । अपीलार्थी के अभिवक्ता ने अपनी बहस के दौरान एक समय पर प्रयास किया कि प्रतिवादी पर लाल भाई की संपदा के आन्वयिक न्यासी का दायित्व डालें । हम यह तर्क नहीं मान सकते । यह वादियों के वादपत्र के कथन के विपरीत है और इस कार्यवाही के किसी भी पूर्वतर प्रक्रम पर नहीं किया गया । इससे वादी की स्थिति में सुधार भी नहीं होगा क्योंकि आन्वयिक न्यासी के रूप में भी प्रतिवादी उन राशियों के अतिरिक्त देनदार नहीं होगा जो उसके द्वारा प्राप्त साबित की जाएं ।

15. जिन अनेक मदों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया गया उनमें से प्रतिवादी से आदेश राशियां है 203/- रु. 5 पा. व 75 रु. - 75 रु. की दो राशियां । यह उस खर्चे के संबंध में है जो जाति द्वारा 1,000/- रु. की वसीयत की वसूली के लिए दाखिल किए गए वाद में प्रतिवादी की असफल प्रतिरक्षा में हुआ । इसी प्रकार से सूरत शिक्षा पूर्त को दी गई 1,000/- रु. की राशि तथा लाल भाई की पौत्रों के विवाह के अवसर पर उपहार दी गई 5,000/- रु. की राशि अप्राधिकृत अदायगियां होने के कारण उचित रूप से प्रतिवादी से प्राप्त की जा सकती हैं । किंतु प्रतिवादी के हिसाब से, जिसका कि उल्लेख किया जा चुका है, यह स्पष्ट है कि ये राशियां नामे डाली गई और मुजरा कर दी गई और इस प्रकार लाल भाई की संपदा द्वारा प्रतिवादी को देय अतिशेष 962/- रु. 10 आ. 5 पा. बचा ।

हम उच्च न्यायालय के मत से सहमत हैं और हमारी राय है कि उनकी डिक्री की पुष्टि की जाए और यह अपील खारिज की जाए । अपीलार्थी प्रत्यर्थी का इस अपील का खर्चा अदा करें । हिज मैजेस्टी को हमारी विनम्र सलाह तद्नुसार है ।

अपील खारिज की गई ।

बाबू भगवानदीन और अन्य ..... अपीलार्थी

बनाम

गिर हर स्वरूप और अन्य ..... प्रत्यर्थी

10.10.1939

न्यायमूर्ति लार्ड मेकमिलन, न्यायमूर्ति सर जार्ज रैंकिन और न्यायमूर्ति एम. आर. जयाकर

पूर्त और धार्मिक न्यास अधिनियम, 1930 – धारा 3 और 6 – इस अधिनियम के अधीन जिला न्यायाधीश के निर्णय से धारा 12 के वर्जन के कारण कोई अपील नहीं हो सकती – वह संक्षिप्त कार्यवाही में किया गया निर्णय होता है वह कार्यवाही न वाद है और न वाद की प्रकृति की है – अधिनियम के किसी उपबंध में उसे अंतिम नहीं बनाया गया है – अतः प्राङ् न्याय का सिद्धांत उसके आधार पर लागू नहीं होता – वह व्यक्ति भी तत्पश्चात् नियमित वाद करने से वंचित नहीं, जो अधिनियम के अधीन कार्यवाही में पक्षकार था ।

धार्मिक विन्यास – जहां मंदिर का अनुदान किसी व्यक्ति और उसके वारिसों को शाश्वत रूप से किया गया हो, वहां वह हिन्दू धार्मिक प्रयोजनार्थ न्यास नहीं माना जा सकता ।

मात्र यह तथ्य कि जनता मुक्त रूप से मंदिर में आने दी जाती है, मंदिर को सार्वजनिक मंदिर साबित करने के लिए पर्याप्त नहीं – वह सार्वजनिक मंदिर तभी होगा जब जनता वहां साधिकार जाए व मंदिर वाले उसे आने देने को आबद्ध हों ।

यह अपील में विचारार्थ प्रश्न यह है कि क्या पूर्त और धार्मिक न्यास अधिनियम, 1920 के अधीन किया गया जिला न्यायाधीश का आदेश

प्रत्यर्थियों को उस पर विवाद करने से रोकता है कि मंदिर धार्मिक लोक न्यास की विषयवस्तु है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – पहला प्रश्न यह है कि क्या पूर्त और धार्मिक न्यास अधिनियम, 1920 के अधीन किया गया जिला न्यायाधीश का आदेश प्रत्यर्थियों को उस पर विवाद करने से रोकता है कि मंदिर धार्मिक लोक न्यास की विषयवस्तु है । जिला न्यायाधीश का वह आदेश कुटुंब के केवल पांच सदस्यों की उपस्थिति में किया गया और यह नहीं दिखाया गया है कि प्रतिनिधित्व के किस सिद्धांत के अनुसार दूसरे सदस्य उससे आबद्ध हैं । अतः, यह निष्कर्ष निकालना कठिन है कि कैसे ये अन्य सदस्य यह दावा करने से रोके जा सकते हैं कि संपत्ति उनके संयुक्त कुटुंब की है । मुख्य न्यायालय ने जिला न्यायाधीश के आदेश को निश्चायक मानने से इनकार अन्य कारणों से भी किया है । इस बारे में उन्होंने प्रेमनाथ बनाम हर राम में लाहौर उच्च न्यायालय के खंड न्यायपीठ के निर्णय का तथा हैदर अली गुलाम अली बनाम गुलाम मोहिउद्दीन में बंबई उच्च न्यायालय के एकल न्यायमूर्ति के निर्णय का अनुसरण किया और वे महादेव भारती बनाम महादेव राव में न्यायमूर्ति मुखर्जी की राय की अपेक्षा न्यायमूर्ति नियामतुल्ला की राय से सहमत हुए । हम मुख्य न्यायालय से सहमत हैं । हम विनिश्चय करते हैं कि 1920 के अधिनियम के अधीन जिला न्यायाधीश का निर्णय संक्षिप्त कार्यवाही में किया गया निर्णय है । धारा 12 के कारण उसके विरुद्ध कोई अपील नहीं हो सकती । वह कार्यवाही वाद नहीं होती और न उसकी प्रकृति वाद जैसी होती है । ऐसे निर्णय को अधिनियम के किसी उपबंध ने अंतिमता प्रदान नहीं की है । उसके आधार पर प्राङ न्याय का सिद्धांत लागू नहीं होता जिससे कि वह व्यक्ति भी नियमित वाद संस्थित करने में वर्जित हो जो उक्त अधिनियम के अधीन कार्यवाही में पक्षकार था । लोक न्यास का अस्तित्व अधिनियम की धारा 3 द्वारा अधिकृत कार्यवाही का आधार है ; जिला न्यायाधीश को स्वयं अपनी अधिकारिता के प्रश्न पर अपने समाधान हेतु इस प्रश्न पर प्रथमदृष्ट्या किसी निर्णय पर पहुंचना पड़ेगा, किंतु वह इस पर किसी गलत निर्णय से स्वयं को अधिकारिता प्रदान नहीं कर सकता । यह परिणाम निकालने के लिए अधिनियम में कोई उपबंध होना चाहिए, जो प्रतिकूल अर्थान्वयन की उपेक्षा करे । कितने भी लंबे समय से और कितनी भी शांति से किसी व्यक्ति का संपत्ति पर कब्जा रहा हो और वह उसका उपभोग करता रहा हो, यह सदैव संभव है कि जनता के लिए कार्य करने का दावा करने वाले व्यक्ति संपत्ति का यह कहकर दावा करें कि वह पूर्त या धार्मिक प्रकृति के न्यास की विषयवस्तु है । यह

सरलता से समझा जा सकता है कि जिला न्यायाधीश से यह अपेक्षा की जानी चाहिए कि वह अधिनियम के अधीन किसी भी ऐसे मामले में कार्यवाही रोक दे जिसमें वह व्यक्ति, जिसके विरुद्ध कार्यवाही की गई है, वाद संस्थित करने का इच्छुक हो । किंतु यह व्यवस्था बड़ी कठोर और विषम होगी कि यदि वह व्यक्ति जिसका कब्जा है सकारात्मक रूप से अपना हक साबित करने के लिए स्वयं वाद करने का इच्छुक न हो, तो वह इस प्रकार की कार्यवाही में जिला न्यायाधीश का निर्णय उसके विरुद्ध अपील के अधिकार के बिना मान कर संतोष करने को विवश हो । हमारे विचार से अधिनियम की धारा 6 का आय ऐसे आदेश के जैसा कि इस मामले में जिला न्यायाधीश ने 1.10.1930 को किया, परिणामों को बताने का है, किंतु शब्द, "यदि कोई न्यासी युक्तियुक्त प्रतिहेतु के बिना पालन करने में असफल रहता है" नियमित वाद में इस तर्क को वर्जित करने के लिए नहीं माने जा सकते कि वादी न्यासी नहीं है और न वे सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 के अधीन वाद में प्रतिवादी द्वारा दिए गए ऐसे कथन को वारित करने के लिए माने जा सकते हैं । गुणागुण के संबंध में पहले दस्तावेजों पर विचार करना वांछनीय है । हक के मुख्य दस्तावेज का पहले ही उल्लेख किया जा चुका है । वह 2.4.1781 की है और प्रदर्श 4 है । इससे अवध के नवाब ने अब प्रश्नगत संपत्ति प्रत्यर्थियों के पूर्वज दरयाव गिर को अनुदान में दी । अनुदान इस प्रकार है – "लखनऊ हवेली उपनगर और अवध के अख्तर नगर सूबे के वर्तमान और भावी सरकारी अधिकारियों को ज्ञात हो कि गांव नवगांव के बिल्कुल समीप की सरकारी राजस्व माल और सवाई से मुक्त पांच पक्के बीघा बंजर भूमि जो उक्त हवेली में है, जिस पर भैंरों का आवास स्थित है उक्त आवास सहित सब देयों से मुक्त दरयाव गिर गोसाईं और महंत के नाम अनुदान में दे दी गई है और अब वह अभिलेखों में नहीं दिखाई जाएगी और उक्त भूमि पीढ़ी दर पीढ़ी वंशजोंपरांत वंशज उक्त व्यक्ति और उसके वारिसों के कब्जे और उपभोग में रहेगी और वे (अधिकारी) किसी भी कारण से उसमें हस्तक्षेप न करें और बाधा न डालें जिससे कि उक्त व्यक्ति उक्त भूमि और बने आवास पर कब्जा रखते हुए संतोष और निष्ठा से हिज हाइनेस के लिए प्रार्थना में लगा रहे ।" हम मुख्य न्यायालय के इस निष्कर्ष से सहमत हैं कि 1781 का अनुदान मूर्ति को अनुदान या मंदिर का विन्यास या धार्मिक लोक प्रयोजनार्थ न्यास के रूप में किया गया दान नहीं था । अनुदान दरयाव गिर और उसके वारिसों को शाश्वत के लिए है । यदि उसका आशय मूर्ति हेतु विन्यास का होता तो वह बहुत भिन्न रूप में व्यक्त किया जाता । यदि यह मान भी

लिया जाए कि यह असमर्थनीय प्रतिपादना नहीं है तो भी इस बात से कि अनुदाता वास्तव में हिन्दू धार्मिक प्रयोजनार्थ वक्फ़ कर रहा था यह मेल नहीं खाता कि यहां प्राप्तकर्ता के वारिसों का उल्लेख है और अरबी शब्दावली "नरलन बाद नरलन व बतनान बाद बतनीन" (पीढ़ी दर पीढ़ी) का प्रयोग किया गया है । यद्यपि यह सही है कि मूर्ति के मूल का पूर्णरूपेण पता नहीं लगा है और प्रत्यर्थियों का यह कथन कि मंदिर प्राप्तकर्ता के पिता किशोर गिर द्वारा स्थापित किया गया था साक्ष्य से साबित नहीं हुआ है, 1781 का अनुदान दर्शित करता है कि एक फकीर था जो कच्ची झोपड़ी में मूर्ति के साथ बंजर जमीन पर बैठता था तो उसकी नहीं थी और जो उसे अनुदान द्वारा पहली बार दी गई । हमारी राय में यह प्रणाली की गलती होगी यदि मंदिर का पश्चात्वर्ती इतिहास इस अनुदान के प्रकाश में नहीं देखा जाता । यद्यपि यह निश्चय ही संभव है कि वर्षानुक्रम में मंदिर ऐसे बरता गया हो कि वह लोक मंदिर के रूप में हिन्दू जनता के लाभार्थ समर्पित हो गया हो, किंतु ऐसा समर्पण साबित करना होगा । हमारे विचार से वाद सं. 8/130 में भारत के न्यायालयों ने उचित प्रणाली का अनुसरण किया और वे इस प्रश्न पर सही निष्कर्ष पर पहुंचे हैं । 1843 का निर्णय उस समय वहीं स्थिति बताता है जो 1781 में थी और लखनऊ के व्यवस्थापन के समय का खतरा कोई परिवर्तन नहीं दिखाता – तब भी उसमें मूर्ति सहित कच्ची झोपड़ी है और "स्वामी" प्रत्यर्थियों के कुटुंब के सदस्य हैं, यद्यपि वे "दरयाव गिर के शिष्य बताए गए हैं" । साक्ष्य का सामान्य प्रभाव यह है कि कुटुंब ने मंदिर को कुटुंब की संपत्ति के रूप में बरता है । उन्होंने विभिन्न प्रकार का लाभ, चाहे चढ़ावा हो या किराया, परस्पर बांटा है । विवाह या अन्य उत्सवों के अवसर पर जब कुटुंब के सदस्यों की मूल निवास पर उपस्थिति की अपेक्षा हुई तब उन्होंने मंदिर जनसाधारण द्वारा पूजा के लिए बंद रखा और अपने मृतकों के सम्मान में वहां समाधियां बनाईं । इन परिस्थितियों में हमारी राय में कुटुंब को अपनी संपत्ति से वंचित करने के लिए यह दिखाना पर्याप्त नहीं है कि पूजा के इच्छुक हिन्दुओं को कभी मंदिर में आने से रोका नहीं गया या कि देवता के स्थानीय हिन्दुओं या वार्षिक मेले में आने वाले लोगों में बड़ी लोकप्रियता प्राप्त कर ली थी । पूजा करने वालों का मंदिर में स्वभावतः स्वागत होता है, क्योंकि वे चढ़ावा लाते हैं और उनके आने से मंदिर का नाम होता है । मंदिर की संपत्ति के लोक न्यास की संपत्ति के रूप में समपहृत हो जाने के डर से वे मंदिर से निकाल नहीं दिए जाते । प्रस्तुत जैसे मामलों में किसी मंदिर के लोक मंदिर के रूप में समर्पण का पर्याप्त सबूत माने जाने के

लिए तथ्यों और परिस्थितियों पर उनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में विचार करना आवश्यक है, और जब यह ज्ञात है कि मंदिर संपत्ति किसी व्यक्ति या कुटुंब द्वारा अनुदान से अर्जित की गई तो लोक समर्पण का निष्कर्ष आसानी से नहीं निकालना चाहिए । ऐसा निष्कर्ष वह जनता द्वारा उपयोग की बात से निकालना खतरनाक है, क्योंकि वह साधारणतया हिन्दू भावना या पद्धति से सामंजस्यपूर्ण नहीं होगा कि पूजा करने वालों को निकाला जाए, और क्योंकि पूजा में साधारणतया किसी न किसी प्रकार का चढ़ावा अंतर्निहित होता है अतः यह आशा नहीं की जाती कि निजी मंदिर के प्रबंधक किसी भी परिस्थिति में लोकप्रियता को हतोत्साहित करें । इस प्रकार मुण्डाचेरी कोमनइ बनाम अच्युतन नैयर में इस बोर्ड ने अपना मत व्यक्त किया था कि मंदिर में जनता को मुक्त रूप से आने देने के तथ्य मात्र पर कार्य करने में संकोच होना चाहिए । लोक उपयोग का समर्पण के साक्ष्य के रूप में मूल्य उन परिस्थितियों पर निर्भर करता है जो इस निष्कर्ष को प्रबल करें कि उपयोग अधिकारितः था । हम नहीं समझते कि हमारे समक्ष के मामले की सामान्य रूपरेखा वैसी ही है जैसी कि वह उपर्युक्त लक्ष्मण गौंडन में मद्रास के मंदिर के मामले की थी, जिसमें विनिश्चय किया गया कि संस्थापक ने उस भवन को बड़ा कर दिया जिसमें उसने मूर्ति प्रतिष्ठित की थी और शोभायात्राओं के लिए वृत्ताकार सड़कें बनाईं, पूजारियों के लिए गांव में विश्राम घर बनाया आदि, और इस प्रकार जनता के प्रति व्यक्त किया कि यह लोक मंदिर है । हमारी राय में मुख्य न्यायालय ने अपने समक्ष के विशिष्ट तथ्यों का सही रूप से मूल्यांकन किया है और सही रूप से इस कथन को अस्वीकार किया है कि मंदिर लोक मंदिर है तथा वादगत संपत्ति की प्रकृति धार्मिक लोक न्यास की है । हिज मैजेस्टी को हमारी विनम्र सलाह है कि ये समेकित अपीलें खारिज की जानी चाहिए । अपीलार्थी प्रत्यर्थियों का खर्चा अदा करें । (पैरा 3 और 7)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1934]	61 इंडियन अपील्स 405 = आ. इं. रि. 1934 प्रि. कौं. 230 : **मुण्डाचेरी कोमनइ** बनाम **अच्युतन नैयर** ;	7
[1934]	आ. इं. रि. 1934 लाहौर 771 : **प्रेमनाथ** बनाम **हर राम** ;	3

[1934] इं. ला रि. 58 बाम्बे 623 =
आ. इं. रि. 1934 बाम्बे 343 :
हैदर अली गुलाम अली बनाम **गुलाम मोहिउद्दीन** ; 3

[1929] इं. ला रि. 51 इलाहाबाद 805 =
आ. इं. रि. 1929 इलाहाबाद 506 :
महादेव भारती बनाम **महादेव राव** ; 3

[1924] 29 कलकत्ता वीकली नोट्स 112 =
आ. इं. रि. 1924 प्रि. कौं. 44 :
लक्ष्मण गौंडन बनाम **सुब्रमण्य अय्यर** । 6, 7

अपीली सिविल अधिकारिता : 1937 की अपील सं. 79.

अपीलार्थियों की ओर से श्री पी. वी. सुब्बा राव

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री टी. बी. डब्ल्यू. रामसेद

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति सर जार्ज रैंकिन ने दिया ।

न्या. रैंकिन – 14.4.1930 को प्रथम दो अपीलार्थियों (चाचा और भतीजे) ने पूर्त और धार्मिक न्यास अधिनियम (सं. 14 सन् 1920) की धारा 3 के अधीन लखनऊ के जिला न्यायाधीश के समक्ष एक आवेदन दिया, जिसमें प्रार्थना की कि उससे लगे हुए और उसके साथ दखलकृत भूमि तथा भवनों सहित लखनऊ के एक मंदिर के संबंध में हिसाब देने का निदेश दिया जाए । प्रमुख देवता भैंरों जी हैं और उन्हीं के नाम पर मंदिर का नाम है, यद्यपि मंदिर के अन्य भागों में अन्य मूर्तियां भी हैं । परिसर का क्षेत्रफल अलग-अलग बताया गया है, कि वह लगभग 4 बीघा या 16 विस्वा है । आवेदन में प्रत्यर्थियों की संख्या पांच थी, तीन पुरुष और दो महिलाएं । अपने कुटुंब के कुछ अन्य सदस्यों के साथ वे अब बोर्ड के समक्ष इस समेकित अपील में प्रत्यर्थी हैं । वे एक दरयाव गिर के सीधे वंशज होने का दावा करते हैं, जिसे 1781 में अवध के तत्कालीन शासक नवाब ने वह भूमि अनुदान में दी थी, जो अब प्रश्नगत है । यह पाया गया है और संदिग्ध प्रतीत नहीं होता कि इस कुटुंब के सदस्य गृहस्थ फकीर हैं, जो एक साथ गोसाईं भी हैं और गृहस्थ भी । यह कुटुंब बिजनौर जिले में "धामपुर की ओर का" है और सामान्य प्रकार का संयुक्त हिन्दू कुटुंब है । जिला न्यायाधीश को आवेदन के समय इस कुटुंब के सदस्यों का मंदिर पर निरंतर दखल और नियंत्रण रहा था और अनेक समाधियां बताई गईं, जिनमें इस

कुटुंब के गोसाइयों की आस्तियां थीं । मंदिर के प्रबंध या इसमें पूजा के संचालन में जनता की ओर से अथवा अन्यथा किसी समय कोई हस्तक्षेप नहीं किया गया । आवेदन में यह नहीं कहा गया कि यह कुटुंब किसी उपेक्षा या कुप्रबंध का दोषी है और भारत के न्यायालयों द्वारा प्रतिकूल विनिश्चय किया गया है । जिला न्यायाधीश ने उनके समक्ष जो पांच प्रत्यर्थी थे उन्हें इस घोषणा के लिए वाद संस्थित करने का विकल्प दिया कि संपत्ति पूर्त या धार्मिक प्रकृति के लोक प्रयोजन हेतु न्यास के अधीन नहीं है ; किंतु उन्होंने वह मार्ग नहीं अपनाया । अतः उन्होंने इस कथन को नासाबित करने का भार उन पर डाल दिया और अपीलार्थियों के नौ तथा गोसाई-प्रत्यर्थियों के दो साक्षी सुनने और कतिपय दस्तावेजों पर विचार करने के पश्चात्, जिला न्यायाधीश ने विनिश्चय किया कि प्रथमदृष्ट्या दृढ़ मामला है कि मंदिर लोक न्यास की विषयवस्तु है और गोसाईं इसके विपरीत साबित नहीं कर सके हैं । अतः उन्होंने अपने समक्ष गोसाइयों को निदेश दिया कि वे संपत्ति के विस्तार, भवनों की प्रकृति तथा गत वर्ष (1.10.1930) की भूमि का विवरण दें । इस आदेश का पालन नहीं किया गया और 16.9.1931 को प्रथम दो अपीलार्थियों ने प्रत्यर्थियों के कुटुंब के उन्हीं पांच सदस्यों के विरुद्ध मोहन लाल गंज के अधीनस्थ न्यायाधीश के न्यायालय में वाद सं. 108/7 सन् 1931 संस्थित किया ।

2. वाद सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 के अधीन था । इस बात का आश्रय लेकर कि प्रतिवादियों ने जिला न्यायाधीश के आदेश के अनुसार विवरण नहीं दिया है, वादपत्र में प्रार्थना की गई कि उन्हें हटाया जाए, नए न्यासी नियुक्त किए जाएं और मंदिर के प्रबंध के लिए योजना बनाई जाए । इस वाद के निर्णय सुनाए जाने के पूर्व ही 14 वादियों ने 23.12.1931 को उसी न्यायालय में एक अन्य वाद सं. 8/130 सन् 1931 संस्थित किया जिसमें दावा किया कि वे और प्रतिवादियों के रूप में पक्षकार बनाए गए चार व्यक्ति उस संयुक्त हिन्दू कुटुंब के सदस्य हैं जो उस मंदिर के स्वामी हैं । इसका अर्थ था कि तेरह व्यक्ति जो जिला न्यायाधीश के समक्ष कार्यवाही में पक्षकार नहीं बनाए गए थे, अब दरयाव गिर और उसके सहदायिकों के वंशज के रूप में अपने अधिकार वाद में प्रस्तुत कर रहे थे । इस वाद का विरोध करने वाले प्रतिवादियों में प्रथम दो अपीलार्थी सम्मिलित थे, अर्थात् वे चाचा-भतीजे जिन्होंने जिला न्यायाधीश के समक्ष कार्यवाही आरंभ की थी । मोहन लाल गंज के विद्वान् अधीनस्थ न्यायाधीश ने इन दो वादों में से पहले वाद अर्थात् वाद सं. 108/7 में 22.2.1932 को निर्णय सुनाया । उन्होंने विनिश्चय किया कि उनके समक्ष के पांच गोसाई

प्रतिवादियों ने यह साबित नहीं किया है कि कुटुंब के तेरह अन्य सदस्य हितबद्ध हैं और उन्होंने यह बात अन्य वाद में विनिश्चय के लिए छोड़ दी । उनका विचार था कि जिला न्यायाधीश के आदेश ने अंतिम रूप से इस प्रश्न का निपटारा कर दिया कि मंदिर धार्मिक लोक न्यास की विषयवस्तु है या नहीं । उन्होंने वाद डिक्री कर दिया और पांचों प्रतिवादियों को हटा दिया तथा नए न्यासी नियुक्त कर दिए और एक योजना अनुमोदित कर दी । लगभग एक वर्ष बाद (28.2.1933 को) एक अन्य अधीनस्थ न्यायाधीश (मलीहाबाद) ने वाद सं. 8/130 सन् 1931 में निर्णय दिया, जिसमें उन्होंने विनिश्चय किया कि मंदिर वाली संपत्ति प्रत्यर्थियों के कुटुंब के 18 व्यक्तियों (14 वादी और 4 प्रतिवादी) की, जिनकी ओर से उसका दावा किया गया है की निजी संपत्ति है । उक्त दोनों वादों के निर्णयों के विरुद्ध लखनऊ के मुख्य न्यायालय में अपील की गई । न्यायमूर्ति नानावती और जियाउलहसन ने 23.10.1934 को दोनों अपीलों का एक ही निर्णय सुनाया । उन्होंने विनिश्चय किया कि मंदिर वाली संपत्ति लोक न्यास की विषयवस्तु नहीं है, बल्कि गोसाइयों के संयुक्त कुटुंब की निजी संपत्ति है । अतः उसके विरुद्ध दो अपीलें की गईं, जो एक समेकित अपील के रूप में बोर्ड के समक्ष हैं ।

3. पहला प्रश्न यह है कि क्या पूर्त और धार्मिक न्यास अधिनियम, 1920 के अधीन किया गया जिला न्यायाधीश का आदेश प्रत्यर्थियों को उस पर विवाद करने से रोकता है कि मंदिर धार्मिक लोक न्यास की विषयवस्तु है । जिला न्यायाधीश का वह आदेश कुटुंब के केवल पांच सदस्यों की उपस्थिति में किया गया और यह नहीं दिखाया गया है कि प्रतिनिधित्व के किस सिद्धांत के अनुसार दूसरे सदस्य उससे आबद्ध हैं । अतः, यह निष्कर्ष निकालना कठिन है कि कैसे ये अन्य सदस्य यह दावा करने से रोके जा सकते हैं कि संपत्ति उनके संयुक्त कुटुंब की है । मुख्य न्यायालय ने जिला न्यायाधीश के आदेश को निश्चायक मानने से इनकार अन्य कारणों से भी किया है । इस बारे में उन्होंने **प्रेमनाथ** बनाम **हर राम**[1] में लाहौर उच्च न्यायालय के खंड न्यायपीठ के निर्णय का तथा **हैदर अली गुलाम अली** बनाम **गुलाम मोहिउद्दीन**[2] में बंबई उच्च न्यायालय के एकल न्यायमूर्ति के निर्णय का अनुसरण किया और वे **महादेव भारती** बनाम **महादेव राव**[3] में

---

[1] आ. इं. रि. 1934 लाहौर 771.

[2] इं. ला रि. 58 बाम्बे 623 = आ. इं. रि. 1934 बाम्बे 343.

[3] इं. ला रि. 51 इलाहाबाद 805 = आ. इं. रि. 1929 इलाहाबाद 506.

न्यायमूर्ति मुखर्जी की राय की अपेक्षा न्यायमूर्ति नियामतुल्ला की राय से सहमत हुए । हम मुख्य न्यायालय से सहमत हैं । हम विनिश्चय करते हैं कि 1920 के अधिनियम के अधीन जिला न्यायाधीश का निर्णय संक्षिप्त कार्यवाही में किया गया निर्णय है । धारा 12 के कारण उसके विरुद्ध कोई अपील नहीं हो सकती । वह कार्यवाही वाद नहीं होती और न उसकी प्रकृति वाद जैसी होती है । ऐसे निर्णय को अधिनियम के किसी उपबंध ने अंतिमता प्रदान नहीं की है । उसके आधार पर प्राङ न्याय का सिद्धांत लागू नहीं होता जिससे कि वह व्यक्ति भी नियमित वाद संस्थित करने में वर्जित हो जो उक्त अधिनियम के अधीन कार्यवाही में पक्षकार था । लोक न्यास का अस्तित्व अधिनियम की धारा 3 द्वारा अधिकृत कार्यवाही का आधार है ; जिला न्यायाधीश को स्वयं अपनी अधिकारिता के प्रश्न पर अपने समाधान हेतु इस प्रश्न पर प्रथमदृष्ट्या किसी निर्णय पर पहुंचना पड़ेगा, किंतु वह इस पर किसी गलत निर्णय से स्वयं को अधिकारिता प्रदान नहीं कर सकता । यह परिणाम निकालने के लिए अधिनियम में कोई उपबंध होना चाहिए, जो प्रतिकूल अर्थान्वयन की उपेक्षा करे । कितने भी लंबे समय से और कितनी भी शांति से किसी व्यक्ति का संपत्ति पर कब्जा रहा हो और वह उसका उपभोग करता रहा हो, यह सदैव संभव है कि जनता के लिए कार्य करने का दावा करने वाले व्यक्ति संपत्ति का यह कहकर दावा करें कि वह पूर्त या धार्मिक प्रकृति के न्यास की विषयवस्तु है । यह सरलता से समझा जा सकता है कि जिला न्यायाधीश से यह अपेक्षा की जानी चाहिए कि वह अधिनियम के अधीन किसी भी ऐसे मामले में कार्यवाही रोक दे जिसमें वह व्यक्ति, जिसके विरुद्ध कार्यवाही की गई है, वाद संस्थित करने का इच्छुक हो । किंतु यह व्यवस्था बड़ी कठोर और विषम होगी कि यदि वह व्यक्ति जिसका कब्जा है सकारात्मक रूप से अपना हक साबित करने के लिए स्वयं वाद करने का इच्छुक न हो, तो वह इस प्रकार की कार्यवाही में जिला न्यायाधीश का निर्णय उसके विरुद्ध अपील के अधिकार के बिना मान कर संतोष करने को विवश हो । हमारे विचार से अधिनियम की धारा 6 का आय ऐसे आदेश के जैसा कि इस मामले में जिला न्यायाधीश ने 1.10.1930 को किया, परिणामों को बताने का है, किंतु शब्द, "यदि कोई न्यासी युक्तियुक्त प्रतिहेतु के बिना पालन करने में असफल रहता है" नियमित वाद में इस तर्क को वर्जित करने के लिए नहीं माने जा सकते कि वादी न्यासी नहीं है और न वे सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 के अधीन वाद में प्रतिवादी द्वारा दिए गए ऐसे कथन को वारित करने के लिए माने जा सकते हैं । गुणागुण के संबंध में पहले दस्तावेजों पर विचार करना

वांछनीय है । हक के मुख्य दस्तावेज का पहले ही उल्लेख किया जा चुका है । वह 2.4.1781 की है और प्रदर्श 4 है । इससे अवध के नवाब ने अब प्रश्नगत संपत्ति प्रत्यर्थियों के पूर्वज दरयाव गिर को अनुदान में दी । अनुदान इस प्रकार है :–

> "लखनऊ हवेली उपनगर और अवध के अख्तर नगर सूबे के वर्तमान और भावी सरकारी अधिकारियों को ज्ञात हो कि गांव नवगांव के बिल्कुल समीप की सरकारी राजस्व माल और सवाई से मुक्त पांच पक्के बीघा बंजर भूमि जो उक्त हवेली में है, जिस पर भैंरों का आवास स्थित है उक्त आवास सहित सब देयों से मुक्त दरयाव गिर गोसाईं और महंत के नाम अनुदान में दे दी गई है और अब वह अभिलेखों में नहीं दिखाई जाएगी और उक्त भूमि पीढ़ी दर पीढ़ी वंशजोंपरांत वंशज उक्त व्यक्ति और उसके वारिसों के कब्जे और उपभोग में रहेगी और वे (अधिकारी) किसी भी कारण से उसमें हस्तक्षेप न करें और बाधा न डालें जिससे कि उक्त व्यक्ति उक्त भूमि और बने आवास पर कब्जा रखते हुए संतोष और निष्ठा से हिज हाइनेस के लिए प्रार्थना में लगा रहे ।"

4. इस अनुदान का 1843 में नवाब के एक न्यायालय ने अर्थान्वयन किया, जबकि प्रत्यर्थियों के कुटुंब के सदस्यों ने कुछ धोबियों की बेदखली की कार्यवाही की, जिन्हें बनाने और उनमें रहने की अनुमति दे दी गई थी । यह विनिश्चय किया गया कि "फकीरों" के पूर्वज दरयाव गिर को इस पांच बीघे बंजर भूमि का माफी के रूप में अनुदान था कि वे पीढ़ी दर पीढ़ी धारित करें तथा फकीरों का दीर्घकाल से इस पर कब्जा चला आ रहा है । अंग्रेजों के अवध को ब्रिटिश राज्य में मिला लेने के तुरंत बाद 1857 के उपरांत लखनऊ नगर के पहले व्यवस्थापन के समय तैयार किया गया खतरा भी है । यह भूखंड को भैंरों जी का कच्चा घर के रूप में दर्शित कर सकता है और "कब्जे के आधार पर स्वामी का नाम" के स्तंभ में "दरयाव गिर के शिष्य केसरी गिर, जवाहिर गिर और कल्याण गिर" की प्रविष्टि है । मामले में ये मुख्य दस्तावेजें हैं । किंतु इनके अतिरिक्त मंदिर की संपत्ति के सीमांत पर स्थित दुकानों की कोठरियों के बहुत से "सरखत" या पट्टे हैं । ये प्रत्यर्थियों के कुटुंब के किसी न किसी सदस्य द्वारा किए गए हैं । जैसा कि विचारण न्यायाधीश ने वाद सं. 8/130 में व्यक्त किया है, पट्टाकर्ता कुटुंब की तीन शाखाओं में से प्रत्येक का प्रतिनिधित्व करते थे । मुख्य न्यायालय ने इस पर ध्यान दिया है कि स्वयं गोसाइयों के नाम से

भिन्न मूर्ति के नाम से कोई पट्टा नहीं है । इन पट्टों में कभी गोसाइयों का उल्लेख दुकान या कोठरी के "स्वामी" के रूप में है ; कम से कम एक में उनका उल्लेख "भैरों जी के स्थान के स्वामी" के रूप में है ।

5. दस्तावेजों से कोई निष्कर्ष निकालने का प्रयास करने से पूर्व साक्ष्य की मुख्य बातों का उल्लेख सुविधापूर्ण होगा । अपीलार्थी दृढ़ता से इस तथ्य का आश्रय लेते हैं कि जनता बिना किसी विघ्न-बाधा के मंदिर में पूजा और दर्शन हेतु आती रही है । विचारण से लगभग 46 वर्ष पूर्व कुछ गायकों और नर्तकों ने एक मेला आरंभ किया । वह एक वार्षिक उत्सव हो गया और उसके लिए जनता से चंदा एकत्रित किया जाता था । कुछ साक्ष्य है कि इस धन का कुछ भाग मंदिर की पुताई और मरम्मत में खर्च किया जाता है । किंतु मुख्य न्यायालय का विचार है कि यह साबित नहीं हुआ, यद्यपि यह निश्चित है कि मेले के दौरान अधिक लोगों के आने से मंदिर और उसके गोसाइयों को लाभ होता है ।

6. अपीलार्थियों का कहना है कि मंदिर के इतिहास के अवलोकन से उन्होंने साबित कर दिया है कि जनता के समक्ष मंदिर एक लोक मंदिर के रूप में प्रकट किया गया तथा भारत के न्यायालयों को मद्रास के वाद **लक्ष्मण गौंडन** बनाम **सुब्रमण्य अय्यर**[1] में बोर्ड के तर्क को लागू करना चाहिए था । जो तथ्य निचले न्यायालयों द्वारा प्रत्यर्थियों के पक्ष में पाए गए वे ये हैं कि मंदिर में जनता की ओर से हस्तक्षेप पहले नहीं किया गया, गोसाईं चढ़ावा स्वयं अपने पास रखते थे, और वे उसे कुटुंब की विभिन्न शाखाओं के सदस्यों के रूप में उनके हिस्सों के अनुसार बांट लेते थे । वे मरम्मत पर धन व्यय करते थे, वे अपने-अपने नाम से, न कि मूर्ति के नाम से, अलग-अलग पट्टे देते थे, कि जब उन्हें अपने कौटुम्बिक कृत्यों में, उदाहरणार्थ विवाहों में, अपने मूल गांव जाने का अवसर आता था तो वे मंदिर बंद कर जाते थे तथा कुटुंब के कुछ सदस्यों की समाधियां यहां बनाई गईं यद्यपि वे प्रसिद्ध संत होने का दावा नहीं कर सकते थे ।

7. हम मुख्य न्यायालय के इस निष्कर्ष से सहमत हैं कि 1781 का अनुदान मूर्ति को अनुदान या मंदिर का विन्यास या धार्मिक लोक प्रयोजनार्थ न्यास के रूप में किया गया दान नहीं था । अनुदान दरयाव गिर और उसके वारिसों को शाश्वत के लिए है । यदि उसका आशय मूर्ति हेतु विन्यास का होता तो वह बहुत भिन्न रूप में व्यक्त किया जाता । यदि यह मान भी

---

[1] 29 कलकत्ता वीकली नोट्स 112 = आ. इं. रि. 1924 प्रि. कौं. 44.

लिया जाए कि यह असमर्थनीय प्रतिपादना नहीं है तो भी इस बात से कि अनुदाता वास्तव में हिन्दू धार्मिक प्रयोजनार्थ वक्फ़ कर रहा था यह मेल नहीं खाता कि यहां प्राप्तकर्ता के वारिसों का उल्लेख है और अरबी शब्दावली "नस्लन बाद नरलन व बतनान बाद बतनीन" (पीढ़ी दर पीढ़ी) का प्रयोग किया गया है । यद्यपि यह सही है कि मूर्ति के मूल का पूर्णरूपेण पता नहीं लगा है और प्रत्यर्थियों का यह कथन कि मंदिर प्राप्तकर्ता के पिता किशोर गिर द्वारा स्थापित किया गया था साक्ष्य से साबित नहीं हुआ है, 1781 का अनुदान दर्शित करता है कि एक फकीर था जो कच्ची झोपड़ी में मूर्ति के साथ बंजर जमीन पर बैठता था तो उसकी नहीं थी और जो उसे अनुदान द्वारा पहली बार दी गई । हमारी राय में यह प्रणाली की गलती होगी यदि मंदिर का पश्चात्वर्ती इतिहास इस अनुदान के प्रकाश में नहीं देखा जाता । यद्यपि यह निश्चय ही संभव है कि वर्षानुक्रम में मंदिर ऐसे बरता गया हो कि वह लोक मंदिर के रूप में हिन्दू जनता के लाभार्थ समर्पित हो गया हो, किंतु ऐसा समर्पण साबित करना होगा । हमारे विचार से वाद सं. 8/130 में भारत के न्यायालयों ने उचित प्रणाली का अनुसरण किया और वे इस प्रश्न पर सही निष्कर्ष पर पहुंचे हैं । 1843 का निर्णय उस समय वहीं स्थिति बताता है जो 1781 में थी और लखनऊ के व्यवस्थापन के समय का खतरा कोई परिवर्तन नहीं दिखाता – तब भी उसमें मूर्ति सहित कच्ची झोपड़ी है और "स्वामी" प्रत्यर्थियों के कुटुंब के सदस्य हैं, यद्यपि वे "दरयाव गिर के शिष्य बताए गए हैं" । साक्ष्य का सामान्य प्रभाव यह है कि कुटुंब ने मंदिर को कुटुंब की संपत्ति के रूप में बरता है । उन्होंने विभिन्न प्रकार का लाभ, चाहे चढ़ावा हो या किराया, परस्पर बांटा है । विवाह या अन्य उत्सवों के अवसर पर जब कुटुंब के सदस्यों की मूल निवास पर उपस्थिति की अपेक्षा हुई तब उन्होंने मंदिर जनसाधारण द्वारा पूजा के लिए बंद रखा और अपने मृतकों के सम्मान में वहां समाधियां बनाईं । इन परिस्थितियों में हमारी राय में कुटुंब को अपनी संपत्ति से वंचित करने के लिए यह दिखाना पर्याप्त नहीं है कि पूजा के इच्छुक हिन्दुओं को कभी मंदिर में आने से रोका नहीं गया या कि देवता के स्थानीय हिन्दुओं या वार्षिक मेले में आने वाले लोगों में बड़ी लोकप्रियता प्राप्त कर ली थी । पूजा करने वालों का मंदिर में स्वभावतः स्वागत होता है, क्योंकि वे चढ़ावा लाते हैं और उनके आने से मंदिर का नाम होता है । मंदिर की संपत्ति के लोक न्यास की संपत्ति के रूप में समपहृत हो जाने के डर से वे मंदिर से निकाल नहीं दिए जाते । प्रस्तुत जैसे मामलों में किसी मंदिर के लोक मंदिर के रूप में समर्पण का पर्याप्त सबूत माने जाने के

लिए तथ्यों और परिस्थितियों पर उनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में विचार करना आवश्यक है, और जब यह ज्ञात है कि मंदिर संपत्ति किसी व्यक्ति या कुटुंब द्वारा अनुदान से अर्जित की गई तो लोक समर्पण का निष्कर्ष आसानी से नहीं निकालना चाहिए । ऐसा निष्कर्ष वह जनता द्वारा उपयोग की बात से निकालना खतरनाक है, क्योंकि वह साधारणतया हिन्दू भावना या पद्धति से सामंजस्यपूर्ण नहीं होगा कि पूजा करने वालों को निकाला जाए, और क्योंकि पूजा में साधारणतया किसी न किसी प्रकार का चढ़ावा अंतर्निहित होता है अतः यह आशा नहीं की जाती कि निजी मंदिर के प्रबंधक किसी भी परिस्थिति में लोकप्रियता को हतोत्साहित करें । इस प्रकार **मुण्डाचेरी कोमनइ** बनाम **अच्युतन नैयर**[1] में इस बोर्ड ने अपना मत व्यक्त किया था कि मंदिर में जनता को मुक्त रूप से आने देने के तथ्य मात्र पर कार्य करने में संकोच होना चाहिए । लोक उपयोग का समर्पण के साक्ष्य के रूप में मूल्य उन परिस्थितियों पर निर्भर करता है जो इस निष्कर्ष को प्रबल करें कि उपयोग अधिकारितः था । हम नहीं समझते कि हमारे समक्ष के मामले की सामान्य रूपरेखा वैसी ही है जैसी कि वह उपर्युक्त **लक्ष्मण गौंडन**[2] में मद्रास के मंदिर के मामले की थी, जिसमें विनिश्चय किया गया कि संस्थापक ने उस भवन को बड़ा कर दिया जिसमें उसने मूर्ति प्रतिष्ठित की थी और शोभायात्राओं के लिए वृत्ताकार सड़कें बनाईं, पूजारियों के लिए गांव में विश्राम घर बनाया आदि, और इस प्रकार जनता के प्रति व्यक्त किया कि यह लोक मंदिर है । हमारी राय में मुख्य न्यायालय ने अपने समक्ष के विशिष्ट तथ्यों का सही रूप से मूल्यांकन किया है और सही रूप से इस कथन को अस्वीकार किया है कि मंदिर लोक मंदिर है तथा वादगत संपत्ति की प्रकृति धार्मिक लोक न्यास की है । हिज मैजेस्टी को हमारी विनम्र सलाह है कि ये समेकित अपीलें खारिज की जानी चाहिए । अपीलार्थी प्रत्यर्थियों का खर्चा अदा करें ।

अपील खारिज की गई ।

---

[1] 61 इंडियन अपील्स 405 = आ. इं. रि. 1934 प्रि. कौं. 230.

[2] 29 कलकत्ता वीकली नोट्स 112 = आ. इं. रि. 1924 प्रि. कौं. 44.

प्रबोध कुमार दास और अन्य ..... अपीलार्थी

बनाम

दन्तमारा टी कं. लि. और अन्य ..... प्रत्यर्थी

10.10.1939

न्यायमूर्ति लार्ड मैकमिलन, न्यायमूर्ति सर जार्ज रैंकिन और न्यायमूर्ति एम. आर. जयाकर

संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 – धारा 53क – धारा 53क द्वारा प्रदत्त अधिकार केवल प्रतिवादी को अपने कब्जे के बचाव हेतु उपलब्ध है – धारा की रचना इस प्रकार की गई है जिससे कि अंतरक पर एक कानूनी वर्जन अधिरोपित होता है – यह अरजिस्ट्रीकृत विक्रय संविदा के अधीन सकब्जा अंतरिती को कार्यवाही का कोई अधिकार प्रदान नहीं करती ।

यह अपील में पक्षकारों के मध्य विवाद भारत चाय नियंत्रण अधिनियम के अधीन निर्यात कोटे के अधिकार का है । यह अधिनियम भारत से चाय के निर्यात को विनियमित करने के लिए पारित किया गया था । अधिनियम की धारा 3 द्वारा एक भारतीय चाय अनुज्ञापन समिति स्थापित की गई । इस समिति को चाय की संपूर्ण मात्रा और जो निर्यात करने की अनुमति प्रत्येक टी एस्टेट के स्वामी को दी जा सकती थी, अवधारित करने और लाइसेंस जारी करने का काम सौंपा गया । 1933-34 में अनुज्ञापन समिति ने कैयाचेरा एस्टेट कं. के निर्यात के कोटे के अधिकार वादियों को अथवा उन्हें और एस. एन. राय को जारी किए । बाद में जानने पर कि एस्टेट का हक विवाद ग्रस्त है, समिति ने उसके संबंध में कोई निर्यात कोटा जारी करने से इनकार कर दिया और प्रतिवादी के पक्ष में निर्यात कोटे के हकदार के रूप में मान्यता प्रदान कर दी । इस प्रकार वादियों का एस्टेट पर कम से कम अंशतः कब्जा है किंतु उनके पास निर्यात कोटे के अधिकार नहीं है जबकि प्रतिवादी के पास निर्यात कोटे के अधिकार हैं किंतु एस्टेट पर उसका कब्जा नहीं है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – हमारी राय में धारा 53क द्वारा विधि में किया गया संशोधन अरजिस्ट्रीकृत विक्रय-संविदा के अधीन सकब्जा अंतरिती को कार्रवाई करने का कोई अधिकार प्रदान नहीं करता । हम उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति मित्तर के इस विचार से सहमत हैं कि "धारा 53क द्वारा प्रदत्त अधिकार केवल प्रतिवादी को अपने कब्जे के बचाव हेतु उपलब्ध है ।" हम पाते हैं कि

हमारे विख्यात पूर्व साथी, सर दिनशाह मुल्ला का भी यही मत था, जो उन्होंने संपत्ति अंतरण अधिनियम पर अपनी पुस्तक के द्वितीय संस्करण के पृष्ठ 262 पर व्यक्त किया है । धारा की रचना इस प्रकार की है जिससे अंतरक पर एक कानूनी वर्जन अधिरोपित होता है, किंतु वह अंतरिती को कोई सक्रिय हक प्रदान नहीं करती । वास्तव में कोई अन्य निर्वचन संपत्ति अंतरण अधिनियम की पूरी योजना पर एक गंभीर आक्रमण होगा । यह कहा गया है कि अनुज्ञापन समिति से निर्यात कोटे के अधिकार प्राप्त करके दन्तमारा टी कं. लि. संपत्ति के संबंध में अंतरकों के अधीन दावा करने वाले व्यक्तियों के रूप में अधिकार अपीलार्थियों के विरुद्ध उन व्यक्तियों के रूप में प्रवृत्त कर रहे हैं जो अंतरितियों के अधीन दावा कर रहे हैं और उन्हें ऐसा करने से अपीलार्थियों के अनुरोध पर रोका जा सकता है, किंतु हमारे विचार से अपीलार्थियों के विरुद्ध किसी अधिकार का प्रवर्तन धारा 53क के अर्थ में नहीं हो रहा है । (पैरा 6)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[1934] 61 इंडियन अपील्स 388 =
आ. इं. रि. 1934 प्रि. कौं. 235 :
परि बख्श बनाम **मोहम्मद ताहर** । 5

अपीली अधिकारिता : 1938 की अपील सं. 86.

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री सर थामस स्ट्रांगमैन और चार्ल्स बग्राम

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री एन. एम. दुने, जे. एम. प्रिंगले और एल. पी. ई. पुगन

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति लार्ड मैकमिलन ने दिया ।

न्या. मैकमिलन – यह अपील चटगांव जिले में कैयाचेरा टी एस्टेट के नाम से ज्ञात एक चाय बाग से संबंधित है । यह बाग कभी कैयाचेरा टी कं. लि. का था । एस्टेट कलकत्ते की मैसर्स गिलेण्डर्स, आर्बुथनाट एंड कं. के पास बंधक रखी गई, जिसने 1930 में चाय कंपनी के अनिवार्य परिसमापन का आदेश प्राप्त कर लिया । तत्पश्चात् समापकों द्वारा एस्टेट नीलाम की गई और मै. गिलेण्डर्स आर्बुथनाट एंड कं. ने उसे खरीद लिया । अपने पक्ष में कोई हस्तांतरण प्राप्त किए बिना मै. गिलेण्डर्स आर्बुथनाट एंड कं.

10.10.1931 को आफर और स्वीकृति के पत्रों के आदान-प्रदान द्वारा एस्टेट एक एस. एन. राय को बेचने को सहमत हो गई । राय ने उसके मूल्य की पहली किस्त अदा कर दी और कब्जा ले लिया । इस विक्रय-संविदा के अनुसरण में कभी किसी हस्तांतरण का निष्पादन नहीं किया गया, किंतु इस वाद के वादियों (जब अपीलार्थियों) का दावा है कि इसके अधीन क्रेता के अधिकार उन्होंने कम से कम अंशतः प्राप्त कर लिए । एस्टेट बहुत से जटिल संव्यवहारों की विषयवस्तु रही है, किंतु सौभाग्य से उस एक प्रश्न के निर्णयार्थ, जिसके बारे में हमारे समक्ष बहस की गई है, उनका विवरण देना आवश्यक नहीं है । इन संव्यवहारों का अधीनस्थ न्यायाधीश और उच्च न्यायालय के निर्णयों में पूरा उल्लेख है और वे संव्यवहार ही वाद में प्रतिवादियों की विभिन्नता के कारण हैं ।

2. दूसरी ओर प्रथम प्रतिवादी और प्रत्यर्थी दन्तमारा टी कं. लि. का केवल जिसका निर्देश आवश्यक है, एस्टेट के स्वामी होने का दावा इन आधारों पर है : मै. गिलेण्डर्स, आर्बुथनाट एंड कं. के भागीदारों ने 1.6.1934 को उनके पक्ष में एक सम्यक् रूप से रजिस्ट्रीकृत समनुदेशन विलेख निष्पादित किया, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ इसका उल्लेख है कि एस. एन. राय 10.10.1931 की विक्रय-संविदा को पूरा करने में असफल रहा तथा (2) कैयाचेरा टी कं. लि. और कंपनी के समापकों तथा मे. गिलैण्डर्स आर्बुथनाट एंड कं. के भागीदारों ने 1.6.1934 को ही एक विक्रय-विलेख भी उनके पक्ष में निष्पादित किया । तद्नुसार स्थिति यह है कि वादियों का एस्टेट में कोई हक नहीं है जिस पर उनका कब्जा कम से कम अंशतः है किंतु वे 10.10.1931 की विक्रय-संविदा का आश्रय लेते हैं, जबकि प्रतिवादियों, दन्तमारा टी कं. लि. के पास सम्यक् रूप से पूरा किया गया एस्टेट में हक है, किंतु उस पर उसका कब्जा नहीं है ।

3. पक्षकारों के मध्य मुख्य विवाद भारत चाय नियंत्रण अधिनियम (अधिनियम सं. 24 सन् 1933) के अधीन निर्यात कोटे के अधिकार का है । यह अधिनियम, अन्य बातों के साथ, भारत से चाय के निर्यात को विनियमित करने के लिए पारित किया गया था । अधिनियम की धारा 3 द्वारा एक भारतीय चाय अनुज्ञापन समिति स्थापित की गई । अधिनियम के अन्य उपबंधों के अधीन इस समिति को चाय की संपूर्ण मात्रा (जिसे "निर्यात कोटे" की संज्ञा दी गई) और जो निर्यात करने की अनुमति प्रत्येक टी एस्टेट के स्वामी को दी जा सकती थी, अवधारित करने और निर्यात लाइसेंस जारी करने का काम सौंपा गया । यह कोटा के अधिकार

समनुदेशित किए जा सकते हैं और प्रत्यक्षतः मूल्यवान हैं । 1933-34 में अनुज्ञापन समिति ने कैयाचेरा एस्टेट कं. के निर्यात के कोटे के अधिकार वादियों को अथवा उन्हें और एस. एन. राय को जारी किए । 1934-35 में, यह जानने पर कि एस्टेट का हक विवाद-ग्रस्त है, समिति ने उसके संबंध में कोई निर्यात कोटा जारी करने से इनकार कर दिया । प्रतिवादी दन्तमारा टी कं. लि. के पक्ष में एस्टेट के हस्तांतरण के निष्पादन और रजिस्ट्रीकरण के पश्चात् अनुज्ञापन समिति ने उसे एस्टेट के निर्यात कोटे के अधिकारों के हकदार के रूप में मान्यता प्रदान कर दी । इस प्रकार वादियों का एस्टेट पर कम से कम अंशतः कब्जा है, किंतु उनके पास कोई निर्यात कोटे के अधिकार नहीं हैं, जबकि प्रतिवादी दन्तमारा टी कं. लि. के पास निर्यात कोटे के अधिकार हैं, किंतु एस्टेट पर उसका कब्जा नहीं है ।

4. इन परिस्थितियों में वादियों ने प्रस्तुत वाद संस्थित किया । उन्होंने यह घोषणा चाही कि दन्तमारा टी कं. लि. तथा अन्य का एस्टेट में कोई हक या अधिकार नहीं है, जिसमें एस्टेट को आबंटित निर्यात कोटे के अधीन चाय बेचने का या कोटे के अधिकार किसी व्यक्ति को बेचने का अधिकार भी है और वह एस्टेट की बाबत किसी अधिकार को प्रवृत्त करने से विवर्जित है । उन्होंने व्यादेश की भी प्रार्थना की । प्रतिवादी ने वादियों के वाद संस्थित करने के अधिकार को प्रश्नगत किया । उसका कहना था कि वादियों को वाद का कोई हक नहीं है । अधीनस्थ न्यायाधीश ने उनका यह कथन अस्वीकार कर दिया और सामान्यतः वादियों के पक्ष में निर्णय दिया । किंतु अपील में उच्च न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीशों की राय थी कि वाद चलने योग्य नहीं है और उन्होंने वाद खारिज कर दिया ।

5. हमारे समक्ष अपीलार्थी यह मानते हैं कि धारा 53क के अतिरिक्त, जो संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 में संशोधन द्वारा 1929 में जोड़ी गई, उनका कोई मामला नहीं बनता । उनका कहना है कि यद्यपि उन्होंने 10.10.1931 की संविदा के विनिर्दिष्ट पालन हेतु वाद संस्थित नहीं किया, और न अपना हक पूरा कराने के लिए कोई कदम उठाए फिर भी वे 10.10.1931 की संविदा और कब्जे के आधार पर धारा 53क के अधीन सक्रिय रूप से स्वामी के अधिकारों का दावा करने के हकदार हैं । धारा 53क जोड़ने के पूर्व संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 के अधीन विधिक स्थिति इस परिषद् द्वारा कई बार स्पष्ट की जा चुकी है **पीर बख्श** बनाम **मोहम्मद ताहरे**[1] का उल्लेख किया जा सकता है, जिसमें इस विषय पर

[1] 61 इंडियन अपील्स 388 = आ. इं. रि. 1934 प्रि. कौं. 235.

पूर्ण रूप से विचार किया गया । यह स्पष्ट है कि अपीलार्थियों को यह मानना ठीक है कि यदि वे धारा 53क का अवलंब नहीं ले सकते, तो वे न्यायालय में सफल नहीं हो सकते ।

6. हमारी राय में धारा 53क द्वारा विधि में किया गया संशोधन अरजिस्ट्रीकृत विक्रय-संविदा के अधीन सकब्जा अंतरिती को कार्रवाई करने का कोई अधिकार प्रदान नहीं करता । हम उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति मित्तर के इस विचार से सहमत हैं कि "धारा 53क द्वारा प्रदत्त अधिकार केवल प्रतिवादी को अपने कब्जे के बचाव हेतु उपलब्ध है ।" हम पाते हैं कि हमारे विख्यात पूर्व साथी, सर दिनशाह मुल्ला का भी यही मत था, जो उन्होंने संपत्ति अंतरण अधिनियम पर अपनी पुस्तक के द्वितीय संस्करण के पृष्ठ 262 पर व्यक्त किया है । धारा की रचना इस प्रकार की है जिससे अंतरक पर एक कानूनी वर्जन अधिरोपित होता है, किंतु वह अंतरिती को कोई सक्रिय हक प्रदान नहीं करती । वास्तव में कोई अन्य निर्वचन संपत्ति अंतरण अधिनियम की पूरी योजना पर एक गंभीर आक्रमण होगा । यह कहा गया है कि अनुज्ञापन समिति से निर्यात कोटे के अधिकार प्राप्त करके दन्तमारा टी कं. लि. संपत्ति के संबंध में अंतरकों के अधीन दावा करने वाले व्यक्तियों के रूप में अधिकार अपीलार्थियों के विरुद्ध उन व्यक्तियों के रूप में प्रवृत्त कर रहे हैं जो अंतरितियों के अधीन दावा कर रहे हैं और उन्हें ऐसा करने से अपीलार्थियों के अनुरोध पर रोका जा सकता है, किंतु हमारे विचार से अपीलार्थियों के विरुद्ध किसी अधिकार का प्रवर्तन धारा 53क के अर्थ में नहीं हो रहा है ।

7. तद्नुसार हिज मैजेस्टी को हमारी विनम्र सलाह है कि अपील खारिज की जाए । प्रत्यर्थी दन्तमारा टी कं. लि. और प्रत्यर्थी चन्द्र नगर टी कंपनी लि. की ओर से जो एस्टेट में हित अर्जित करने का दावा करती है, अलग-अलग छपे पक्षकथन प्रस्तुत किए गए हैं और हमारे समक्ष उनकी ओर से अलग-अलग बहस भी की गई । किंतु अपीलार्थी प्रत्यर्थियों का इकहरा खर्चा ही देंगे ।

अपील खारिज की गई ।

चन्दन मल इन्द्र कुमार और अन्य ..... अपीलार्थी

बनाम

चिमन लाल गिरधर लाल पारीख और अन्य ..... प्रत्यर्थी

10.10.1939

न्यायमूर्ति लार्ड रोमर, न्यायमूर्ति सर जार्ज रैंकिन और न्यायमूर्ति एम. आर. जयाकर

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 – आदेश 26, नियम 9 और 10 – जब कमिश्नर ने सावधानी से स्थानीय सर्वेक्षण करके ईमानदारी से एक विशद रिपोर्ट दी तो न्यायालय को उसमें पर्याप्त कारण के बिना हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए ।

साक्ष्य विधि – सर्वेक्षण नक्शा – राजस्व सर्वेक्षण के आधार पर बनाए गए 1862 के नक्शे में नाले की स्थिति उसकी वर्तमान स्थिति के अनुसार नहीं – मौखिक साक्ष्य कि पिछले 28 वर्ष के अंदर नाले की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं – नाले के स्थान-परिवर्तन का कोई अन्य संकेत भी नहीं – माना यह गया कि अमीन ने नक्शे में नाला वास्तविक सर्वेक्षण के आधार पर नहीं बल्कि अंदाज से ही दिखा दिया और उसमें दिखाई गई स्थिति सही नहीं है ।

यह अपील पटना उच्च न्यायालय ने तारीख 1.4.1937 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध है । उन्होंने धनबाद के अधीनस्थ न्यायाधीश के 21.2.1933 के निर्णय और डिक्री को उलटकर अपीलार्थियों का वाद खारिज कर दिया है । इसमें प्रश्न यह है कि क्या अपीलार्थी प्रत्यर्थियों द्वारा निकाले गए कोयले के लिए नुकसानी पाने के हकदार हैं ? अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – 24.7.1931 को वादियों ने एक कमिश्नर की नियुक्ति के लिए आवेदन दिया, जो मौके पर सर्वेक्षण करके पक्षकारों की भूमि की सापेक्ष स्थिति और निकाले गए कोयले के विषय में रिपोर्ट दे । उस पर 5.8.1931 को प्लीडर बाबू हेमचन्द्र राय को कमिश्नर नियुक्त किया गया । उन्होंने 1862 के राजस्व सर्वेक्षण नक्शे और खसरे के आधार पर सर्वेक्षण दो स्थायी बिन्दु निकालकर किया । उनकी रिपोर्ट के अनुसार नाला 1862 के नक्शे की तुलना में अब दक्षिण की ओर आ गया है और जिस भूमि से कोयला निकाला गया वह उस नक्शे के अनुसार गणेशपुर की अर्थात् वादी की भूमि होगी । इस रिपोर्ट पर प्रतिवादियों ने आपत्ति की है कि कमिश्नर

द्वारा पाए गए स्थिर बिन्दु सही नहीं हैं और 1862 के नक्शे में सीमा ही गलत दिखाई गई है । अधीनस्थ न्यायाधीश ने यह विधि मानी कि जब कमिश्नर ने सावधानी और दक्षता से सर्वेक्षण करके ईमानदारी से एक विशद रिपोर्ट दी है तो न्यायालय को उसमें पर्याप्त आधार के बिना हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए । हम इस सिद्धांत से सहमत हैं और यह बोर्ड भी रानी सुरत सुन्दरी देवी बनाम बाबू प्रसन्न कुमार टगौर में यही सिद्धांत प्रतिपादित कर चुका है । अधीनस्थ न्यायाधीश ने वाद डिक्री कर दिया ; किंतु अपील में उच्च न्यायालय ने वह डिक्री अपास्त कर दी । अतः वादियों ने यहां अपील की । (पैरा 4)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[1869-70] (1869-70) 13 मूर्स इंडियन अपील्स 607 :

रानी सूरत सुन्दरी देवी बनाम **बाबू प्रसन्न कुमार टैगोर** । 4

सिविल अपीली अधिकारिता : 1938 की अपील सं. 90.

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री एल. एल. कोहन और डब्ल्यू डब्ल्यू. के. पेज

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री एन. एम. दुने और जे. एम. प्रिंगले

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति लार्ड रोमर ने दिया ।

न्या. रोमर – यह अपील पटना उच्च न्यायालय के 1.4.1937 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध है । उन्होंने धनबाद के अधीनस्थ न्यायाधीश के 21.2.1933 के निर्णय और डिक्री को उलटकर अपीलार्थियों का वाद खारिज कर दिया है ।

2. प्रश्न यह है कि क्या अपीलार्थियों द्वारा निकाले गए कोयले के लिए नुकसानी पाने के हकदार हैं । अपीलार्थियों का दावा 17.7.1908 के उप पट्टे के आधार पर है जिसके द्वारा फुलारीटेण्ड कोल कंपनी लि. को कुछ भूमि कोयला निकालने के लिए पट्टे पर दी गई । यह भूमि पट्टे से संलग्न नक्शे में नीले रंग में दिखाई गई है । इसमें मौजा गणेशपुर की भी भूमि थी । जिसके उत्तर में मौजा बुड्डौरा और केंदुआडीह दिखाए गए हैं । गणेशपुर के उत्तर में एक नाला दिखाया गया है जिस पर नीला रंग नहीं है, अर्थात् उसका दक्षिणी किनारा अपीलार्थियों की भूमि का उत्तरी सीमा था । मार्च, 1926 में फुलारीटेण्ड कंपनी परिसमापन में आ गई जिससे कि वह बाराबोनी कोल कंसर्न लि. में समामेलित हो जाए । तद्नुसार 30.6.1927

को एक करार लिखा गया, जिसके अनुसार बाराबोनी कंपनी को परिसमापनाधीन कंपनी की भूमि 1.4.1926 से बेची जानी थी । वस्तुतः उस तारीख से क्रेता कंपनी को कब्जा भी दे दिया गया था ।

3. प्रत्यर्थी भी कोयला निकालने के लिए भूमि के पट्टेदार थे, जिसमें केंदुआडीह की भूमि भी शामिल थी जो नाले तक जाती थी । 29.1.1928 को अपीलार्थी सं. 2 बाराबोनी कंपनी ने पाया कि प्रत्यर्थी उक्त नाले के नीचे से भी कोयला निकाल रहे हैं, जो उनकी भूमि है । इस भूमि में अपीलार्थी सं. 1 चन्दनमल इन्द्र कुमार का भी हिस्सा समझा गया जो वास्तविकता नहीं थी और उस पर और विचार करने की आवश्यकता नहीं है । एक आपत्ति की गई कि प्रश्नगत तारीख तक बाराबोनी कंपनी को प्रश्नगत भूमि में कोई हक प्राप्त नहीं था, क्योंकि उनके हक में विक्रय न होकर विक्रय का करार था । इस पर बाराबोनी कंपनी 1926 में मिले कब्जे के आधार पर दावा करती है । जिस भूमि से कोयला निकाला गया है वह नाले के नीचे या उसके उत्तर में है । 1862 के नक्शे के अनुसार नाला और उसके उत्तर की भूमि गणेशपुर में न होकर केंदुआडीह में है । किंतु अपीलार्थियों का कहना है कि नाला मार्ग-परिवर्तन करके दक्षिण में गणेशपुर में आ गया है और उनके उत्तर की कुछ भूमि गणेशपुर में है । दावा इसी भूमि में से प्रत्यर्थियों द्वारा कोयला निकाले जाने की बाबत नुकसानी का है ।

4. 24.7.1931 को वादियों ने एक कमिश्नर की नियुक्ति के लिए आवेदन दिया, जो मौके पर सर्वेक्षण करके पक्षकारों की भूमि की सापेक्ष स्थिति और निकाले गए कोयले के विषय में रिपोर्ट दे । उस पर 5.8.1931 को प्लीडर बाबू हेमचन्द्र राय को कमिश्नर नियुक्त किया गया । उन्होंने 1862 के राजस्व सर्वेक्षण नक्शे और खसरे के आधार पर सर्वेक्षण दो स्थायी बिन्दु निकालकर किया । उनकी रिपोर्ट के अनुसार नाला 1862 के नक्शे की तुलना में अब दक्षिण की ओर आ गया है और जिस भूमि से कोयला निकाला गया वह उस नक्शे के अनुसार गणेशपुर की अर्थात् वादी की भूमि होगी । इस रिपोर्ट पर प्रतिवादियों ने आपत्ति की है कि कमिश्नर द्वारा पाए गए स्थिर बिन्दु सही नहीं हैं और 1862 के नक्शे में सीमा ही गलत दिखाई गई है । अधीनस्थ न्यायाधीश ने यह विधि मानी कि जब कमिश्नर ने सावधानी और दक्षता से सर्वेक्षण करके ईमानदारी से एक विशद रिपोर्ट दी है तो न्यायालय को उसमें पर्याप्त आधार के बिना हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए । हम इस सिद्धांत से सहमत हैं और यह बोर्ड भी **रानी सुरत सुन्दरी देवी** बनाम **बाबू प्रसन्न कुमार टैगोर**[1] में यही सिद्धांत

[1] (1869-70) 13 मूर्स इंडियन अपील्स 607.

प्रतिपादित कर चुका है । अधीनस्थ न्यायाधीश ने वाद डिक्री कर दिया ; किंतु अपील में उच्च न्यायालय ने वह डिक्री अपास्त कर दी । अतः वादियों ने यहां अपील की ।

5. जहां तक नाले के मार्ग-परिवर्तन और प्रतिवादी द्वारा वादी की भूमि पर अतिक्रमण का प्रश्न है वह बहुत कुछ इस प्रश्न के उत्तर पर निर्भर करता है कि क्या नाला मार्ग-परिवर्तन करके दक्षिण की ओर आ गया है जिससे कि प्रश्नगत भूमि वर्तमान नाले के उत्तर में होते हुए भी वादियों की है । प्रतिवादियों ने तीन साक्षी पेश किए जो कहते हैं कि इस नाले में उनकी स्मृति में कोई मार्ग-परिवर्तन नहीं किया है । उनमें से एक की स्मृति 28 वर्ष पूर्व तक बताई गई है । वादियों ने इस मार्ग-परिवर्तन का कोई साक्ष्य पेश नहीं किया है । वास्तव में उनका मार्ग-परिवर्तन वाला कथन इसी कमिश्नर द्वारा एक दूसरे वाद में पहले दी गई रिपोर्ट पर आधारित है । जैसा कि उच्च न्यायालय के निर्णय से स्पष्ट है, मौके पर मार्ग-परिवर्तन का कोई संकेत नहीं है । न्यायमूर्ति जेम्स के अनुसार किसी प्राकृतिक विप्लव के बिना ऐसा मार्ग-परिवर्तन नहीं हो सकता था । हम उनसे सहमत हैं ।

6. प्रश्न आता है कि 1862 के नक्शे के आधार पर सर्वेक्षण का 1 विचार यह व्यक्त किया गया है कि उस नक्शे में अमीन ने नाला वास्तविक सर्वेक्षण के आधार पर न दिखाकर अनुमान से ही दिखा दिया है और नाले ने मार्ग-परिवर्तन नहीं किया है । ऐसी दशा में वादियों का नाले के मार्ग-परिवर्तन का कथन साबित नहीं होता । कमिश्नर की रिपोर्ट के अनुसार प्रतिवादियों ने कुछ कोयला नाले के दक्षिण से भी निकाला है । किंतु इस बाबत वादियों का कोई अभिवचन नहीं है । यह भूमि उनके वादपत्र में दिखाई गई वादगत भूमि में शामिल नहीं है, क्योंकि उन्होंने वर्तमान नाले के दक्षिण की कोई भूमि शामिल नहीं की है जब कि यह भूमि दक्षिण में ही है । वैसे भी व नगण्य है और निकाले गए कुल कोयले का मूल्य 2,000/- रु. से अधिक नहीं है । वादपत्र में उसके लिए अनुतोष नहीं मांगा जाने के कारण वह नहीं दिलाया जा सकता । उच्च न्यायालय का निर्णय सही है । तद्नुसार हिज मैजेस्टी को हमारी विनम्र सलाह है कि अपील खारिज की जानी चाहिए । अपीलार्थी प्रत्यर्थियों का अपील का खर्चा अदा करें ।

अपील खारिज की गई ।

एस. आर. एम. एस. चिदाम्बरम चेट्टियार ..... अपीलार्थी

बनाम

लू थोन पू ..... प्रत्यर्थी

12.10.1939

न्यायमूर्ति लार्ड थैंकरटन, न्यायमूर्ति लार्ड फेयरफील्ड और न्यायमूर्ति लार्ड साल्वसेन

ब्याज – ब्याज को अतिब्याज (usurious) माना जाए या नहीं, यह संव्यवहार की सभी परिस्थितियों को देखकर निर्णय करना होगा – केवल इस बात से कि अमुक दर से ब्याज अदा किया जाता रहा है वह दर उचित नहीं हो जाती क्योंकि बहुधा लोग मुकदमेबाजी और तत्संबंधी खर्चा-परेशानी से बचने के लिए अधिक ब्याज भी अदा कर देते हैं ।

बाद में पारित अधिनियम में यह व्यवस्था कि 12 प्रतिशत से अधिक ब्याज अतिब्याज माना जाएगा पूर्व संव्यवहार को लागू तो नहीं होती किंतु यह इस बात का सबूत मानी जा सकती है कि देश के बहुमत से यह दृष्टिकोण अपनाया ।

इस विषय में अंग्रेजी निर्णय अपने कानून पर आधारित होने के कारण अन्य देश में लागू नहीं होंगे, किंतु उनमे अपनाए गए सिद्धांत विचारणीय हो सकते हैं ।

जब पक्षकारों ने पुराने ब्याज को मूलधन में जोड़कर ऋण का नवीकरण किया तो वह संव्यवहार विधिमान्य होगा – स्थिति वैसी ही होगी जैसे कि पूर्व ऋण ब्याज सहित अदा कर दिया गया और नया ऋण दिया गया ।

यह समेकित अपील जोहारे बहरु के कोर्ट आफ अपील के निर्णय के विरुद्ध है । व्यावहारिक सुविधा की दृष्टि से हम अपीलार्थी का निर्देश साहूकार के रूप में और प्रत्यर्थी का निर्देश ऋणी के रूप में कर रहे हैं । प्रतिवादियों की अनेक आपत्तियां थीं किंतु अब केवल ब्याज का प्रश्न शेष है । तद्नुसार आदेश करते हुए,

अभिनिर्धारित – उच्च न्यायालय ने संविदाकृत दर को अत्यधिक मानकर 15 प्रतिशत सादे ब्याज की दर से डिक्री की है और 1929 से हिसाब लिए

जाने का निदेश दिया है । इसके परिणामस्वरूप ऋणों का वह नवीकरण भी रद्द हो जाएगा जिसमें पूर्व ऋण के ब्याज को शामिल करके नया ऋण दिया गया माना गया । हमारी राय में इस प्रकार के संव्यवहार में कोई अनौचित्य नहीं है । स्थिति वैसी ही होगी जैसे कि पूर्व ऋण ब्याज सहित अदा कर दिया गया और फिर नया ऋण दे दिया गया, देखिए लायल बनाम चेपिल व पेटन बनाम इनलैंड रेवेन्यू कमिश्नर्स । (पैरा 4)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1938]	(1938) अपील केसेज 341 : **पेटन** बनाम **इनलैंड रेवेन्यु कमिश्नर्स** ;	4
[1932]	(1932) 1 किंग्स बेंच 691 : **लायज** बनाम **चेपिल** ;	4
[1930]	(1930) 1 किंग्स बेंच 492 : **रीडिंग ट्रस्ट** बनाम **स्पेरा** ;	3
[1906]	(1906) 1 किंग्स बेंच 79 : **केरिंगटन लि.** बनाम **स्मिथ** ।	3

सिविल अपीली अधिकारिता : 1938 की अपील सं. 76.

अपीलार्थियों की ओर से –

प्रत्यर्थियों की ओर से –

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति लार्ड फेयरफील्ड ने दिया ।

न्या. फेयरफील्ड – यह समेकित अपील जोहोर बहरु के कोर्ट आफ अपील के निर्णय के विरुद्ध है । उन्होंने विचारण न्यायाधीश न्यायमूर्ति मिल्स के निर्णय को उलट दिया है । व्यावहारिक सुविधा की दृष्टि से हम अपीलार्थी का निर्देश साहूकार के रूप में और प्रत्यर्थी का निदेश ऋणी के रूप में कर रहे हैं ।

2. 23.11.1936 के आरिजिनेटिंग समन द्वारा साहूकारों ने जोहोर बहरु के न्यायाधीश न्यायालय से ऋणी को नोटिस दिलाया कि कारण बताए कि जो रबर संपदा उसने साहूकार से ऋण लेकर प्रतिभूति-स्वरूप दी

है उसे लोक नीलाम द्वारा क्यों नहीं बेचा जाए । ऋण अनेक था और उनका कई बार नवीकरण भी हुआ ।

3. प्रतिवादियों की अनेक आपत्तियां थीं, किंतु अब केवल ब्याज का प्रश्न शेष है । ऋण विलेखों के अनुसार ब्याज की दर 24 प्रतिशत थी और वह भी चक्रवृद्धि के रूप में । वहां प्रवृत्त यूजूरियस लांस स्टेस्ट्यूट में व्यवस्था है कि यदि न्यायालय को प्रतीत हो कि ब्याज की दर अत्यधिक है और संव्यवहार सारतः अनुचित है तो वह संव्यवहार को पुनः खोलकर पूरा हिसाब लिए जाने और ब्याज की दर घटाकर लगाए जाने का निदेश दे सकता है । प्रस्तुत मामले में प्रश्न यही है कि क्या संविदाकृत दर अत्यधिक थी और पक्षकारों के बीच अनुचित कही जा सकती है । एकमात्र साक्ष्य तीन शपथपत्रों का है (i) ऋणी लू थोन पू का शपथपत्र, (ii) मूल्यांकक वैद्यलिंगम का शपथपत्र, और (iii) ज्योंग हाक चाई का शपथपत्र । अंतिम में बताया गया कि जहां प्रतिभूति-स्वरूप दी गई संपत्ति पर ऋण संपत्ति के मूल्य के दो-तिहाई से अधिक नहीं हो वहां दर 9 प्रतिशत के सादा ब्याज से अधिक नहीं होती ; किंतु कुछ प्रतिभूतियों के मामले में 9 प्रतिशत से कुछ अधिक हो सकती है । इस साक्ष्य का कोई खंडन नहीं है । हमारी राय में विचारण न्यायालय का यह निष्कर्ष गलत था कि प्रतिशत की दर अनुचित नहीं है । हम इस विषय में अपील न्यायालय से सहमत हैं और वह इन कारणों से – (1) विचारण न्यायाधीश ने पूर्व निर्णयों का आश्रय तथ्य-विषयक निष्कर्षों के लिए लिया जो गलत था ; (2) विद्वान् न्यायाधीश ने ज्योंग हाक चाई के अखंडित शपथपत्र की अनुचित रूप से उपेक्षा की ; (3) विद्वान् न्यायाधीश ने इस बात को उचित महत्व नहीं दिया कि सभी ऋण पर्याप्त रूप से प्रतिभूत थे ; (4) संव्यवहारों को अनुचित न मानने में इस बात की गलत तौर पर उपेक्षा की गई कि इन सब संव्यवहारों में एक बड़ी कड़ी शर्त थी कि कोई किस्त अदा न की जाने पर संपूर्ण ऋण देय हो जाएगा । जहां तक अतिब्याज का प्रश्न है, अंग्रेजी निर्णय भिन्न विधि पर आश्रित होने के कारण स्वयं इस मामले को लागू नहीं होंगे । किंतु उनके सिद्धांत अवश्य विचारणीय हैं । इस संबंध में **केरिंगटन लि.** बनाम **स्मिथ**[1] व **रीडिंग ट्रस्ट** बनाम **स्पेरा**[2] वाले निर्णय दर्शनीय हैं । इनमें बताया गया कि विद्यमान ऋणियों द्वारा ब्याज की दर पर सहमति एक परिस्थिति मात्र है, किंतु वह दर के औचित्य की निश्चायक नहीं है । लोग विवाद और मुकदमे

[1] (1906) 1 किंग्स बेंच 79.

[2] (1930) 1 किंग्स बेंच 492.

के खर्चे व परेशानी से बचने के लिए भी उच्चतर दर से ब्याज देने को सहमत हो जाते हैं । अतः प्रस्तुत मामले में ऋणियों की सहमति के कारण ही दर उचित नहीं हो जाती ।

4. उच्च न्यायालय ने संविदाकृत दर को अत्यधिक मानकर 15 प्रतिशत सादे ब्याज की दर से डिक्री की है और 1929 से हिसाब लिए जाने का निदेश दिया है । इसके परिणामस्वरूप ऋणों का वह नवीकरण भी रद्द हो जाएगा जिसमें पूर्व ऋण के ब्याज को शामिल करके नया ऋण दिया गया माना गया । हमारी राय में इस प्रकार के संव्यवहार में कोई अनौचित्य नहीं है । स्थिति वैसी ही होगी जैसे कि पूर्व ऋण ब्याज सहित अदा कर दिया गया और फिर नया ऋण दे दिया गया, देखिए **लायल** बनाम **चेपिल**[1] व **पेटन** बनाम **इनलैंड रेवेन्यू कमिश्नर्स**[2] ।

उच्च न्यायालय के निर्णय में नियत की गई 15 प्रतिशत की दर तो सही है, किंतु उसका सादे ब्याज के रूप में 1927 से लगाया जाना उचित नहीं है । अतः सादे ब्याज वाले शब्द निकाले जाने चाहिए । इस उपांतरण के साथ यह अपील खारिज की जानी चाहिए । प्रत्यर्थियों को उनका 9/10 खर्चा दिलाया जाना चाहिए । हिज मैजेस्टी को हमारी विनम्र सलाह तद्नुसार है ।

तद्नुसार आदेश किया गया ।

---

[1] (1932) 1 किंग्स बेंच 691.
[2] (1938) अपील केसेज 341.

कार्यालय आदेश तारीख 13 फरवरी, 2017 के अनुसार विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित पाठ्य पुस्तकों पर छूट देने की सूची

क्रम सं.	पुस्तक का नाम, लेखक का नाम व प्रकाशन वर्ष (संस्करण)	पुस्तक की मुद्रित कीमत (रुपयों में)	7 वर्ष से पुराने संस्करण पर 35% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)	8 से 15 वर्ष पुराने संस्करण पर 50% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)	15 वर्ष से अधिक पुराने संस्करण पर 75% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)
1.	भारत का विधिक इतिहास - श्री सुरेन्द्र मधुकर - 1989	30	–	–	8
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि - डा. एन. वी. परांजपे - 1990	40	–	–	10
3.	वाणिज्य विधि - डा. आर. एल. भट्ट - 1993	108	–	–	27
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धांत - श्री शर्मन लाल अग्रवाल - 1993	40	–	–	10
5.	अन्तर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय - डा. एस. सी. खरे - 1996	115	–	–	29
6.	श्रम विधि - श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा - 1996	452	–	–	113
7.	संविदा विधि - डा. रामगोपाल चतुर्वेदी - 1998	275	–	–	69
8.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान - डा. सी. के. पारिख - 1999	293	–	–	74
9.	आधुनिक पारिवारिक विधि - श्री राम शरण माथुर - 2000	429	–	–	108
10.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय) - विधि साहित्य प्रकाशन - 2000	225	–	–	57
11.	हिन्दू विधि - डा. रवीन्द्र नाथ - 2001	425	–	–	106
12.	भारतीय भागीदारी अधिनियम - श्री माधव प्रसाद वशिष्ठ - 2001	165	–	–	41
13.	प्रशासनिक विधि - डा. कैलाश चन्द्र जोशी - 2001	200	–	–	50
14.	भारतीय दंड संहिता - डा. रवीन्द्र नाथ - 2002	741	–	–	185
15.	विधिक उपचार - डा. एस. के. कपूर - 2002	311	–	–	78
16.	विधि शास्त्र - डा. शिवदत्त शर्मा - 2005	580	–	290	–
17.	मानव अधिकार - डा. शिवदत्त शर्मा - 2006	120	–	60	–

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 16288/68

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमशः चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ पाठकों की सुविधा के लिए शृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका को उपादेय और ज्ञानवर्द्धक बनाने के लिए प्रिवी कौंसिल के निर्णयों को भी समाविष्ट किया जा रहा है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की मासिक कीमत ₹ 195/- उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की मासिक कीमत ₹ 125/- और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की मासिक कीमत ₹ 125/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें ।

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105